शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर द्वारा पी एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

डॉ० शिवराम माली
एम० ए०, पी एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा
तथा
वरिष्ठ प्राध्यापक शिवाजी विश्वविद्यालयीन
स्नातकोत्तर हिंदी केंद्र, सातारा

पुस्तक संस्थान
१०९/५० ए नेहरु नगर, कानपुर १२

Swachchandata wadi Natak Aur Manovigyan

by

Dr Shiv Ram Mali

Rs Forty Five only

प्रकाशक पुस्तक संस्थान १०९/५०ए नेहरूनगर कानपुर-२०८

पुस्तक स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

लेखक डा० शिवराम माली

मुद्रक आराधना प्रेस ब्रह्मनगर कानपुर

पुस्तक बंध अब्दुल गफूर एण्ड संस, कानपुर

संस्करण प्रथम, १९७६

मूल्य पैंतालिस रुपये

महाराष्ट्र के क्रांतिदर्शी शिक्षा शास्त्री एवं रयत
शिक्षण संस्था के संस्थापक स्व० पद्मभूषण कर्मवीर

डॉ० भाऊराव पाटील

तथा

उनके सच्छिष्य——शिवाजी विश्वविद्यालय

के

कुलगुरु

डॉ० पी० जी० पाटील

को

श्रद्धा के साथ समर्पित

भूमिका

डॉ० शिवराम माली मराठी और हिन्दी साहित्य के ममन विद्वान् एव सुयोग्य प्राध्यापक हैं। गवेषणा म विशेष रुचि होने के कारण इन्होने मनोनिदेश पूवक अनुस धान काय भी प्रारम्भ किया। विश्वविद्यालय म इन्होने मनोविज्ञान शास्त्र का अध्ययन किया था। अतएव मनोविज्ञान सम्ब धी साहित्यिक विषय लेकर यह अनुस धान काय मे जुट गए। इ हें स्वच्छ दतावादी नाटका का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना उचित जान पडा। इस विषय पर विधिवत खोज की आवश्यकता भी थी। भाग्य से इन्हें नाटयकला और शास्त्र के प्रतिष्ठित विद्वान डॉ० चन्द्रलाल दुबे का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ। योग्य गुरु को सच्ची लगन वाला शोधार्थी मिल जाय तो उच्चकोटि की कृति स्वयमेव प्रस्तुत होती है। 'स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान उसी सुयोग का परिणाम है।

इस ग्र थ मे भारतेन्दु युग से आज तक के प्रमुख नाटको का परीक्षण मनोविज्ञान के आधार पर किया गया है। स्वच्छन्दतावादी नाटको के लक्षणा का विश्लेषण करते हुए डॉ० माली ने प्रत्येक युग के प्रसिद्ध नाटको का चयन बडी सावधानी से किया और प्रत्येक नाटक के प्रमुख पात्रो का इस रूप म विश्लेषण किया है जिससे नाटक की मूलधारणा भली प्रकार अभिव्यक्त हो सके। मुझे सबसे बडी प्रसन्नता इस बात से होती है कि डा माली ने एक एक नाटक को कई बार पढकर उसके रहस्य को भलीभांति समझा है। तदुपरान्त नाटयकार का उद्देश्य उसके निर्मित पात्रा के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया है। इस प्रकार मनोविज्ञान को केन्द्र म स्थापित कर हिन्दी के प्रमुख नाटका का मू य विवेचन इस ग्र थ की विशेषता मानी जायगी। डॉ० माली ने इस ग्रन्थ के निर्माण मे केवल हिन्दी ग्र थों से ही नही मराठी एव अग्रेजी साहित्य स पर्याप्त सहायता ली है इसी कारण इनकी दृष्टि व्यापक रही है और नाटय चयन एव उसके परीक्षण म कहा भी एकागिता नही आने पाई है।

मराठी नाटकों की दीघ परम्परा रही है। आज भी भारतीय नाटकों म नाटय कला एव अभिनय की दृष्टि से मराठी नाटको का विशेष महत्व है।

महाराष्ट्र म शताधिक वर्षों से नाटय कृति और रगमच मे गठबधन रहा है। डॉ० माली ने स्वत अनेक नाटको म अभिनय किया है। इसलिए पात्रो की मनोवत्तिया को रगमचीय दष्टि से समझने म उन्हे पूरी सफलता मिली है। स्वच्छन्दतावादी नाटका की चरित्र चित्रण कला की परख मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के आधार पर करना परिश्रम साध्य था। इस कठिन काय को डा० माली जसा अभिनेता नाटय प्रेमी ही सम्पन्न कर सकता था। डॉ० माली ने प्रमुख पात्रा के प्रत्यक काय का परीक्षण करत हुए मनोविज्ञान के एक एक सिद्धान्त का उपयोग सिद्ध किया है। इस प्रकार उ होने हिन्दी पाठको को नाटय बोध का एक नया रास्ता दिखाया है।

इस ग्रथ की तीसरी विशेषता यह है कि स्वच्छन्दतावादी नाटका की भाषा का परीक्षण मनोविज्ञान के आधार म किया गया है। किस मनोभाव के उदय एव सवेग के समय पर पात्र की शब्दावली कसी बनती है उसकी भाषा म क्या चढाव उतार आते ह भावभगिमा के साथ भाषा कस कधा से कधा मिलाकर चलती है इन पर डा० माली न स्थान स्थान पर विचार किया है। यह पुस्तक न केवल शोधार्थियो के लिए उपयोगी सिद्ध होगी अपितु अध्यापको और स्नातकोत्तर छात्रा को भी इससे लाभ होगा।

डा० माली बडे कमठ समाज सवी प्राध्यापक हैं। सामाजिक समस्याओ का इन्होने मनोविज्ञान की दष्टि स अध्ययन किया है। उसी का परिणाम है कि उन्हे विभिन्न पात्रा की मनोवत्तिया को समझन म सफलता मिली है। मै उनको इस सफलता के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हू कि नाटक और रगमच सम्बन्धी अपना शोध काम निरन्तर जारी रखेंगे।

दशरथ ओझा

सम्मति

प्रो० शिवराम माली द्वारा पी एच० डी० उपाधि हेतु लिखा गया शोध प्रब ध प्रकाशित हो रहा है, यह हमारी रयत शिक्षण सस्था के लिए हष और गौरव की बात है। हष और गौरव इसलिए कि डा० माली ने रयत *शिक्षण सस्था की स्वावलम्बी शिक्षा योजना के अ तगत विश्वविद्यालयीन* शिक्षा का श्रीगणेश किया है। आपन स्वावलम्बन और स्वाध्याय से प्रयत्नपथ प्रशस्त किया है।

डा० शिवराम माली न अत्य त सूक्ष्म दष्टि से प्रस्तुत शोध प्रब ध मे पाठ्यसामग्री को आधार मानकर स्वच्छ दतावादी नाटय-कृतियो का मनोवज्ञानिक मूल्याकन किया है जिससे पात्रों के अ तमन की स्थिति पर गहरा प्रकाश पडता है।

इस प्रब ध के लिए चुने हुए स्वच्छ दतावादी नाटककार प्रथम कवि हैं, बाद म नाटककार। इस प्रब ध के विद्वान लेखक ने स्वच्छ दतावादी नाटको क नयनमनोहर उद्यान म भ्रमर की भाँति प्रवेश कर मनोविज्ञान के कतिपय सिद्धा तो के प्रकाश मे रसास्वाद लेने की मन पूत कोशिश की है।

मैं डॉ० माली को हार्दिक बधाई दता हूँ कि उ हाने श्रद्धा, परिश्रम और लगन से ऐसा उपयोगी ग्र थ प्रस्तुत किया।

१४ अप्रल, १९७६ — आन दराव भा सालु खे

अविस्मरण, — बी० कॉम०, बी० एड०

सातारा — सचिव

रयत शिक्षण सस्था,

सतारा (महाराष्ट)

शुभाशंसा

'काव्येषु नाटकम् रम्यम्' होने के कारण प्रेक्षकों एवं पाठकों का नाटक पर मुग्ध होना स्वाभाविक है। इस विधा ने हिन्दी में अनुसंधित्सुओं का भी ध्यान आकृष्ट कर लिया है। फलत नाटक के अनेकानेक पहलुओं को लेकर अनुसंधान-कार्य सम्पन्न हुआ है। जहाँ तक स्वच्छन्दतावादी नाटकों का सम्बन्ध है हिन्दी में एक ही प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ था। श्रद्धेय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मार्गदर्शन में डॉ० दशरथ सिंह ने इस विषय पर खोज कार्य सम्पूर्ण कर सागर विश्वविद्यालय से पी०-एच० डी० की उपाधि पायी।

नाटक साहित्य में रुचि रखने के कारण डा० दशरथ सिंह के प्रबन्ध को पढ़ने पर मैंने अनुभव किया कि इसके आयाम और भी विस्तृत हो सकते हैं। प्रोफेसर शिवराम माली जब शोध छात्र के रूप में मेरे सम्मुख आए तब मनोविज्ञान सम्बन्धी उनकी रुचि अध्ययन आदि की पृष्ठभूमि के कारण मुझे लगा कि स्वच्छन्दतावादी नाटकों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए ये उपयुक्त शोधार्थी हैं। यह कार्य इन्हें सौंपा गया। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि प्रो० माली ने मनोयोग से अपने अनुसंधान कार्य को सफलता के साथ सम्पन्न किया। इससे भी परम हर्ष का विषय यह है कि उपाधि प्राप्त होने के छ महीने के भीतर ही प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है।

डॉ० शिवराम माली की मातृभाषा मराठी है। हिन्दीतर भाषी प्रदेश में रहकर शोधकार्यरत अनुसंधित्सु की कठिनाइयों का अनुमान भुक्तभोगी ही कर सकता है। आजकल अनुसंधान कर उपाधि पाना सुकर है लेकिन प्रकाशक को ढूँढकर प्रबन्ध को प्रकाशित करना अति दुष्कर कार्य है। डा० माली दोनों मोर्चों में शीघ्र सफल हो गए। इसलिए ये बधाई के पात्र हैं।

अपने ही छात्र के शोध कार्य की प्रशंसा करना अप्रत्यक्ष रूप

से अपना मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है। अतः प्रबन्ध के कथ्य के सम्बन्ध में मैं मौन रहना ही पसन्द करूँगा। सारस्वत समाज के सम्मुख यह कृति इस भाव से समर्पित कर रहा हूँ कि वे सहृदयता से इसे स्वीकार करेंगे एवं अपना प्रामाणिक अभिमत अवगत कराकर हमें उपकृत करेंगे।

संवत् २०३३ प्रतिपदा

डा० चन्दूलाल दुबे

राजाराम महाविद्यालय

छात्रावास कोल्हापुर

प्राक्कथन

साहित्य मनुष्य को युग युग से प्रेरणा देता है। साहित्य की विभिन्न विधाओ म नाटक का अपना एक विशेष स्थान है। मानवी जीवन म मनो विज्ञान के द्वारा प्रकट होने वाला आत्माभिव्यजन महत्त्वपूर्ण माना जाता है, जिसका प्रभाव नाट्यकृतियो पर स्पष्ट रूप स दिखाई देता है। विशेष रूप से स्वच्छन्दतावादी नाटको म हमे कुछ नई दृष्टि प्राप्त हो सकती है जिसम मानव जाति के क्रमिक विकास का कारण तथा परिणामो का गहरा असर दृष्टिगोचर होता है।

प्रायोगिक मूल्य ही नाटक का सही उद्देश्य होता है और उसके साथ साहित्यिक मूल्य भी उभर जाते हैं, जिसम स्वच्छन्दतावादी नाटक अपनी एक विशेषता प्रदान करते हैं। भले ही आज के जमाने म सिनेमा नाटको पर हावी हो हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी नाट्यधारा काव्यात्मक प्रवत्ति का एक विलोभ नीय चित्र साकार करन म निश्चित रूप से सफल हो चुकी है।

बीसवी सदी म मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओ का प्रचुर मात्रा म विकास हो चुका है। हिन्दी म मनोवैज्ञानिक समीक्षा पद्धति एक नयी प्रणाली है पर मनोविज्ञान के सिद्धान्त आँखो के सामने न रखते हुए भी कतिपय साहित्यकारो ने श्रेष्ठ रचनाओ को जन्म दिया है। इन रचनाओ मे मनोविज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलुओ के हृदयगम दर्शन हुए हैं। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटको पर मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायो एव उपपत्तियो का जो प्रभाव पडा है इसी का अनुसधान करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रमुख लक्ष्य है।

डा० गणेशदत्त गौड ने आधुनिक हिन्दी नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन नामक प्रबन्ध मे हिन्दी के प्रमुख नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। परन्तु इस अध्ययन की परिधि से कई नाटक छूट गये हैं। 'प्रसाद के नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' नामक प्रबन्ध म डा० निरुपम पाटो ने प्रसाद के व्यक्तित्व का मूल्याकन कर उनके प्रमुख चार नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पात्रो के परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत किया है। किन्तु इन दोनो प्रबन्धो से मेर

प्रबंध की प्रकृति भिन्न है। मेरे प्रबंध का दायरा भी विस्तृत है। मेरा यह दावा नहीं है कि आलोच्य नाटकों में मनोविज्ञान का सफल परिष्कार हुआ है। फिर भी मेरी अपनी मान्यता एवं धारणा के अनुसार उनमें मनोविज्ञान खोजने का भरसक प्रयत्न हुआ है। इनमें मनोविज्ञान के सिद्धान्त खींचतान कर परखने की कोशिश नहीं की है अपितु स्वभावतः एवं स्वाभाविकता में दृग्गोचर हुए मनोविज्ञान की उपस्थिति खोजी जा सकी है। पाठ्य सामग्री को आधार मानकर नाटकों का परिशीलन किया है। मेरा यह अध्ययन हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटकों के सम्बन्ध में प्रथम और अपने ढंग का मौलिक प्रयास है। डा० दशरथ सिंह ने हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक नामक प्रबंध में हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी नाट्य परम्परा का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है तो मैंने स्वच्छन्दतावादी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन। अतः आशय एवं प्रकृति की दृष्टि से दोनों प्रबंध एक दूसरे से भिन्न हैं।

इस प्रबंध में मैंने नाट्य शिल्पविधि के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी नाटकों की मनोवैज्ञानिक आलोचना प्रस्तुत की है। यह बात स्पष्ट ही है कि नाटकों में नाटककार अपनी ओर से कुछ नहीं कह सकता। जो कुछ कहना है-पात्रों द्वारा ही कहना पड़ता है। इसी कारण आलोच्य कालीन नाटकों की कथावस्तु एवं चरित्र चित्रण में विभाजन रेखा खींचना कमी और महसूस हुई है। इसीलिए नाटक के प्रत्येक अंग की स्वतंत्र रूप से छानबीन की है। अनावश्यक अथवा गौण महत्व वाले तथ्यों से प्रबंध का कलेवर बढ़ाया नहीं गया है वरन ऐसे तथ्यों का विवरण दिया गया है जिनकी सहायता से पात्रों के मनोविज्ञान पर यथार्थ रूप से प्रकाश पड़ सके। कथोपकथनों का अध्ययन करते समय मनोविज्ञान से अनुस्यूत कथोपकथन ही चुन लिये गये हैं। किसी भी लेखक की भाषा शैली में उसकी आत्मा होती है। अलंकारों का सम्बन्ध अनुभूति की तीव्रता से होता है और सूक्तियों का मनोभावों से। काव्यात्मक शैली एवं विशिष्ट शब्दों के प्रयोग में मनोवृत्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। अतः भाषा के प्रयोग में भी मनोभावों को ढूंढने का प्रयास किया है। नाटकों की मनोवैज्ञानिक परख करते समय पिटा पिटाया फॉर्मूला नहीं अपनाया है। पुनरावृत्ति का दोष टालने के लिए नाटकों के देश काल एवं उद्देश्य का निरूपण नहीं किया है। और एक बात स्पष्ट हो है कि नाटकों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते समय रचना में एकसूत्रता आ जाना स्वाभाविक ही है।

प्रस्तुत प्रबंध की विशेषतायें

(१) स्वच्छन्दतावादी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रथम बार इस प्रबंध में हुआ है।

(२) विषय विवेचन के लिए नाट्य शिल्प विधि के परिप्रेक्ष्य मे सामग्री प्रस्तुत की है।

(३) मनोवैज्ञानिक एव कलात्मक दोनो दृष्टिकोणो स मैंने नाटको का अध्ययन किया है।

(४) पाठय सामग्री को आधार मानकर पहली बार, प्रस्तुत प्रबध मे इतने विस्तार मे स्वच्छन्दतावादी नाट्यकृतियो का मनोवैज्ञानिक मूल्याकन मैंने किया है।

(५) मनोविज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी नाटको का कोना कोना झाँककर बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करने का लघुप्रयास किया है।

(६) सुस्पष्ट गहरे तथा गम्भीर अध्ययन के हेतु इस प्रबध म केवल सम्पूर्ण नाटको को चुना है, एकाकी, गीतिनाटय आदि को नही।

ऋण-निर्देश

इस अवसर पर रयत शिक्षण सस्था के सस्थापक शिक्षण महर्षि स्व० पद्मभूषण कर्मवीर डा० भाऊराव पाटील को मैं कसे भूल सकता हूँ ? मेरी श्रद्धा है कि मेरे इस काय के पीछे उनके शुभाशीष रहे हैं। इनके सान्निध्य, शिवाजी विश्वविद्यालय के कुलगुरु अग्रेजी के विख्यात प्रोफेसर तथा सुप्रसिद्ध शिक्षाविद बॅ० पी० जी० पाटील जी के कारण मैं रयत शिक्षण सस्था के सान्निध्य मे आ सका। सन् १९५९ ई० मे मैं सतारा के छत्रपति शिवाजी कालेज म स्वावलम्बी शिक्षा योजना के अन्तगत शिक्षा ले रहा था तब उक्त कालेज प्राचाय बॅ० पी० जी० पाटील के एक व्याख्यान ने मुझे बी० ए० मे हिन्दी खास विषय चुनने की प्रेरणा दी थी। सन् १९४६ ई० म गुरुवर पाटील जी पाचगणी म राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी स मिलने गये थ। उनकी अग्रजी सुनकर बापू जी फूले नही समाये पर फिर मिलने के बाद राष्ट्रभाषा मे विचार प्रदर्शित करने का आग्रह किया। उनके व्याख्यान के इसी एक धागे को पकडकर मैं हिन्दी की ओर विशेष रूप स आकृष्ट हुआ और इसी क परिणामस्वरूप गुरुवर डा० चद्रलाल दुबेजी क सान्निध्य म आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। तदुपरान्त महाविद्यालय की नौकरी के हेतु मुझे छत्रपति शिवाजी कालेज म आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस समय प्राचाय बॅ० पी० जी० पाटील तथा उनकी सुविद्य धर्मपत्नी, अग्रेजी की निष्णात प्राध्यापिका एव प्राचार्या सुमतिबाई पाटील ने कई बार सत्परामर्श द्वारा मुझे उपकृत किया। वस्तुत यह काय उनकी प्रेरणा का ही सुफल है। अब मेरा मन मयूर खुशी मे नाच रहा है, क्योंकि बॅ० पी० जी० पाटील जी शिवाजी

श्री घो० पो० सवपाल आदि स सतत प्रेरणा एव प्रोत्साहन मिलता आया है। इन सभी के प्रति म श्रद्धानत हूँ।

मेरी शिक्षा के श्रीगणेश का एव नाटका मे मेरी रुचि का श्रेय मरे पिता जी स्व० पिराजी उफ बगाजी जोती माली को है। उन्ही की प्रेरणा से बचपन म मैंने कई नाटको मे काम किया और लोगो को रिझाया। मेरी पूज्य माता श्रीमती गगामाई ने मेरे लिये अथक परिश्रम उठाए हैं। मेरे छोटे भाई तथा विख्यात क्रीडा विद प्रा० शकर माली के भ्रातस्नेह ने मुझे आत्मविश्वास प्रदान किया है। यह प्रबन्ध मरी पत्नी सौ० पुष्पा एव सुपुत्र--सुनिल, अनिल और दिनेश के प्रोत्साहन और सहायता के बिना कभी पूण न हो सकता अत इन सभी के प्रति मेरी विनम्र कृतज्ञता है।

इस काय म मेरे निकट के आप्त एव इचलकरजी के विख्यात उद्योगपति श्री महादवराव माला, उनकी पत्नी सौ० सुशीला माली, मरी सास श्रीमती पावनी माली का सक्रिय सहयोग मिला है। इस वक्त मेरे श्वसुर पुलिस इस्पेक्टर स्व० शकरराव माली, स्व० रावसाहेब डी० बी० माली, जागतिक कीर्ति के सवस पटु स्व० परशुराम माली का तीव्रता के साथ स्मरण हुए बिना नही रहता। इन सभी का मैं हृदय मे कृतज्ञ हूँ।

इस शोध प्रब ध के आभार प्रदशन म जो अन्य महत्वपूण व्यक्ति आते है, व हैं--ना० यशव तराव माहित ना० शरद पवार, डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित श्री १०५ वृषभसेन महाराज, श्री भि० रा० पाटील, श्री एस० सिद्धेश्वर, श्री लक्ष्मणराव खाडे, श्री बी० एस० निगम, डा० विलास घाटे, डा० शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव, श्री बी० टी० वाडकर, श्री मु० मा० जगताप, श्री वि० सो० महादार।

शिवाजी विश्वविद्यालय न शोध प्रबन्ध को प्रकाशित करने की जो अनुमति प्रदान की है, उसके लिए मैं विश्वविद्यालय के कुलगुरु बे० पी० जी० पाटील कुलसचिव, डॉ० सौ० उषा इथापे और सम्बन्धित अधिकारियो के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मेरे अध्ययन के लिए सहायता प्रदान करन वाल शिवाजी विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, राष्ट्रभाषा सभा, पुणे, राजाराम कालेज, कोल्हापुर, छत्रपति शिवाजी कॉलेज सतारा आदि ग्रथालयो एव उनके ग्रथपालो का मैं हृदय स आभारी हूँ।

पुस्तक संस्थान के संचालक श्री महेन्द्र त्रिपाठी ने इस प्रबन्ध को प्रकाशित करने की उत्कण्ठा और तत्परता दिखाई उसके लिए धन्यवाद के शब्द मेरे पास नहीं हैं।

अन्त में मैं उन सभी ग्रन्थ लेखकों एवं मित्रों का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे यथोचित सहायता देकर इस प्रबन्ध की पूर्णता सिद्ध की है।

प्राध्यापक-निवास, डा० शिवराम माली
छ० शिवाजी कॉलेज, सातारा
३ मार्च, १९७५ (महाराष्ट्र)

अन्तर्वस्तु

१ | स्वच्छन्दतावाद-नाटक-मनोविज्ञान

स्वच्छन्दतावाद का उद्गम और विकास

सामान्य रूप म यह दिखाई देता है कि साहित्य के क्षेत्र म कोई भी सम्प्रदाय सदा के लिए टिक नही पाता है। किसी सम्प्रदाय की निर्मिति होती है उसका विकास होता है और बाद मे नये सम्प्रदाय का जन्म होता है। माना जाता है कि अभिजातवाद (Classicism) के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रकट करने के लिय स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का उद्भव हुआ।

अभिजातवाद के अर्थ

स्वच्छन्दतावाद का उदगम देखने के पहले अभिजातवाद की जानकारी लेना अच्छा होगा। कोश मे अभिजातवाद या शास्त्रीय परम्परा के निम्न लिखित अथ दिखाई दते हैं।

(१) साहित्य के क्षेत्र मे, कला क क्षेत्र म सर्वोत्कृष्ट आदश का अनुसरण करने वाली कृति।

(२) शुद्ध अथवा अमकीण (Pure), उच्च अभिरुचि का (Chaste) और सुसस्कृत (Refined)।

(३) मूल म सुप्रतिष्ठित ग्रीक और रोमन लेखकों के बारे मे प्रयुक्त की जान वाली सना, परन्तु कालान्तर से आधुनिक लेखक या उनका साहित्य यह भी अथ।

(४) कुल कलात्मक प्रकप की दृष्टि स सवमान्य हुई काई भी कलाकृति। इस अन्तिम अथ से व्यवहार म कइ बार क्लासिकम इस सना का प्रयोग किया हुआ दिखाई दता है।[1]

अभिजात साहित्य की विशेपता

क्लसिक्स' के उपरिनिर्दिष्ट अथ कोश में दिखायी देते हैं, पर सामान्यत यह सज्ञा जिस साहित्य को दी जाती है उसके अन्य कुछ लोगा के मतो मे और

१ डा० रा० श० आलिवे साहित्यातील सम्प्रदाय, दूसरी आवृत्ति पृ० ५

कुछ विशेषतायें दिखाई देता है।

(१) प्रमाद (२) संयम और संयम (३) कलाकारों की एकाग्रता और (४) कलाकारों के विविध अनुभवों का मनुष्य न होना हुए उनका परिपूर्ण विचार। इन विशेषताओं का अस्तित्व जिन आधुनिक कलाकृतियों में दिखाई देता उन स्वच्छन्दतावादी पद्धति में कोई रह गया है।

जिन आधुनिक साहित्य कृतियों में (१) सादगी के साथ एक प्रकार की उन्मत्तता दिखाई देती जिसमें (२) नियमबद्धता दिखाई देती रचना में सूक्ष्मता दिखाई देगी। ( ) अति अल्प साधना से जोरदार उद्गारों में ज्यादा परिणाम करने का सामर्थ्य होगा और जिसमें (४) प्रमाण पूर्वक अथवा स्पष्ट तथा निश्चित स्वरूप के होते एसी साहित्य कृति को स्वच्छन्दतावादी कहना चाहिए–एसा इसका अर्थ है। विषय यदि आधुनिक होगा तो भी उसके आविष्करण में यदि ऊपरी तत्व दिखाई देंगे तो वह आविष्करण स्वच्छन्दतावादी प्रमाण के अन्तर्भूत होगा।[1] इस साहित्य विधा में जीवन की एक प्रवृत्ति और उस प्रवृत्ति को मोड़ देने वाली एक साहित्य विधा स्पष्ट रूप से निखर पड़ता है।

स्वच्छन्दतावाद की निर्मिति

सामान्यतः साहित्य का उपरिनिर्दिष्ट शास्त्रीय परम्परा के विरोध में जो आन्दोलन विकसित हुआ उसे आगे चलकर स्वच्छन्दता नाम दिया गया। यूरोप में स्वच्छन्दतावादी परम्परा का यह प्रवाह मध्य युग में प्रवाहित हुआ है। इस काल के स्वच्छन्दतावादी साहित्य में परम्परागत नियमों के प्रति प्रतिक्रिया और अनास्था की भावनाशीलता तथा काल्पनिकता का बाहुल्य विषय विस्तार तथा शक्ति की प्रतिष्ठा आदि नवीन विशेषतायें प्रस्फुटित होती हैं। पूर्व मध्य युग के पश्चात १६वीं में । में इंग्लैण्ड और स्वच्छन्दतावादी धारा बड़े सशक्त रूप में विकसित हुई। आगे चलकर १९वीं शती में फ्रांस इंग्लैण्ड इटली, स्पेन जर्मनी आदि देशों में इसका पूर्ण विकास हुआ। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का यह विकास हम मार्लो शेक्सपियर (इङ्गलैण्ड) काल्डरान (स्पेन) आदि में विशेषरूप से देख सकते हैं।[2] इसका प्रभाव अन्यान्य देशों के साहित्य कारों पर भी पड़ा और वे विशेष सजग होकर इस की रचना-कृतियों को जन्म देने लगे। इस परम्परा में हिन्दी साहित्य की नाटक विधा में जयशंकर प्रसाद जी का नाम प्रथम लेना होगा।

---

१ डा० रा० शं० वालिंबे साहित्यशील सम्प्रदाय पृ० ५–६

२ शशिशेखर नैथानी जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रथम संस्करण पृ० ७१

हिन्दी मे प्रथम प्रयोग

यह खोज करना सरल नही है कि हिन्दी म 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द सब प्रथम किस व्यक्ति ने किस प्रसग मे और किस अथ म प्रयुक्त किया, परन्तु इतना तो निश्चित है कि कुछ विशेषताओ को देखकर अग्रेजी के 'रोमान्टीसिज्म' से उसकी समानता का लक्ष्य करके यह नामकरण कर दिया होगा। आलोचको म प० रामचन्द्र शुक्ल का नाम ही सवप्रथम लिया जा सकता है जिन्होने अपनी 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक मे आधुनिक काव्य पर विचार करते हुये नई धारा के अन्तगत एक स्थान पर लिखा है कि इङ्गलण्ड म जिस स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का नाम इधर हिन्दी म बराबर लिया जाने लगा है उसके प्रारम्भिक उत्थान के भीतर परिवतन के मूल प्राकृतिक आधार का स्पष्ट आभास रहा है। यह पुस्तक सन् १९२९ के लगभग लिखी गई।[1] इसके पहल भले ही तत्वो की जानकारी न रही हो, पर पाश्चिमात्य साहित्य की प्ररणा से इस प्रवत्ति का साहित्य हिन्दी म लिखा जाने लगा।

इस स्वच्छन्दतावाद का आभास पहल पहल प० श्रीधर पाठक म पाया जाता है। स्वच्छन्द प्रवत्ति के काव्य म उन्होने प्रकृति प्रेम (स्वतन्त्र रूप म) को ही अधिक महत्व दिया है और परम्परा से चले आये छन्द, अलकार आदि से स्वतन्त्र होकर काव्य शली मे नये प्रयोगो को भी उसके अन्तगत लिया है। हिन्दी म सच्चे स्वच्छन्दतावाद के प्रवत्तक के रूप म प० श्रीधर पाठक को माना जाता है।[2] इस तरह विशिष्ट प्रणाली को आधार मानकर साहित्य सजन तभी से होने लगा।

स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा

वैसे स्वच्छन्दतावाद की निश्चित परिभाषा करना दुष्कर है क्योकि विद्वानो द्वारा दी गयी कई परिभाषाओ म सामजस्य नही है। अभिजातवाद म बाह्य आकार को महत्त्व दिया गया। इसके विरुद्ध स्वच्छन्दतावाद मे बाह्य आकार की अपेक्षा अन्तरात्मा को विशेष महत्त्व दिया गया। आमतौर पर ऐसा कहना होगा कि स्वच्छन्दतावाद की यह प्रवत्ति केवल साहित्यिक परम्परा की निष्ठा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप म नही बल्कि सौन्दय पूजन, अदभुत प्रेम, स्वानु

१ डा० कमलकुमारी जोहरी हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास १९६५ पृ० २०

२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, सत्रहवा पुनमुद्रण, पृ० ५५५

भूतिनिष्ठा के निर्माण स्वरूप प्रगत हुई। अर्थात यह प्रवृत्ति आत्माविष्कार, परम्परामुक्तता और उत्कंठना को विशेष महत्त्व देता है।

स्वच्छन्दतावाद के विभिन्न अर्थ

कोश में स्वच्छन्दतावाद के निम्नलिखित अर्थ पाए जाते हैं।

(१) Romantic imaginative fanciful, picturesque अद्भुत बातों के बारे में विलक्षण चमत्कारिक।

(२) Romance अद्भुत कथा प्रणय कथा कल्पित कथा कादम्बरी।

(३) Romanticism Romantic feeling in Literature and art, a story of adventure a love story a love affair a made up story साहित्य और कला में अद्भुतता।

स्वच्छन्दतावाद की विशेषताएँ

डा० रा० ग० वालिंबे का प्रतिपादन–स्वच्छन्दतावाद की परिभाषाओं का वैचित्र्य स्पष्ट करते हुए मराठी के सुविख्यात आलोचक डा० रा० ग० वालिंबे ने स्वच्छन्दतावाद की निम्नलिखित विशेषतायें बताई हैं।[1] इनको विदित कर लेने से इस धारा पर अन्यान्य आलोचकों की विचार प्रणाली का समझना सुलभ होगा।

(१) फ्रेंच भाषा में Romanesque शब्द है। Romance तथा Romantic ये अंग्रेजी शब्द हैं। मूल फ्रेंच शब्द का अर्थ अद्भुत साहसी कृत्य है पर स्वच्छन्दतावाद यह जो साहित्यिक सम्प्रदाय है उससे इस अर्थ का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

(२) अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अभिजाततावाद की प्रतिक्रिया के रूप में जो साहित्यिक प्रणाली निर्मित हुई उसे रोमांटिसिज्म या स्वच्छन्दतावाद की संज्ञा प्राप्त हुई।

(३) यह सम्प्रदाय सिर्फ साहित्य के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। रोमांटिसिज्म संज्ञा में अभिप्रेत होने वाले तत्त्वों का प्रयोग साहित्य क्षेत्र के बाहिरी अन्य ललित कलाओं के बारे में हुआ और साथ ही साथ राजनीति, धर्म दर्शन नीति आदि पर प्रचुर मात्रा में प्रभाव पड़ा।

(४) अतिरिक्त भावना प्रधान अवास्तव एवं शब्दों के कई अर्थ कोश में मिलते हैं। रोमांस शब्द की व्युत्पत्ति से उपरिनिर्दिष्ट अर्थ आये हैं। मध्ययुगीन काल में रोमांस नाम से प्रसिद्ध हुए काल्पनिक तथा अवास्तव साहित्य में *अतीव भावुकता, अतिरिक्त विचार सत्य सृष्टि में कभी न घटित होने वाली*

---

1 डा० रा० ग० वालिंबे साहित्यातील सम्प्रदाय, पृ० ७७–७८

अत्य त चमत्कारिक एव असभाव्य घटनायें, विचित्र साहस आदि बातें प्रचुर मात्रा म दिखाई देती हैं । यह स्पष्ट है कि ऐसे अवास्तव साहित्य को 'रोमास' नामाभिधान होन के कारण उस शब्द से बने हुए रोमान्टिक' विशषण से उप रिनिदिष्ट अथ आये ।

तात्पय असम्भाव्य चमत्कारिक, अतिरजित अदभत साहसपूण अन्यव हारी आदि अथ रामाटिक शब्द से चिपके हुए है । इससे स्वच्छन्दतावाद का सही रूप स्पष्ट होता है ।

डा प्रेमनारायण शुक्ल का मत हिंदी का तथाकथित समस्त रहस्यवादी एव छाया वादी साहित्य यदि तुलनात्मक दष्टि स देखा जाए तो हमे उसम रोमाटिक काल के साहित्य की अधिकाश प्रवृत्तियो का दशन उपल ध होगा, इस तरह की राय डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने प्रदशित कर स्वच्छन्दतावाद के बारे म कहा है कि नवीन छदों का वि यास, प्रकृति प्रियता, ग्रामीण जीवन की झाँकी, यथाथ की अपेक्षा काल्पनिक चित्रो का विधान, मनोवैज्ञानिकता, अतिशय भावुकता और प्राची नता के प्रति विद्रोह आदि ऐसी कुछ बात हैं, जो हि दी के रोमान्टिक काव्य के स्वरूप का विधान करती हैं ।[1] तात्पय, नवीनता की कामना और विद्रोह की भावना रोमटिक का य एक निजी विशष है ।

डा नरेंद्र वर्मा की राय हि दी स्वच्छन्दतावाद का पुनमू ल्यांकन करते हुए डा० नरेन्द्र वर्मा न कहा है हिन्दी स्वच्छ दतावाद का चाहे हम जिस नाम स क्यो न पुकारें पर वह काल क्रम मे आकस्मिक रूप स प्रकट हो जान वाला एक काव्या गत आन्दोलन ही नहा था, प्रत्युत वह सचेतन मानवात्मा का सहज आस्फलन था । मानवीय चेतना का यह आलोडन अनक स्तरा पर एक साथ हुआ था । पश्चिम म खुली आँखो से इन्द्रजालिक अवतरण का अवलोकन किया था । कि तु वहाँ मानवीय चेतना का यह स्फोट राजनातिक धरातल पर कार्यान्वित हो रहा था । पश्चिमी राजनीति और सामाजिक विचारा के क्षेत्र में हम ब धन विमो चन की जिस द्रुत प्रक्रिया का दशन करते हैं वही प्रक्रिया साहित्यिक स्तर पर रामटिसिज्म क रूप म दिखायी दती है ।[2] आगे चलकर यह साहित्य–प्रणाली बढती रही और उस साहित्यिक क्षेत्र म अन य साधारण महत्त्व प्राप्त हो

---

१ डा० प्रेमनारायण शवल हिन्दी साहित्य म विविधवाद, सस्करण दूसरा पृ० ४५९

२ डॉ० नरेन्द्र वर्मा हिन्दी स्वच्छ दता का पुनमू ल्यांकन १९६१ पृ० १

गया ।

अथर काम्टन रिकट का विवेचन-रोमांटिसिज्म के बारे म अथर कॉम्टन रिकेट न अग्रजी साहित्य क इतिहास म या कहा है-रामटिसिज्म सामान्यत तीव्रतर जानकारी है । उच्च काल्पनिक भावना का कला या साहित्य के क्षेत्र म एक स्पष्टीकरण है । रोमांटिसिज्म का प्रभाव दशन इतिहास तथा साहित्य के विभिन्न अगा पर दिखाई देता है । उसका स्वच्छन्द के रूप म लगाया हुआ अथ गुण की अपेक्षा दोष का ही अधिक प्रदशन करता है । अमर्यादित्व और चैतन्य क पर्यायी रूप म भी कई बार उसका प्रयोग किया जाता है । रोमांटिसिज्म का आवश्यक मूलाग औत्सुक्य और सौन्दय प्रेम ही है । उसके परिणाम का गुप्त उदगम मध्य युग के अदभुत सौंदय तथा विविध वस्तुओ म सम्बन्धित निश्चित कल्पना म पाया जाता है ।[1] रिकेट ने इस विवेचन म औत्सुक्य और अदभुत सौन्दय को स्वच्छन्दतावाद क अन्तगत महत्त्वपूण माना है ।

श्री के क्षीरसागर का मत स्वच्छन्दतावाद के बारे म भिन्न भिन्न विद्वानो के मत उस वाद के बहुविध पहलुओ पर प्रकाश डालने म सहायकारी बन सकते हैं । इस लिये हम इनके मतो का विस्तार क साथ विश्लेषण कर रहे हैं । इस वाद के सन्दभ म

---

1 Arthur Compton–Ricket A History of English Literature 1946 Page 292 (Romanticism generally speaking is the ex pression in terms of art of sharpened sensibilities heightened imaginative feeling and although we are concerned only with its expression in literature Romanticism is an imaginative point of view that has influnced many art forms and has left its mark also on philosophy and history the loose popular meaning attached to the world indicates roughly its defects ra ther than its merits, for it is often used as synonymous for extravagances and sentimentality

The essential elements of the romantic spirit are curiosity and the love of beauty and it is as the accidental effect of th ese qualities only that it seeks the middle Ages there are un worked sources of romantic effect, of a strange beauty to be won by strong imagination out of things unlikely or remote)

मराठी के मान्यवर समीक्षक श्री के० क्षीरसागर ने कहा है कि रोमांटिक शब्द का रूपान्तर एक ही शब्द में करना असम्भव है। मूल अंग्रेजी संज्ञा में जिन लक्षणों का अन्तर्भाव होता है उनको लेकर भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। सौन्दर्यवाद, स्वातन्त्र्यवाद, नवीनतावाद, अद्भुततावाद, भावनावाद इनमें से प्रत्येक शब्द में रोमांटिसिज्म का एक एक लक्षण अन्तर्भूत हुआ है। 'सौन्दर्य में अद्भुतता का निवास' ऐसा रोमैंटिसिज्म का एक लक्षण बनाया है, बल्कि अद्भुतता और सौन्दर्य इन दोनों का अन्तर्भाव रोमांटिक भूमिका में होता है ऐसा नहीं। इसका मुख्य कारण रोमांटिसिज्म एक शैली या संग्राम नहीं है। रोमांटिसिज्म यह जीवन की ओर देखने की एक मूलभूत दृष्टि है या अनुभव लेने का एक भाग है। रोमांटिक वृत्ति के व्यक्ति में सौन्दर्य से पुलकित होने की शक्ति अन्यों से अधिक मात्रा में दिखायी देती है और साथ ही साथ अद्भुतता के प्रति प्रेम भी रोमांटिक वृत्ति के व्यक्ति की एक विशेषता माननी होगी।[1] क्षीरसागर ने स्वच्छन्दतावाद की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया है कि वह एक तीव्रतम जीवनानुभूति होती है जिसमें प्रेम का अनन्य साधारण महत्त्व होता है।

स्वच्छन्दतावादी मूल प्रवृत्ति पर प्रकाश डालकर श्री के० क्षीरसागर ने अपने मत की पुष्टि करते हुये कहा है—स्वप्निल वृत्ति और संवेदना पूजन रोमांटिक लोगों की सही विशेषतायें नहीं हैं तो उसका सामर्थ्य उनकी लगन (Vearning) और भावनात्मक ईमानदारी में (Sincerity) है।[2] ये दो गुण इस प्रवृत्ति के मानो दो प्राण हैं। इनके अभाव में स्वच्छन्दतावादी साहित्य का कोई मूल्य नहीं है।

अन्य महत्त्वपूर्ण मत

वसफोल्ड ने स्पष्ट रूप से कहा है—रोमांटिक प्रवृत्ति यह है कि रचना में समसामयिक जीवन की यथार्थता को व्यक्त किया जाय और ऐसा करने में यदि प्राचीन मान्यतायें खण्डित होती हैं तो उनकी चिन्ता न की जाय। जो लेखक रोमांटिक पद्धति का अनुसरण करते हैं उनकी कृतियों में हम कुछ कुछ नवीन पाने की आशा करते हैं। यह नवीनता मानव जाति के क्रमिक विकास का कारण और परिणाम दोनों ही होती है और इसी के कारण साहित्य मानव जीवन का एक अंग बन सका है।[3] अर्थात कोई भी साहित्यकृति

---

१ श्री के० क्षीरसागर टीका विवेक पहली आवृत्ति, पृ० २२०

२ वही, पृ० ३०९

३ वेसफोल्ड साहित्य का मूल्यांकन, रामचन्द्र तिवारी अनुवादित प्रथम आवृत्ति पृ० १८

आसमान से नीचे नहीं गिरती है। उसे मानव जीवन ही केन्द्रबिन्दु मानकर आगे बढ़ना होता है।

मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यिक वि० स० खांडेकर ने 'हिरवा चाफा' उपन्यास की पष्ठभूमि में स्वच्छन्दतावाद के सन्दर्भ में अपनी एक दृष्टि व्यक्त की है। वे कहते हैं—आजकल हमारे सामाजिक अनुभवों की कसौटी लगाई जाय तो सुलभता से चित्रण अधिक कल्पनारम्य (Romantic) दिखाई देने की सम्भावना है यह मैं मान्य करता हूँ कि मुझमे होने वाला 'मैं' एक तप पूर्व अधिक स्वाप्निल था।[1] मनुष्य जीता है अरमानों तथा सपनों पर। ये ही अगर अदृश्य हो जाए तो जीवन का सही अर्थ लुप्त हो जाएगा।

मराठी के अन्य एक लेखक वि० द० घाटे ने रोमांटिक के बारे में अपनी सुप्रसिद्ध आत्मकथा दिवस असे होते में कहा है—नाना के (श्रीधर बाल्कृष्ण रानडे) अनेक गुणों तथा अवगुणों पर लुब्ध होकर फर्ग्युसन के विद्यार्थियों ने उन्हें एक मत से मचर उपाधि प्रदान की थी। मचर का तात्पर्य जड़ अर्थात उल्लू का पठठा यानि रोमांटिक।[2] इस प्रवृत्ति में एक अनोखी खुमारी है जिसकी चुस्ती में हर व्यक्ति अनोखा सुख प्राप्त करता है।

स्वच्छन्दतावाद के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए डा० नरेन्द्र देव वर्मा ने कहा है—हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का इतिहास राजनीतिक विद्रोह विरोध और क्रान्तिकारी विचारों के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। यह परम्परागत मान्यताओं के पतन का और तज्जन्य निराशा का युग है। यदि हम इस काल के साहित्य की ओर दृष्टि निक्षेप करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रत्यक्षीकरण विचार प्रक्रिया संवेदन और साहित्यिक कथ्य एवं शैली में आमूल परिवर्तन हो गया है।[3] इस जागरूकता की कवि को सतत जानकारी रखनी पड़ती है जिसमें उसका कल्पना जगत सही रूप से दृष्टिगोचर हो पाता है।

स्वच्छन्दतावाद में विविधरूपता

(डा० गंगाचरण त्रिपाठी ने अपने काव्य तत्व ग्रंथ में स्वच्छन्दतावाद पर सविस्तार से विचार किया है। उन्होंने कहा है कि रोमांटिक विचारधारा के परिणाम स्वरूप भाव विषय और व्यक्तित्व की दृष्टि से साहित्य में विविध रूपता आई। स्वच्छन्दतावाद सम्बन्धी उनकी बनाई हुई १२ विशेषताएं सार ग्रहण के रूप में यों दी जा सकती हैं।)

• वि० स० खांडेकर हिरवा चाफा १९६२ पार्श्वभूमि पृ० १७
२ वि द० घाटे दिवस असे होते पहली आवृत्ति पृ० ५४७
३ डॉ० नरेन्द्र वर्मा हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पुनर्मूल्यांकन पृ० २१
४ डा० गंगाचरण त्रिपाठी काव्यतत्व १९६७ पृ० १५७

(१) सौन्दर्यवाद--इसमे कवि या साहित्यिक की वयक्तिक दृष्टि देखने के लिए मिलती है, जिसमे एक विशिष्ट भाव का प्रभाव तथा आन्तरिक सौन्दर्य की परख होती है।

(२) विद्रोह की प्रवृत्ति अथवा प्रतिक्रियात्मकता--इस साहित्य की निर्मिति ही अभिजातवाद के विरोध म हुई है जिससे पुराने सिद्धान्त तथा मान्यताएँ परो तले कुचल दी गई हैं।

(३) सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति--स्वच्छ दतावादी साहित्य मे पूर्णता नवीनता आ गई जिसम जन मानस के विचारो का प्रतिबिम्ब लक्षित होता है।

(४) मानवतावाद--मानवतावाद फ्रांस की राज्य क्रान्ति क बाद का एक जीवन मूल्य है। स्वच्छ दतावादी साहित्य म यह प्रवृत्ति विशेष रूप स उमड पडी।

(५) निराशावाद--ऐहिक जीवन मे जो अनुभूतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनका एक रूप है निराशावाद। इस भाव को लकर प्रचुर मात्रा म साहित्य सजन होता रहा।

(६) रहस्यवाद--आध्यात्मवाद म यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। कवि या लेखक अपन अन्तरतम के भाव रहस्यवाद के द्वारा प्रकट करने लगा।

(७) अतीत का गुणगान--अतीत के गुणगान से भविष्य को प्रेरणा मिलती है। इतिहास के प्रसिद्ध पात्रो द्वारा यह भाव प्रदर्शित होने लगा।

(८) कल्पना प्राधान्य--स्वच्छ दतावादी साहित्य म कल्पना भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। सामान्य से सामान्य वस्तु को इसी कारण महत्त्व मिला।

(९) व्यक्तिवाद अथवा व्यक्तित्व का प्राधान्य--आधुनिक साहित्य म यह प्रवृत्ति विशेष रूप स दिखाई देती है। इसम साहित्यकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट रूप स प्रतिबिम्बित होता है।

(१०) प्रकृति प्रेम--प्रकृति प्रेम के कारण कई साहित्यिको को नयी प्रेरणा मिल चुकी है। कई लोगो न इसमे मानवीय जीवन के विविध भाव ढूँढ निकालने की कोशिश की है।

(११) आन्तरिक प्रेरणा का महत्त्व--स्वच्छ दतावादी साहित्य की यह एक निजी प्रेरणा है जिसम कवि या लेखक के आन्तरिक भाव सहजता से प्रस्तुत होते हैं। लिखने के लिए लिखने' की प्रवृत्ति इस प्रेरणा मे मिलती नही।

(१२) गतिशीलता की स्वीकृति--आधुनिक जीवन का यह सुस्पष्ट चित्र है जिसका आकर्षण साहित्यकार का सदा बना रहता है।

तात्पर्य, स्वच्छ दतावादी प्रवृत्ति म य सभी गुण कम अधिक मात्रा मे दृष्टिगोचर होते हैं स्वच्छ दतावाद का असली रूप इन विशेषताओ म लक्षित होता है।

डा० दशरथ सिंह का मत– डा० दशरथ सिंह के मतानुसार अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद के दो रूप दिखाई देते हैं एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य रूप में युवक नवयुवक और नवयुवतियों के स्वाभाविक आकर्षण उनके प्रेम मिलन सामाजिक और पारिवारिक बाधाएं तथा अन्त में उन बाधाओं का अपसारण और प्रेम प्रतिज्ञा का सुखद मिलन होता है। अन्त में सब भलों की वृत्ति को चरितार्थ करते हुए ये नाटक समाप्त होते हैं। शेक्सपियर के 'एज यू लाइक इट' 'ट्वेल्थ नाइट' 'टेम्पेस्ट' आदि नाटक इसी प्रकार के रोमांटिसिज्म की अभिव्यक्ति करते हैं।

परन्तु रोमांटिसिज्म का एक दूसरा आन्तरिक रूप भी है और इस अर्थ में रोमांटिसिज्म यथार्थवाद (Realism) और रूढ़ि या प्राचीन परिपाटीवाद (Classicism) के विरोध में आता है।[1] नाटक में स्वच्छन्दतावाद के ये तत्व स्वच्छन्दतावादी प्रणाली को अधिक मानवीय और समर्थ बना देते हैं।

रोमांटिसिज्म यथार्थवाद से पूर्णतः भिन्न नहीं है। रोमांटिसिज्म यथार्थवाद का प्रतिकूल दिखता है क्योंकि यथार्थ का अर्थ हम केवल स्थूल रूप पदार्थों से ही लेते हैं। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो हम देखेंगे कि अन्तर्मानसिक प्रतिक्रियाएं और रुचियाँ भी उतनी ही यथार्थ हैं जितनी ईंट पत्थर। रोमांटिक कवि इस तथ्य को जानता है पूर्णतः तो नहीं नाप सकता पर वह बाह्य निरे यथार्थता में वास्तविकता की समस्या को सुलझाता है।[2] स्वच्छन्दतावादी साहित्य का यह स्वरूप कवि या लेखक की अनुभूतियों को प्रभावी रूप में साकार कर देता है।

अन्त में हम स्वच्छन्दतावाद की मुख्य रूप से विशेषता विचार करते हुए यह बताना चाहते हैं कि स्वच्छन्दतावादी कलाकार अपने एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर उस दृष्टिकोण के अनुसार कलाकृतियों को जन्म देता है। इन कृतियों में अन्तर्मन रम्यता स्वप्नरंजन कलात्मकता कल्पना शक्ति का प्रस्फुटीकरण और सौन्दर्य वृत्ति का उत्कट आविष्कार उमड़ पड़ता है।

(ख) हिन्दी नाटक और स्वच्छन्दतावाद

पहला स्वच्छन्दतावादी नाटक

स्वच्छन्दतावादी धारा के कारण हिन्दी नाट्य जगत को एक नई रचना

---

१ डा० दशरथ सिंह हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक–प्रथम संस्करण पृ० २८

२ वही पृ० २५

प्राप्त हो गई। परम्परागत प्रणाली को अपना कर उसी का अनुकरण करने म व्यग्र हुई नाट्य प्रणाली पाश्चात्य साहित्य के परिशीलन से दिन दूनी रात चौगुनी विकसित हुई। प० विश्वनाथ मिश्र के मतानुसार भारते दु के सम कालीन श्री निवासदास जी प्रमुख नाटककार हैं उन्होंन रणधीर प्रेम मोहनी मे शेक्सपियर के स्वच्छ दतावादी नाटकों की भाँति एक दुखा त रचना प्रस्तुत की इस नाटक म दो परस्पर विरोधी कुटुबो के युवक और युवती का स्वच्छन्द प्रेम और दुखमय अवसान दिखाया गया है। स्वच्छ दतावादी नाट्यशैली की। यह प्रथम दुखा त रचना मानी जाती है।[1] इस प्रणाली को अपनाकर हि दी नाट्यसष्टि म अपना एक प्रभावी स्थान प्राप्त करन वाल जयशकर प्रसाद का नाम मशहूर है। भल ही उनके नाटको म रगमचीय कुछ त्रुटिया रही हो, लकिन स्वच्छ दतावादी धारा का प्रभावी आविष्कार उन्ह न ही सवप्रथम किया। उनका प्रथम नाटक राजश्री यह स्वच्छ दतावादी प्रवृत्ति का श्री गणेश है।

नाटक साहित्य का काल—विभाजन प्रथम बार वज्ञानिक ढग से कर डा० च दूलाल दुब अपनी राय प्रदर्शित करते हुए कहते हैं—भारते दु हरिश्चन्द्र के विद्या सु दर' स लेकर राधाकृष्ण दास के महाराणा प्रताप' तक के नाटको का रूप विधान शास्त्रीय शली क अनुरूप है, अथात इन नाटको म भरतमुनि क नाट्यशास्त्र के अधिकांश लक्षण पाये जाते हैं इसलिए इस युग को शास्त्रीय शली का युग कहना सगत होगा। ईसवी सन् के हिसाब से यह काल १७६७ स १९०० तक का होगा।

सन १९०० क बाद के नाटको मे शास्त्रीय शली से दूर रहन की प्रवृत्ति बढती हुइ परिलक्षित होती है। इन नाटको म स्वच्छ दतावादिता क गुण दिखाई दन हैं अर्थात कल्पना की प्रधानता इन रचनाओ मे मिलगी। यह प्रवृत्ति सन १९३० ई० तक पायी जाती है। अत इस काल को स्वच्छ दता वादी युग का कहना समचीन होगा।[2] कहना न होगा कि इस युग क प्रभा वित नाट्य रचनाओ की पूरी जानकारी प्रस्तुत प्रबन्ध म दी जा रही है।

द्विवेदी युग का नाट्य साहित्य

बगला नाटककारो—माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजे द्र लाल राय, रवी द्र

---

१ देवदत्त शास्त्री सपादित विश्वनाथ मिश्र का लख पृथ्वीराज कपूर अभि नदन ग्र थ १९६३ पृ० ११९

२ डा० च द्रलाल दुबे हिन्दी नाटको का रूप विधान और वस्तु विकास प्रथम सस्करण पृ० १०

नाथ टागुर आदि-के नाटक अनन्दित हुए । इन अनूदित नाटको म भी स्व च्छन्दतावादी नाट्य सिद्धान्तो का उपयोग था । हिन्दी जगत न हिन्दी जगत को नाटक ग्रहण करने म पदचात् रियमानुसरण की जिस मयादावादी साहित्यिक दृष्टि को उत्पन्न किया था उसके विरुद्ध अनुभूति की स्वच्छन्द अभिव्यंजना का जो उद्योग प्रारम्भ हुआ था उस स्व अनुवादों न प्रभावित किया था । इसी प्रेरणा स हिन्दी म स्वच्छन्दतावादी नाट्य कला का विकास हुआ जिसका उत्कृष्ट रूप जयशकर प्रसाद की रचनाओ म है ।[1] हिन्दी नाट्य साहित्य का यह एक नया युग था जिसम एक नयी विधा उमड पडी जिसम बिजली जसी चमक थी । इसी कारण भारतीय रगमच पर हिन्दी नाटकों का एक नया नाटककार प्रभात उदित हुआ ।

प्रसाद जी की रचनाओ म प्रारम्भ स ही हम स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति देखत है जिसकी प्रेरणा स उन्होंने पूव और पश्चिम दोनो म ही नाटयकला सम्ब धी शास्त्रीय विधानो को भग कर अपनी स्वच्छन्द नाट्य शैली को विकसित किया ।[2] उस काल की यह एक नयी देन थी जिसे पाकर नाटय प्रेमी रसिको की आँखें ठडी हो गयी ।

स्वच्छन्दतावादी नाटकों के विषय

डॉ० दशरथ सिंह ने हिन्दी नाटको म स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का विकास कथित करत हुए कहा है—अल्प स अल्प और महान स महान विषय पर भी स्वच्छन्दतावादी नाटक लिख जा सकत हैं । तब भी कुछ ऐस विषय हैं जो स्वच्छन्दतावादी अभिव्यक्ति के लिए अधिक समीचीन होते है । जसे सुदूर देश और सुदूर काल स सम्बन्धित विषय अथवा एसे विषय जिनमे कल्पना की क्रिया और तीव्र अनुभूतियो की अभिव्यक्ति की पर्याप्त सम्भावना हो । एसे ही मानव प्रेम और प्रकृति प्रेम आदि भी स्वच्छन्दतावादी अभिव्यक्ति के लिए उचित विषय है । इसी कारण स्वच्छन्दतावादी नाटककार प्राचीन इतिहास पुराण कथाओ आदि स विषय प्राप्त करत हैं । अंग्रेजी साहित्य के सवश्रेष्ठ स्वच्छन्दतावादी नाटककार शेक्सपियर के बहुत स नाटको की कथावस्तु इतिहास सम्बिन्धित है । और उनके कतिपय सुखान्त नाटको म मानव प्रेम तथा प्रकृति प्रेम की प्रधानता है । इसी प्रकार हिन्दी के प्रतिनिधि स्वच्छन्दतावादी नाटककार श्री जयशकर प्रसाद ने भी अपने नाटको के लिए सुदूर काल

---

१ देवदत्त शास्त्री तथा अन्य आदि सपादित श्री विश्वनाथ मिश्र का लेख पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्रन्थ १९६३ पृ० १२०

२ वही, पृ० १२०

के इतिहास को ही चुना है। वैसे, हम यह भी कहना चाहते हैं कि इस विषय कोई स्वीकृति बन्धन नही है।[1] अर्थात किसी साहित्य विधा का किसी विशिष्ट बन्धन म बाँध रखना, किसी कला की अभिव्यक्ति को विशिष्ट ढाँचे म डालना असगत होगा। इसस उनके विकास म बाधा पहुँचेगी और उनका सहजगत विकास रुक जाएगा।

प्रसाद के नाटकों की प्रेरणा

–हिन्दी नाट्यसृष्टि म जयशकर प्रसाद का अनन्य साधारण महत्त्व है। क्योंकि व स्वच्छन्दतावादी नाटय प्रणाली के समय प्रवतक हैं। प० विश्वनाथ प्रसाद न प्रसाद जी के नाटकों की मूल प्ररणा विशद करते हुए कहा है जीवन के भावुकतापूण एव सघष के स्वरूप के चित्रण म स्वच्छन्दतावादी नाटयकला अग्रसर दिखाई देती है। वस स्वच्छन्दतावाद जीवन क प्रति एक भावुकतापूण दृष्टिकोण है और इस वत्ति का साहित्यकार जीवन को अपनी भावनाओ एव कल्पनाओ स अनुरजित करक प्रस्तुत करता है। यथाथ जीवन की अभिव्यक्ति क सहारे यह साहित्यिक वृत्ति अपन को समुचित रूप स प्रकट नही कर सकती। इसलिए स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार पुरातन को अपनी भावनाओ और कल्पनाओ का नया रूप दकर प्रस्तुत करन म रुचि लेता है। प्रसाद जी के नाटकों की यही मूल प्रेरणा है।[2] इसम उनके सम्पन्न तथा समद्ध व्यक्तित्व का अनुपम आविष्कार हुआ है। साथ ही साथ भारतीय इतिहास तथा भारतीय सस्कृति के प्रति उनके मन म जो सम्मान की भावना थी उसका भी सवागसुन्दर चित्र उनक नाटय साहित्य म दृष्टिगत होता है।

स्वच्छन्दतावादी नाटककार

स्वच्छन्दतावादी नाटकों के सन्दभ म डा० शशिशेखर नथानी न कहा है कि हिन्दी नाटकों म भी यह स्वच्छन्दतावादी प्रवत्ति नवोन्मेष की भावना लेकर विकसित हुई और द्विवेदी युग क पश्चात स्वच्छन्दतावाद की इस नयी विकसित होती हुई धारा को जयशकर प्रसाद न अपनी सशक्त लेखनी से हिन्दी साहित्य म प्रतिष्ठित कर दिया।[3] इस स्वच्छन्दतावादी धारा को विकसित करन म जयशकर प्रसाद, गोविन्दवल्लभ पन्त, उदयशकर भटट, हरिकृष्ण प्रेमी, व दावन

१ डा० दशरथ सिंह, हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी नाटक प० २६

२ दवदत्त शास्त्री तथा अन्य आदि सम्पादित श्री विश्वनाथ मिश्र का लेख पथ्वीराजकपूर अभिनन्दन ग्रन्थ प० १२१

३ डा० शशिशेखर नथानी जयशकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सस्करण, प० ७१

लाल वर्मा डा० रामकुमार वर्मा डा० दशरथ ओझा जगदीशचन्द्र माथुर माहेश्वरी आदि प्रमुख नाटककारों ने ठोस योगदान दिया है। इन नाटककारों की प्रमुख नाट्यकृतियों का सम्यक आलोचना मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में की जाने वाली है।

स्वच्छदतावादी नाटकों की विशेषताएं

प्रस्तुत प्रबन्ध से सम्बन्धित स्वच्छन्दतावादी नाटकों की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई जा सकती हैं।

(१) कथावस्तु में अति नाटकीयता तथा रोमांचकारी घटनाओं की भरमार रहती है।

(२) इन नाटकों में पात्र प्रायः विशेष प्रकार के होते हैं। वे अधिकतर धीर, प्रेमी अधिकतर द्वन्द्व करने वाले पराक्रमी धूर्त आदि के रूप में प्रकट होते हैं।

(३) पात्रों का चरित्रचित्रण मनोविज्ञान के आधार पर किया जाता है।

(४) प्रमुख पात्रों के साहस के कार्यों तथा घटनाओं का विवरण रहता है।

(५) देश काल एवं उद्देश्य का यथार्थ निरूपण होता है।

(६) इन नाटकों का केन्द्रबिन्दु होता है या भावुकता एवं कलात्मकता।

(७) स्वप्न रंजन अधिक मात्रा में रहता है।

(८) सुखान्त और दुखान्त दोनों रूपों में नाटक पाए जाते हैं।

(९) विलासिता नाशा छन्दछाड का प्रसार अधिक रहता है।

(१०) सामान्यतः ये नाटक अधिक परिष्कृत और साहित्यिक होते हैं।

(११) किसी भी विषय को लेकर नाटक लिखे जा सकते हैं। इतिहास पुराण, सामाजिक जीवन, प्रकृति प्रेम इत्यादि सभी विषयों का इसमें समावेश हो सकता है।

(१२) अद्भुत रम्यता, आकस्मिकता एवं कल्पना के अविरल प्रवाह की प्रधानता दी जाती है।

(१३) सौंदर्य-पूजन, प्रेम भावना असामान्य दाहस एवं आत्मबलिदान की भावना का प्रदर्शन होता है।

(१४) नाटककार किसी नियम से जकड़ा नहीं जाता है। वह समयानुसार अन्तर्द्वन्द्व एवं आंतरिक संघर्ष को नाटकों में स्थान देता है।

(१५) जीवनानुभूति आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जाती है।

साराश, स्वच्छन्दतावादी नाट्य साहित्य स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति को लेकर निर्मित साहित्य में अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। इसमें मानवी मन के, मानवी कर्तृत्व के सब पहलू दिखाई देते हैं। स्वच्छदतावादी नाटकों

म क्या नहीं है ? प्रेम है, इतिहास है, अदभुतरम्यता है, सब कुछ है ।

(ग) मनोविज्ञान के विभिन्न अग

मनोविज्ञान अंग्रेजी के 'साइकोलाजी (Psychology) शब्द का अनुवाद है। इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'साइके' (Psyche) आत्मा तथा 'लोगस (Logos) प्रवचन से हुई। इस प्रकार मनोविज्ञान को अक्षरश आत्मा का अध्ययन समझा जाता है।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान

ग्रीक दार्शनिकों के समय से साइके का अनुवाद 'मन' करना आरम्भ कर दिया और तब से मनोविज्ञान की परिभाषा मन के अध्ययन के रूप में दी जाने लगी। यह परिभाषा वर्तमान शताब्दी के आरम्भ तक चलती रही। अन्त में इसका स्थान मनोविज्ञान की इस परिभाषा ने कि वह व्यवहार का विज्ञान है ले लिया।[1]

भारतीय तत्वज्ञान में मन यह स्वतन्त्र वस्तु नहीं माना गया है। कठ, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर इत्यादि उपनिषदों में मन के बुद्धि, चित्त, अहकार आदि अगों के बारे में तात्विक विचार हुआ है। एक प्रज्ञान कला के ही हृदय, मन, सज्ञान, अज्ञान, विज्ञान प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि धृति मति, मनीषा स्मृति इत्यादि आविष्कार कैसे हुए हैं इसका विचार एतरेयोपनिषद में हुआ है। इस प्राचीन भारतीय मनोविज्ञान ने जागृत मन की चार अवस्थाएँ मानी हैं–सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति और तुर्या। इनमें से सुषुप्ति और स्वप्न ये अवस्थाएँ पाश्चात्यों के कल्पनानुसार अवचेतन (Subconscious) की हैं और जागृत तथा तुर्या यह समा यवस्था (Supercor sciousstate) है।[2] पर आजकल मनोविज्ञान विज्ञान माने जाने के कारण भारतीय तत्वज्ञान की ये कल्पनाएँ पुरानी हो गई हैं। वुडवर्थ ने कहा है कि मनोविज्ञान परिवेश के सम्पर्क से होने वाले क्रिया व्यापारों का विज्ञान है।[3]

मनोविज्ञान के उद्देश्य जो अब मनोवैज्ञानिकों को मान्य हैं वे है–मनुष्य के व्यवहारों का अध्ययन करके उसके व्यवहारों के सम्बन्ध में यह सत्यता एवं विश्वसनीयता से भविष्यवाणी करना कि दी हुई दिशाओं में उनका क्या रूप होगा एवं यह प्रयत्न करना है कि मनुष्य के व्यवहारों पर कैसे नियन्त्रण रखा जा सके। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के कुछ कर्तव्य

१ नामल एल० मन० (शर्मा अनुवादित) मनोविज्ञान द्वितीय सस्करण पृ० १९

२ डा० प्र० न० जोशी–मराठी साहित्यातील मधुराभक्ति, पृ० १११

3 Woodworth and Marquis Psychology, 1952, P 3

माना जाता है जैसे—(१) मनुष्य के व्यवहारों को समझना (२) मनुष्य के व्यवहारों का भविष्य में जो रूप होगा उसका पता लगाना तथा (३) मनुष्य के व्यवहार पर नियन्त्रण रखना।[1]

मनोविज्ञान का आज का स्वरूप

मनोविज्ञान के स्वरूप में आजकल आमूलाग्र परिवर्तन हो गया है। प्राचीन काल में तत्त्वज्ञान का यह एक अंग माना जाता था पर आज आधुनिक विज्ञानों में इसे गिना जा रहा है। नीतिशास्त्र की भांति यह आदर्शवादी नहीं है। वस्तुतः इसकी प्रायोगिकता पद्धति विशेषता के कारण इसे विज्ञान की संज्ञा प्राप्त हो चुकी है।

मनोविज्ञान की उपयोगिता

मनुष्य के मानसिक व्यापारों के स्वरूप का ज्ञान उनके बहुविध बर्तावों का मर्म उनके बर्ताव का अनुमान इन पर नियन्त्रण रखा जाए और सर्वग्राह्य सिद्धान्त प्रस्थापित किया जाए ये मनोविज्ञान के प्रमुख प्रयोजन माने जाते हैं।

मनुष्य के बर्ताव पर बार-बार रखना समन्वित होना यानि विशिष्ट बर्ताव के बारे में पूर्व सूचनाएँ भी प्राप्त करना और इससे मनोविज्ञान का उपयोग शैक्षणिक राजकीय सामाजिक औद्योगिक धार्मिक आदि कई क्षेत्रों में किए जाने की सम्भावना रहेगी। तात्पर्य यह विज्ञान जीवनोपयोगी हो इस दृष्टि से मनोवैज्ञानिक विशेष यत्नशील हैं।

सभी विज्ञानों का इतिहास यही बताता है कि विज्ञान का जन्म जिज्ञासा के कारण हुआ है। यह स्पष्ट ही है कि मानवी जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने के लिए मनुष्य ने सतत अविरत कष्ट उठाए हैं। मनोविज्ञान भी इसके लिए अपवाद नहीं। मृगजल की भांति इन्द्रिय भ्रम अवस्तु भ्रम कई तरह के सपने स्मृति भ्रंश मानसिक विकृति आदि विषय भी मनोविज्ञान के अन्तर्गत आते हैं ऐसा मानने पर भी हमें कहना पड़ता है कि इन प्रकारों की कार्यकारण मीमांसा करके उपाय योजना का ज्ञान ही अपना इसका मूल में था। आज मनोविज्ञान की कई शाखाएँ विस्तृत तथा सम्पन्न हुई हैं जैसे—बाल मनोविज्ञान (*Child Psychology*) मनोविकृति शास्त्र (*Abnormal Psychology*) चिकित्सा मनोविज्ञान (Clinical Psychology) औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology)।

---

१ डा० एम० एस० माथुर—सामान्य मनोविज्ञान षष्ठ संस्करण पृ० २८

२ प्रा० ह० वा० सिरजकर—आधुनिक मानसशास्त्र प्रवेश, १९६६ पृ० २०

इस दृष्टि से वुण्ट के शिष्य प्रो० टिचनर, स्टेनले हॉल, जी० एम० कैटेल, मुन्स्टरबर्ग इत्यादि और विलियम जेम्स जान ड्यूई जैसे मनोवैज्ञानिक विशेष यत्नशील रहे हैं। यह बात स्पष्ट ही है कि बाल-मनोविज्ञान और साथ ही साथ अध्ययन प्रक्रिया का स्वरूप समझ में आने के कारण अध्यापन तंत्र परिवर्तित होता गया, जिससे नैदानिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन सुलभ हो गया।

आजकल मनोविज्ञान का साहित्य सृजन में भी महान योगदान मिल रहा है। इसी कारण साहित्य में मानवी जीवन के सूक्ष्म पहलुओं का यथार्थ चित्रण हो रहा है। तात्पर्य, जीवनवाद तथा उपयोगितावाद के सर्वांग-सुन्दर दर्शन मनोविज्ञान में परिलक्षित हो रहे हैं।

मनोविज्ञान के सम्प्रदाय

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अनेक मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय स्थापित हो गये हैं। मनोविज्ञान के सम्प्रदायों की संख्या भी विवादग्रस्त है। अलग अलग विद्वान मनोविज्ञान के सम्प्रदायों की संख्या भी अलग अलग बतलाते हैं।[1]

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार व्यवहारवाद या आचरणवाद, फ्रायड का मनोविश्लेषण सम्प्रदाय गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, प्रेरणावादी मनोविज्ञान, आदि सम्प्रदाय अधिक महत्वपूर्ण हैं।

आलोच्य कालीन नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमने उपरिनिर्दिष्ट सम्प्रदायों, सामान्य मनोविज्ञान एवं समाज मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग कर लिया है। स्वच्छंदतावादी नाटकों की मनोवैज्ञानिक आलोचना प्रस्तुत करते समय पात्रों के विचारों एवं भावों में परिलक्षित होने वाले मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं सम्प्रदायों की छानबीन की है। विस्तारभय तथा पुनरावृत्ति का दोष टालने के लिए हमने इस अध्याय में स्वतंत्र रूप से मनोविज्ञान के सिद्धान्तों एवं सम्प्रदायों का विश्लेषण नहीं किया है।

साहित्य और मनोविज्ञान

भावों और मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान का केन्द्र बिन्दु है। साहित्य के भिन्न भिन्न विषयों में मनोविज्ञान का प्रयोग हुआ है। साहित्य मनोभावों की उपज है। मानवी स्वभाव की पूरी जानकारी साहित्यिकों के लिए वांछित है। किसी भी साहित्य रचना में देश काल की परिस्थिति, सभ्यता आचार विचार तथा साहित्यिक की अभिरुचि दृग्गोचर होती है।

मानवी व्यवहार का यथार्थ परिचय करा देने के लिए साहित्यकार को

---

१ रामपालसिंह वर्मा-मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, प्रथम संस्करण दो न्द पृ० १

मनोविज्ञान का ऋणी होना चाहिए। वह अपनी प्रतिभा के द्वारा नई बातों का उद्घाटन करता है। जब आधुनिक मनोविज्ञान का विकास नहीं हुआ था तब भी शेक्सपियर, कालिदास, जायसी, सूर, तुलसी जैसे साहित्यकारों ने मानवी अन्तर्वृत्तियों की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में की है। आगे चलकर कई मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान के कुछ निश्चित सिद्धान्त प्रस्थापित किये और उनके प्रकाश में कई मनोवैज्ञानिक साहित्यिक कृतियाँ निर्मित हो रही हैं।

साहित्य मानवी जीवन की अभिव्यक्ति और उनके भावों एवं विचारों का मूर्त रूप है। मनोविज्ञान भी मानव जीवन का पर्यवेक्षण करता हुआ तत्सम्बन्धी भावों एवं विचारों को स्पष्ट करता है। तात्पर्य, साहित्य में मानव जीवन एवं उसके भावों एवं विचारों को [illegible] जाता है। मनोविज्ञान भी उस जीवन के अनुभव और प्रवृत्तियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

साहित्य रचनाओं में मानव हृदय की रागात्मक अनुभूति और संकल्पात्मक अनुभूति का चित्रण किया जाता है। उसमें मानवी जीवन का सुख-दुःखात्मक रूप प्रकट होता है। कुण्ठित मनोकामना, अहम् प्रवृत्ति, लिबिडो, इडिपस ग्रंथि आदि विषयक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के जरिए इसका प्रभावी रूप में आविष्कार होता है।

इस तरह दोनों का सम्बन्ध जीवन से है। दोनों का मानव के मनोविकारों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः हमें ऐसा कहना पड़ता है कि साहित्य और मनोविज्ञान का चोली-दामन का सम्बन्ध है।

स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

स्वच्छन्दतावादी नाटक किसी भी विषय पर लिखा जा सकता है। मानवी जीवन, प्रकृति, प्रेम, प्राचीन इतिहास, पुराणकथा आदि किसी भी विषय को लेकर स्वच्छन्दतावादी नाटककार अपनी नाट्यसृष्टि तैयार करता है। इस साहित्य निर्मिति में नाटककार को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का सहारा लेना ही पड़ता है। इसी कारण वह कलाकृति आकर्षक एवं प्रभावी बन पाती है। प्रस्तुत शोधकर्ता का विषय इसी तथ्य को लेकर होने के कारण इस पर सविस्तार विचार करना उचित समझा गया है।

२ | स्वच्छन्दतावादी पूर्व युग के नाटक और मनोविज्ञान

बीसवी सदी के प्रारम्भ से ससार भर मे मनोविज्ञान के क्षेत्र म दिन दूनी प्रगति हो रही है। साहित्य मनोभावाभि यक्ति का प्रस्फुटन है जिससे उसके साथ मनोविज्ञान का चोली दामन सा सम्ब ध है। बस मनोविज्ञान के परिष्कार के पहल साहित्य क्षेत्र म मनाविज्ञान की कई गुत्थिया का सफलता के साथ निर्वाह हुआ है। नाटक एक ऐसी साहित्य विघा है, जिसम जीवन का यथाथ प्रतिबिम्ब दृष्टिगाचर होता है। इसीलिए उसमे मनाविज्ञान की कतिपय उप पत्तिया की सहजता के साथ अभि यक्ति हुई है।

हि दी नाटक के जनक

महाराजा विश्वनाथ सिंह का गद्य पद्य मिश्रित व्रजभाषा म लिखा हुआ 'आन द रघुन दन' तथा गिरधरदास द्वारा लिखा 'नहुष' य हि दी नाटक साहित्य क प्रथम मौलिक नाटक माने जाते हैं। इसके अन तर निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' कहन वाल भारते दु हरिश्च द्र ने हि दी जगत मे अभूत पूव क्रान्ति करके दिखाई है। कहना न होगा कि उस क्रा ति का मूल स्रोत हि दी भाषा के सवा गाण विकास मे सन्निहित है। भारते दु हरिश्च द्र ने हि दी साहित्य की अनक विध विधाओ का प्रचलन एव उन्नयन एक साथ ही किया है। क्या नाटक क्या उप यास, क्या कहानी, क्या निब ध इन सभी विधाओ को एक ही रस्सी म बांधकर विकासो मुख बनाने का काय भारत दु जस महान कलाकार के ही बस की बात है। भारत दु ने हि दी म कुछ अनुवान्ति और कुछ मौलिक नाटय रचनाएँ का हैं। उनके मौलिक नाटका मे राष्ट-जागरण, समाजोन्नति भाषा समस्या, यथाथ लोक जीवन राजनीतिक समस्या आदि विषयो का चित्रण हुआ है। इस दृष्टि स भारते दु हरिश्च द्र हि दी नाटक के जनक कहलाने योग्य हैं।

प्रस्तुत अध्ययन म हम स्वच्छन्दतावादी पूव युग के नाटको म मनोवैज्ञानिक तथ्य की खोज करनी है। इसीलिए इस युग क हरिश्चन्द्र भारतेन्दु तथा उनके परवर्ती नाटककारा की ओर हम मुडते है। भारतेन्दु के मौलिक नाटका म वदिकी हिंसा हिंसा न भवति सत्य हरिश्चन्द्र श्री चन्द्रावली विषस्य विषमौषधम भारत दुदशा नील देवी अधेर नगरी नाटक बहुत चर्चित हैं।

वदिकी हिंसा हिंसा न भवति

इस नाटक म नाटककार न समाज की कुप्रथाओ तथा आडम्बर के प्रति तीव्र व्यग्य कसे हैं। इसकी यथार्थता चतुथ अक म यमराज और राजा के सवादो म परिलक्षित होती है।

यमराज— (राजा स) तुम पर जो दोष ठहराय गय हैं बोलो उनका क्या उत्तर देना है।

राजा— (हाथ जोडकर) महाराज मैंने तो अपने जान सब धर्म ही किया कोई पाप नहीं किया जो मास खाया वह देवता पितर को चढा कर खाया और देखिए महाभारत म लिखा है कि ब्राह्मणो न भूख क मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इसस कुछ नहा हुआ।

यमराज— कुछ नहा हुआ इसकी सजा करो।

१ दूत— जो आज्ञा (कोड मारता है।)

राजा— (हाथ स बचा बचाकर) अब देखिए अग्रेजो के राज्य म इतनी हिंसा होती है सब हिन्दू बीफ खाते हैं उन्ह आप नहीं दड देते और हाय हम म धार्मिक का यह गति दहाई वेदो की दुहाई धम शास्त्र की दुहाई व्यास जी की हाय र मैं इनके भरोसे मारा गया।[1]

उपयुक्त सवादो म प्रथा का महत्त्व (Importance of Custom) एव अन्यायी शासक का यथाथ चित्र अकित हुआ है। अततोगत्वा यमराज के दरबार म सब प्रधान पात्र एकत्र किय जाते है। राजा मत्री पुरोहित तथा गडकीदास को दड दिलाया जाता है और शैव तथा वष्णव को क्रमश कलाश तथा वकुण्ठ का वास मिलता है। इसस स्पष्ट हो जाता है कि अन्यायी शक्ति क बल पर समाज म कुप्रथाए प्रचलित हुइ।

सत्य हरिश्चन्द्र

यह पौराणिक कथावस्तु के आधार पर लिखा हुआ नाटक है जिसम सत्य

---

१ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु-नाटकावली द्वितीय भाग द्वितीय स०, पृ० ११८

की महत्ता प्रस्तुत की है। इसम प्रतिबिम्बित फ्रायड प्रणीत आदेशात्क स्वप्न दखने लायक है---

रानी-- महाराज ! स्वप्न क शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज न ग्र थो म दखा है।

हरिश्चन्द्र--(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी दखा है कि एक ज्ञानी ब्राह्मण विद्यामथन करने को मब दिव्य महाविधाओ को खीचता है और जब मैं स्त्री जानकर उनको बचाने गया हू तो वह मुझी स रुष्ट हो गया है और फिर जब बडे विनय से मन उस मनाया है तो उसन मुझसे मेरा सारा राज्य मागा है, मैंने उसे प्रसन्न करन का अपना सब राज्य दे दिया है।

(इतना कहकर अत्यन्त याकुलता का नाटय करता है।)

रानी--- नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यो हो गय ?

हरिश्चन्द्र--मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं इस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसका थाता सौंपे भोजन कसे करूगा ?

रानी-- नाथ ! क्या स्वप्न क व्यवहार को भी आप सत्य मानियगा ?

हरिश्चन्द्र--प्रिये ! हरिश्च द्र की अद्धा गिनी होकर तुम्ह एसा कहना उचित नही है। हां ! भला तुम एसी बात मु ह स निकालती हो ! स्वप्न किसन दखा है ? मैंने न ? फिर क्या स्वप्न ससार अपन काल म असत्य ह इसका कौन प्रमाण है ? और जो अब असत्य कहो तो मरन क पीछे तो यह ससार भी असत्य है फिर उसम परलोक क हतु लोग धर्माचरण क्या करते हैं ? दिया सो दिया ? क्या स्वप्न म क्या प्रत्यक्ष ?[1]

इन पक्तियो का पठन स ज्ञात होता है कि राजा हरिश्च द्र न आदेशात्मक स्वप्न दखा है और अपन प्रबल नतिकात (Strong Super Ego) के बल पर इसकी पूर्ति भी करना चाहता है।

श्री चन्द्रावली

इस नाटक म प्रम भावना का यथार्थ निरूपण हुआ है। रस परिपाक का दृष्टि स नाटिका अत्यन्त उत्तम है। इसस अच्छा प्रम नाटक हि दी म मिलना कठिन है।[2] उदाहरण क लिए देखिए।

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सत्य हरिश्चन्द्र, द्वितीय सस्करण, १९३७ पृ० २४ २५

२ डा० सामनाथ गुप्त हि दी नाटक साहित्य का इतिहास, चौथा सस्करण पृ० ४५

ललिता--जाग लिया यहि कारन ?
जोगिन--अपन पिय क काज ।
ललिता--मन्त्र कौन ?
जोगिन--पिय नाम इक
ललिता--कहा तज्यो ?
जोगिन--जग लाज ।
ललिता--आसन कित ?
जोगिन--जितही रम
ललिता--पंथ कौन ?
जोगिन--अनराग ।[1]

उपयुक्त सभाषणा म तादात्म्याकरण का भाव प्रस्फुटित हुआ है।

विषस्य विषमौषधम

इस एतिहासिक एव राजनीतिक नाटक म तत्कालीन स्थिति का चित्र अकित हुआ है। इसम बडोदा नरश मल्हारराव गायकवाड का गद्दी स उतारा जाना और उस गद्दी पर सयाजी राव का बिठान की घटना का साद्यन्त वत्तात है। यह भाण ह जो नाटक का एक भद है। इसम कवल एक अक होता है और एक ही पात्र मच पर आकर व्याख्यान सा दता है।[2] भडाचाय क कथन का कुछ अश दष्ट य है। भडाचाय—(लम्बी सांस लकर ऊपर दखकर) क्या कहा ? और मान दन रा एक कुमार गद्दी पर बठा भा ता दिया गया। लो भया तब क्या ? अहा हा ! भला तब हम क्या इतना भँखत थ। अहा ध य है सर्कार ! यह बात कहा नहीं है। दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जब्त हो जाता। यह उन्हीं का कल्जा है। ह ईश्वर जब तक गगा जमुना म पानी ह तब तक इनका राज स्थिर रह। अहा ! हमारी तो पुराहिती फिर जगी। हम मल्हारराव स क्या काम हम तो उस गद्दी स काम है कोउ नृप होइ हमैं का हानी ध य अग्रज ! राम और युधिष्ठिर का धमराज्य इस काल म प्रत्यक्ष कर दिखाया अहाहा (ऊपर दख कर) क्या कहा ? कहा और क्या चाहत हो। भला और क्या चाहग हमारा भडपना जारा रहा बडौदा का राज फिर सुख स बसा तो अब और क्या चाहिय। और मल्हारराव का जो कहो ता उसका कौन सोच है जस व्रत वस

१ भारत दु हरिश्च द्र श्री च द्रावली, छठवाँ सस्करण पृ० १०१
२ ब्रजरत्नदास भारत दु नाटकावली द्वितीय सस्करण भूमिका पृ० १३

उद्यापन विपस्य विषमौषधम तो भी यह भरत वाक्य सफल हो ।[1] प्रस्तुत आवरण से ज्ञात होता है कि भड़ाचार्य में विस्थापन (डिसप्लेसमेन्ट) भाव की अभिव्यक्ति हुई है ।

भारत दुर्दशा

इसमें देश के अतीत का गौरव और वर्तमान दुर्दशा का हृदयगम चित्र प्रस्तुत हुआ है । इस नाटक के छठे अंक में भारत भाग्य अपने आत्म निवेदन में कह उठता है--हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोह निद्रा ने घेरा है कि अब उसके उठने की आशा नहीं । सच है जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं जो कल राज्य करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नगे पाँव वन-वन की धूल उड़ाते फिरते हैं । हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे ससार से ऊँचा है, उस भारत की दुर्दशा ! जिस भारत के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूस रूम तक माना जाता था उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल हरिश्चन्द्र रन्तिदेव, शिवि हाय भारत भैया, उठो ! बस, अब धैर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ । मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता । इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ । (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्वान्तरयामी ! हे परमेश्वर ! जन्म जन्म मुझे भारत सा भाई मिले ! जन्म जन्म गंगा यमुना के किनारे मेरा निवास हो ! (भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर) भैया मिल लो अब मैं बिदा होता हूँ तब भी पलककर मुझसे नहीं मिलते । मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या, बस यह लो । (कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका का पतन ।)[2]

इन पंक्तियों से यही व्यक्त होता है कि भारत भाग्य का आत्म सम्मान जाग्रत हो जाता है । परिणामस्वरूप वह दुर्बल अहम् (Weak Ego) का शिकार बनता है और इस संसार से चल बसता है ।

नीलदेवी

प्रस्तुत नाटक मुगलकालीन इतिहास के आधार पर लिखा गया है । इस

---

१ ब्रजरत्नदास विपस्य विषमौषधम द्वितीय भाग द्वितीय संस्करण पृ० १८८

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुर्दशा, सम्पादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रथम संस्करण, पृ० ४७-४८-४९

ललिता—जाग लिया केहि कारन ?
जोगिन—अपने पिय के काज ।
ललिता—मन्त्र कौन ?
जोगिन—पिय नाम इक
ललिता—कहा तन्त्र ?
जोगिन—जग लाज ।
ललिता—आसन कित ?
जोगिन—जितही रमे
ललिता—पंथ कौन ?
जोगिन—अनुराग ।[1]

उपर्युक्त समापणों में तादात्म्यीकरण का भाव प्रस्फुटित हुआ है।

विषस्य विषमौषम

इस ऐतिहासिक एवं राजनीतिक नाटक में तत्कालीन स्थिति का चित्र अंकित हुआ है। इसमें बड़ौदा नरेश मल्हारराव गायकवाड़ को गद्दी से उतारा जाना और उस गद्दी पर सयाजी राव को बिठाने की घटना का साधन वृत्तांत है। यह भाण है जो नाटक का एक अंग है। इसमें केवल एक अंक होता है और एक ही पात्र मंच पर आकर व्याख्यान सा देता है।[2] भंडाचार्य के कथन का कुछ अंश दृष्टव्य है। "भंडाचार्य—(लम्बी साँस लेकर ऊपर देखकर) क्या कहा ? और मान दिन तो एक कुमार गद्दी पर बैठा भी तो दिया गया। तो भया तब क्या ? अहा हा ! भला तब हम क्या इतना भेंपते थे। अहा घन्य है सर्कार ! यह बात कहां नहीं है। दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जब्त हो जाता। यह उन्हीं का कलेजा है। हे ईश्वर जब तक गंगा जमुना में पानी है तब तक इनका राज स्थिर रहे। अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी। हम मल्हारराव से क्या काम हम तो उस गद्दी से काम है कोउ नृप होइ हमें का हानी धन्य धन्य अंग्रेज ! राम और युधिष्ठिर का धर्मराज्य इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया अहाहा (ऊपर देख कर) क्या कहा ? कहो और क्या चाहते हो। भला और क्या चाहेंगे हमारा भंडपना जारी रहा बड़ौदा का राज फिर मुख से बसा तो अब और क्या चाहिये। और मल्हारराव को जो कहो तो उसका कौन सोच है जैसा ब्रत वैसा

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली छठवाँ संस्करण पृ० १०१
२ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु नाटकावली द्वितीय संस्करण भूमिका पृ० १३

उत्थापन, विषस्य विषमौषधम तो भी यह भरत वाक्य सफल हो।'[1] प्रस्तुत आवरण से ज्ञात होता है कि भड़ाचार्य में विस्थापन (डिसप्लेसमेन्ट) भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

भारत दुर्दशा

इसमें देश के अतीत का गौरव और वर्तमान दुर्दशा का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत हुआ है। इस नाटक के छठे अंक में भारत भाग्य अपने आत्म निवेदन में कह उठता है—हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोह निद्रा ने घेरा है कि अब उसके उठने की आशा नहीं। सच है जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं जो कल राज्य करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार से ऊँचा है, उस भारत की दुर्दशा ! जिस भारत के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल हरिश्चन्द्र रन्तिदेव, शिवि हाय भारत भैया, उठो ! बस, अब धर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ। मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता। इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ। (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्वान्तर्यामी ! हे परमेश्वर ! जन्म जन्म मुझे भारत सा भाई मिले ! जन्म जन्म गंगा यमुना के किनारे मेरा निवास हो ! (भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर) भैया मिल लो, अब मैं विदा होता हूँ तब भी छलककर मुझसे नहीं मिलते। मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या बस यह लो। (कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन।)[2]

इन पंक्तियों से यही व्यक्त होता है कि भारत भाग्य का आत्म सम्मान जागृत हो जाता है। परिणामस्वरूप वह दुर्बल अहम् (Weak Ego) का शिकार बनता है और इस संसार से चल बसता है।

नीलदेवी

प्रस्तुत नाटक मुगलकालीन इतिहास के आधार पर लिखा गया है। इस

---

१ प्रेमघन सर्वस्व विषस्य विषमौषधम द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण पृ० १८८

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुर्दशा, सम्पादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, पृ० ४७-४८-४९

नाटक म राजा सूयदेव का पराक्रम एव रानी नीलदेवी की कूटनीति का परि चय मिलता है। पहाड की तराई म सूयदेव और नीलदेवी के बीच हुआ वार्ता लाप ध्यातव्य है।

नीलदेवी—पर सुना है कि य दुष्ट अधम स बहुत लडत हैं।

सूयदेव – ह प्यारी ! व अधम स लड हम तो अधम नही कर सकत। हम आयवश लोग धम छाडकर लडना क्या जान ? यहाँ तो सामने लडना जानत है। जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वग। हमार तो दोनो हाथ लड्डू हैं और यश तो जीतें तो भी हमार साथ है और मरें तो भी।[1]

प्रस्तुत वार्तालाप स ज्ञात होता है कि सूयदेव एडलर प्रणीत अग्रधर्षी प्ररणा शक्ति का परिचायक है।

अधेर नगरी

इस नाटक का पूरा नाम है अधेर नगरी चौपट्ट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा। यह नाटक हास्य और व्यग्यपूण शली म लिखा गया है। इसम किसी एक राजा की मूखता एव विवेकहीनता पर तीखे व्यग्य कसे हैं। निम्नलिखित सवाद सुनने लायक है।

राजा— (गुरु स) बाबा जी ! बोलो। काहे को आप फासी चढत हैं ?

गुरु— राजा ! इस समय एसी साइत है कि जो मरेगा सीधा बकुठ जायगा।

मत्री— तब तो हमी फासी चढेंगे।

गोबरधनदास—हम हम। हमको तो हुकुम है।

कोतवाल— हम लटकग। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा— चुप रहो सब लोग। राजा के आछत और कौन बकुण्ठ जा सकता है ! हमको फासी चढाओ जल्दी, जल्दी।[2]

प्रस्तुत उद्धरण म यह प्रमाणित हो जाता है कि राजा एव अन्य पात्र मानसिक परिपक्वता एव मन्दबुद्धि स अनुप्ररित हैं।

निष्कष क रूप म हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक पौराणिक और सामा जिक विषयो को लेकर भारतेन्दु के नाटक जनमानस को वतमान जीवन अन्धकारमय सामाजिक परिस्थिति स उठने उभरने तथा आत्मोन्नति के साथ

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नीलदेवी सपादक हरीशकर अग्रवाल प्रथम सस्करण पृ० ५१

२ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु नाटकावली प्रथम भाग, स० २००८ पृ० ४७८

समाजोन्नति तथा राष्ट्रोन्नति का नया संदेश तथा नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। भले ही भारतेन्दु कालीन नाटककार मनोविज्ञान से अपरिचित क्यों न हों फिर भी उनके नाटकों में मनोविज्ञान के कतिपय सिद्धान्त परिलक्षित होते हैं।

भारतेन्दु ने नाटक के जरिए जो आन्दोलन खड़ा किया था उसमें स्वयं सतर्कता के साथ कार्य करते रहे साथ ही साथ उन्होंने इस आन्दोलन में अन्य कई लेखकों को सम्मिलित कर लिया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से प्रभावित होकर प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, लाला श्री निवास दास राधाकृष्णदास राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों ने तत्कालीन नाटय साहित्य को ठोस योगदान दिया।

प्रतापनारायण मिश्र

हास्य-प्रहसनों द्वारा गम्भीर से गम्भीर विषय को भी सुगम करने वाले सिद्धहस्त नाटककारों के रूप में प्रतापनारायण मिश्र की ख्याति है। उनकी शैली भारतेन्दु से भिन्न है, पर उसमें एक अलग शक्ति विद्यमान है। इनकी रचनाओं में कलिकौतुकरूपक जुआरी खुआरी तथा हठी हमीर अधिक प्रसिद्ध हैं। कलिकौतुकरूपक में तीखे सामाजिक व्यंग्य करते हैं। इस नाटक का नायक किशोरीदास वेश्यागामी है। उसमें कामुक भावना ठूस ठूस कर भरी हुई है। उदाहरणार्थ-

(सब खाते पीते और बहकते हैं।)

किशोरीदास—क्यों जान साहब ! हमको नहीं ?

लश्करी जान—तुमको ? (उपानह प्रहार) यह है। (सब हसते हैं।)

किशोरीदास—अहाहा ! खोपड़ी तर हो गई ! पुरखे तर गए ! (लिपट के) 'अजब लुत्फ है यार की जूतियों का

शंकरलाल—मैं मुश्ताक हूं प्यार का।

लश्करीजान—'जूतियों का ! तो लो !' (प्रहार सब हसते हैं।)'[1]

प्रस्तुत सवादों से विदित होता है कि यह नाटक सेक्स समस्याओं से अनुप्रेरित है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि किशोरीदास लश्करी जान नामक वेश्या पर विशेष अनुरक्त है। इस नाटक के सम्बन्ध में डा० गणशदत्त गौड़ ने कहा है-'कलि कौतुक को ड्रामा और चम्पा का इड बिलकुल मनोवैज्ञानिक पद्धति पर अवलम्बित है। वे इड की अनियमित एवं अ मर्यादित उत्प्रेरणा से पूर्णतया पुश्चली बन चुकी है। यही इड का निरंकुश शासन नाटक के नायक धनवान किशोरीदास पर है। इड के प्रभुत्व के कारण पूरा नाटक यौन

१ प्रतापनारायण मिश्र कलिकौतुकरूपक श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड १, पृ० १९-२०

विच्युनिया म सन्निहित है । लम्पट रसिक बिहारी से श्यामा का नाजायज सम्बन्ध है और श्यामा के प्रति किनारीदास की बन्या से घनिष्ठता है। जब श्यामा अपने प्रकृत काम की तृप्ति रसिक बिहारी के साथ एकान्त म कर रही है। तभी किनारीदाम आ जाता है। अब अपने प्रेमी को छिपा देती है और अपनी कामुकता का आरोपण अपने पति के वश्यागामी होने म करती है। नाटक म आद्योपान्त काम विकृति और इड की दुष्प्रवृत्ति का चित्रण है।[1]

प० बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु युग के एक बड़े कलाकार बालकृष्ण भट्ट जी भट्ट हैं। उन्होंने कुल छ नाटक लिखे हैं जिनमें बहन्नला वेणुसंहार जैसा काम वैसा परिणाम दमयन्ती स्वयंवर बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके सभी नाटकों म रचना-विधान की शास्त्रीय दृष्टि रखी गई है। भारतीय नाट्यशास्त्र का इनके नाटकों पर प्रचुर मात्रा म प्रभाव रहा है।

बहन्नला म महाराज विराट के सेवक छद्मवेशी अर्जुन एवं सैरन्ध्री (छद्म वेश म पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी) के जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत हुई है। महाराज विराट की राजकुमारी उत्तरा तथा सैरन्ध्री के बीच का वार्तालाप देखने लायक है—

उत्तरा—क्या हमने तुम्हारा कुछ अपराध किया है जो हमसे नहीं बोलती हो।

सैरन्ध्री—(निस्तब्ध रहन)

उत्तरा—तुम रात देख हमारा चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा है। भाई हमने कुछ तुम्हारा वृत्तान्त सुना भी है।

सैरन्ध्री—हाय ! हम ऐसी हतभागिनी हैं कि हमारे कारण तुम्हें भी दुख मिला।

उत्तरा—सैरन्ध्री हमसे कोई बात छिपाना तुम्हें उचित नहीं है। अच्छा चलो मा के पास चलें।[2]

प्रस्तुत उद्धरण म ज्ञात होता है कि उत्तरा एवं सैरन्ध्री म संवेगात्मक आपसी प्रतिक्रिया (Mutual Interaction) उमड़ पड़ी है।

वेणुसंहार म विदेशी राज्य के स्थापित होने पर भारतीय हृदय की परतन्त्रता का सजीव चित्रण हुआ है। राजप्रबन्ध की बागडोर ऋषियों के हाथ

---

१ डा० गणेशदत्त गौड आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन १९६५ पृ० १७२

२ धनञ्जय भट्ट सरल भट्ट नाटकावली, प्रथम संस्करण पृ० २७

देखकर वद्धश्रवा कह उठता है "इसी घराने के राजाओं की सेवा करते हम बूढ़े हो गये, बाल सब पक गये, दाँत गिर गये, कान से सुन भी कम पड़ता है, कमर झुककर कमान हो गई पर अपमान कभी नहीं सहा। बड़े राजा तो इतना मानते थे कि हमारे बिना पूछे कोई काम नहीं करते थे। वनवास में तो हमारा रामराज था, प्रधान प्रधान रानियाँ हमारे हाथ की करछली थी, अनेक दास दासियों पर हमारा अधिकार था, पुछल्ला सी लगी हमारे पीछे डोलती फिरती थी। वही अब हम गेंद सा अलग दूर फेंक दिये गये हैं। प्रभुता के घमंड में नई नई उमंगे सूझा करती हैं। कुढंग देख भीतर ही भीतर कुढ़ते हैं पर कुछ बोल नहीं सकते।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण से विदित होता है कि वद्धश्रवा छोड़कर प्रगति हीनता ग्रंथि एवं फ्रायड प्रगति लिबिडो वृत्ति से अप्लावित है।

'जैसा काम वैसा परिणाम' में व्यभिचार का परिणाम दर्शाया है। मालती के मके की नाईन मालती से कहती है कि प्रमालाप कम कर होते हैं, भाई सो तो हम नाहीं जानित। एक बेर बोला सोती। तब मालती उससे कहती है 'अच्छा सुन हमारे कंधे पर हाथ रखकर कहा—प्रिये ! जब से तुम्हारी रूप माधुरी अपने नयनों से देखा तब से तन, मन, धन सब तुम्हें समर्पण कर दिया। बोल देख बनता है कि नहीं।'[2] यहाँ प्रेम भावना की यथार्थ अवतारणा हुई है।

'दमयन्ती स्वयंवर' में नल दमयन्ती की पौराणिक कथा चित्रित की है जिसमें नारी मनोविज्ञान का सबल परिष्कार हुआ है।

लाला श्री निवासदास

भारतेन्दु के समकालीन होते हुए भी लाला श्री निवासदास पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हैं। उन्होंने कुल चार नाटक लिखे हैं—प्रह्लाद चरित, तप्तासंवरण, रणधीर प्रेम मोहिनी और संयोगिता स्वयंवर।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'रणधीर प्रेम मोहिनी के कथावस्तु सामान्य प्रथानुसार पौराणिक या ऐतिहासिक न होकर कल्पित है। पर यह वस्तुकल्पना मध्य युग के राजकुमार राजकुमारियों के क्षेत्र के भीतर ही हुई है—पाटन का राजकुमार है और सूरत की राजकुमारी। पर इसमें देश कालानुसार सामाजिक परिस्थिति का ध्यान नहीं रखा गया है।'[3] इस नाटक

१ धनञ्जय भट्ट सरल' भट्ट नाटकावली प्रथम संस्करण पृ० ७७
२ वही, पृ० ११८
३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, सत्रहवाँ पुनर्मुद्रण, पृ० ३२२

पर अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव सरलतया परिलक्षित होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित कथोपकथन ध्यान देने लायक हैं–

प्रेममोहिनी—तो रणधीर क्या नहीं आया ?

मालती—तुम क्या उसको पहचानती हो।

प्रेममोहिनी—मैंने उसको देखा नहीं पर उसकी छवि मेरे मन में बस रही है।

मालती—इन राजकुमारों में तुमको कोई सुहावना नहीं लगता ?

प्रेममोहिनी—क्या चन्द्रमा बिना कमलिनी को कोई खिला सकता है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रणधीर सिंह के पराक्रम के श्रवण मात्र से प्रेममोहिनी के मन में क्रियात्मक प्रेरणा उत्पन्न हुई है। इस नाटक के सन्दर्भ में डा० गणेशदत्त गौड़ ने कहा है कि प्रेममोहिनी की अचेतावस्था में उसकी अतृप्त दमित-कामेच्छाओं का अभिव्यक्तिकरण होने के कारण रणधीर के इड को सांत्वना प्राप्त होती है। परिणामतः रणधीर को इस मानसिक प्रक्रम में संतुष्टि का अनुभव होता है तभी वह उसकी अचेतावस्था में अपने मन की चेतना के दर्शन पाता है।[2] कहना न होगा कि प्रेममोहिनी का विरह उसकी अतृप्त काम प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करता है। प्रमाण स्वरूप ये पंक्तियाँ दी जा सकती हैं।

पंचम अंक के शुरू में प्रेममोहिनी मालती समेत राजमहल में बैठी है। इस समय वह मालती से कह उठती है सखी ! ये तो मैं भी समझती हूँ पर अत्यन्त प्रीति के कारण मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहता। जब से मेरे नयनों ने उनका रूप रस पीया मुझको उनकी माधुरी मूर्ति के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता।[3]

राधाकृष्ण दास

राधाकृष्णदास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे और प्राय उन्हीं के साथ रहा करते थे। उन्होंने महारानी और महाराणा प्रतापसिंह दो बड़े प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं।

महारानी पद्मावती नाटक इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़ की रानी पद्मावती के जीवन पर लिखा गया है। इसमें अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण एवं

१ लाला श्री निवासदास रणधीर और प्रेममोहिनी स० १९३० पृ० ६६

२ डा गणेशदत्त गौड़ आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० १७२

३ लाला श्री निवासदास रणधीर और प्रेममोहिनी, स० १९७१, पृ० १२७

उसकी कामान्ध दृष्टि का यथार्थ निरूपण हुआ है । इस नाटक के पंचम अंक के गर्भांक में अलाउद्दीन अपने उपनिवासालय में बैठा है । इस अवसर पर वह अपने आत्मनिवेदन में आनन्द से कहता है ' आहा ! आज बड़ी खुशी का दिन है ! आज वह परी पैकर तशरीफ लावेगी, मुझको जो अपनी खूबसूरती का घमण्ड था वह झूठ न था, क्योंकि पद्मावती ऐसी खूबसूरत औरत मुझ पर फिदा हुई है तो जरूर मैं बड़ा ही खूबसूरत हूँ । कैसे गजब की बात है कि मैं इतना बड़ा बादशाह होकर गमगीन रहूँ ? और ये कम्बख्त खुश । खैर, नाजनीं की शक्ल जब आँखों में घूम जाती है तो मुझको होश नहीं रहता ! उंह ! बड़ी देर लगाई !!

(पद्मावती का प्रवेश) अहा ! जिसके लिए मैं घबरा रहा था वह आ गई ! जैसे आसमान से चाँद उतरा चला आता हो वाह ! कैसी खूबसूरत है। आओ प्यारी मेरे नजदीक आओ बहुत दिनों पर ज्यारत नसीब हुई ।'[1]

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि अलाउद्दीन काम वासना से पीड़ित है। उसमें फ्रायड प्रगति लिबिडो वृत्ति खचाखच भरी हुई है । उसके इड ने तो उसे पागल ही बना दिया है । पर पद्मावती का नैतिकाहं (सुपर इगो) इतना प्रबल है कि वह उसके चंगुल में सपने में भी नहीं फँसती । विवश होकर वह अलाउद्दीन की ओर आई थी, परन्तु उसमें आत्म सम्मान की भावना जाग्रत होते ही वहाँ से विदा होती है । अलाउद्दीन को अपना सिर पीटने के सिवा चारा नहीं रहता ।

'महाराणा प्रतापसिंह' में उदयपुर के महाराणा प्रतापसिंह की वीरता और अकबर की कुटिल राजनीति पर प्रकाश डाला गया है । कुछ आलोचकों का मत है कि भारतेन्दु काल के नाटककारों में राधाकृष्णदास का यह सबसे श्रेष्ठ नाटक है । प्रतापसिंह की कष्ट सहिष्णुता एवं अप्रधर्षी प्रेरणा शक्ति सराहनीय है । छठवें अंक के द्वितीय गर्भांक में वह अपने सहयोगियों से कह उठता है मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है । आहा ! कहाँ तुम लोग राजप्रासाद के रहने वाले, राजसुख से सुखी और कहाँ कंटकमय मरु देश पहाड़ों का घूमना चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छंदता की नींद नहीं । एक स्थान पर जमकर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाने पर यहाँ इसका भी ठिकाना नहीं । आज यहाँ हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहाँ कितने कामों पर जंगल काटकर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा ! आहा ! हमारा हृदय मन्दिर, जो पवित्र आर्य गौरव वासना

---

१ राधाकृष्णदास महारानी पद्मावती, दूसरा संस्करण, पृ० ३७

३ | प्रसाद के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

राज्यश्री

मालव और कान्यकुब्ज के आधार पर प्रसाद जी ने यह नाटक लिखा है। इस ऐतिहासिक नाट्यकृति में नाटककार ने कामवासना एवं उसकी विकृति का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

प्रथम अंक

नाटक का प्रारम्भ कान्यकुब्ज के नगर ... उपवन में शान्तिदेव और सुरमा के प्रणयालाप से होता है। सुरमा नामक मालिन में स्वाभाविक प्रवृत्ति कामज व लिबिडो प्रवृत्ति विद्यमान है। इस भावाधिक्य के कारण वह शान्तिदेव से कहती है — 'कि बोलो क्या! मैं आजीवन किसी राजा की विलास-मालिका बनाती रहूँ—तुम्हारा मेरा अस्पष्ट रहे तो भी मैं मान लेने में असमर्थ हूँ। मेरी प्राणों की भूख और आँखों की प्यास तुम न मिटाओगे?'[1] शान्तिदेव नामक भिक्षु उसे बता देता है कि अभिलाषा के लिए इतना उतावला नहीं होना चाहिए। फिर भी सुरमा उसे कहती है कि तुम निष्ठुर हो मेरी आराधना का मूल्य नहीं जानते—भिक्षु![2] शान्तिदेव का द्वन्द्व उसे दोनों ओर खींच रहा है। वह एक ओर सुरमा से प्यार करना चाहता है और दूसरी ओर राज्यश्री की भी कामना करता है। दमित कुण्ठाएँ उसे चुपचाप बैठने नहीं देतीं। इतने में ही कान्यकुब्ज के राजमन्दिर के एक प्रकोष्ठ में ग्रहवर्मा चिन्तित भावों से प्रवेश करता है। वह अपनी रानी राज्यश्री से कहता है — 'तब भी यही कि यह सुन्दर-श्यामा नील आकाश कितने कुतूहलों का परिवर्तनों का क्रीड़ा क्षेत्र है। यह आवरण है भी कितना काला—कितना ...' इससे उसका कमजोर अहम् (इगो) विदित

---

१ जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री, आठवाँ संस्करण, पृ० ११

२ वही, पृ० १५

होता है। थोडी देर मे मालव नरेश देवगुप्त छद्मवेश म सुरमा के उपवन मे प्रवेश करता है। उसके आत्मकथन से विदित होता है कि वह राज्यश्री के आकर्षक, सौदयमय रूप पर मुग्ध है। साथ ही साथ सुरमा भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है एक दृश्य मे राज्यश्री देवमदिर मे दान दने के लिए भिक्षुओ के साथ उपस्थित है। शातिदेव म शील सम्पदा का अभाव पाकर वह उसकी भत्सना करती है। शातिदेव दान न लेते हुए चला जाता है। इतन म ही म त्री युद्ध का सदेश लेकर आता है। मदिर म अट्टहास सुनाई दता है। राज्यश्री मूच्छित हो जाती है। इससे नात होता है कि राज्यश्री के अतमन म द्वद्व चल रहा है। सुरमा और देवगुप्त उपवन म पुन मिलते हैं। वह सुरमा को अपना सही परिचय करा देता है। थोडी दर म दूत के द्वारा स्थाणीश्वर म प्रभाकरवधन के निधन की एव राज्यवधन हूण-युद्ध के लिए पचनद जान की वार्ता समझनी है। देवगुप्त सुरमा को अपने षडयत्र म सम्मिलित कर स्थाणीश्वर तथा कायकुब्ज पर विजय प्राप्त करना चाहता है। वह छद्मवेश के दुग मे प्रवेश करता है। राज्यश्री को प्राप्त करन के लिए कई तरह के प्रयत्न करता है। छल से कायकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा की हत्या कर राज्यश्री को पकड लेता है। इन घटनाओ से विदित होता है कि देवगुप्त मे इड का प्राबल्य है जिसके कारण षडयन्त्र के द्वारा क्यो न हो कायकुब्ज पर अधिकार प्राप्त कर लता है।

द्वितीय अक

शातिभिक्षु काम वासना तप्ति के लिए इतना आकुल है कि उसके सिवा उसके मन म दूसरा विचार मँडराता नही। वह अपने आत्मकथन मे कहता है मैं ससार स अलग किया गया था—किसलिए ? पिता ने मुझे भिक्षु संघ म समपण किया था—क्या इसलिए कि मैं धार्मिक जोवन व्यतीत करू ? मेरे लिए उस हृदय म दया या सहानुभूति न थी ! जब हृदय-कानन की आशा-लता बलवती हुइ तो मैं देखता हूँ कि कमक्षेत्र मे मेरे लिए कुछ अवशिष्ट नही। सुरमा-जीवन की पहली चिनगारी-वह भी किधर गई ! धधक उठी एक ज्वाला-राज्यश्री ! -(सोचकर)-मूख ! मैं निश्चय नहीं कर पाता कि सुरमा या राज्यश्री मेरे जलन हुए ग्रहपिण्ड के भ्रमण का कौन केन्द्र है !"[१] इस तरह उसकी दमित कुण्ठाए उस अस्वस्थ कर रही हैं। इतने मे ही उपवन म डाकुओ का प्रवश होता है। एक डाकू के द्वारा विदित होता है कि राज्य वधन की सेना राज्यश्री और ग्रहवर्मा का प्रतिशोध लेन आ रही है। शाति

१ राज्यश्री, पृ० ३०

भिक्षु विकटघोष नामक दस्यु के रूप में उनमें मिलता है। वह भण्डि को का यकुञ्ज-दुर्ग के गुप्तमार्ग की जानकारी देता है। उधर गौडेश्वर नरेन्द्रगुप्त अपने राज्य के विस्तार की इच्छा से राज्यवर्धन से मैत्री स्थापित करता है। और अपने सैन्य के साथ कन्नौज-युद्ध में सम्मिलित होता है। एक दृश्य में दुर्ग के भीतर एक प्रकोष्ठ में राज्यश्री विमला के साथ वातचीत कर रही है। वह अपनी सहेली के सम्मुख अपना दुःख प्रस्तुत करती हुई कहती है "वेदना रोम रोम में खटा है विमला! चेतना ने तो भूली हुई यातनाओं, अत्याचार और इस छाने से जीवन पर मसार ने किए हुए कष्टों को फिर से सजीव कर दिया है। सखी! औषधि न देकर यदि तू विष देती तो कितना उपकार करती।"[1] राज्यश्री के पतिदेव की युद्ध में मृत्यु हुई है और अब उसका भविष्य भी अनिश्चित है। इसीलिए वह जीवन से पलायन करना चाहती है। देवगुप्त उसकी असहायता का लाभ उठाना चाहता है। राज्यश्री का नैतिकाह (सुपर इगो) प्रबद्ध होने से निर्लज्ज प्रवंचक आदि शब्दों में देवगुप्त की भर्त्सना करती हुई कहती है "बस मैं सचेत हूँ देवगुप्त! मुझे अपने प्राणों पर अधिकार है। मैं तुम्हारा वध न कर सकी तो क्या अपना प्राण भी नहीं दे सकती?"[2] तदुपरान्त देवगुप्त उसे बन्दी बनाता है। रात्रि के अवसर पर प्रकोष्ठ में विकटघोष (शान्तिदेव) एवं मधुकर की भेंट होता है। विकटघोष उसे छुरे का भय दिखाकर सुरमा तथा राज्यश्री के निवासस्थान की जानकारी प्राप्त कर लेता है। दूसरी ओर उपवन में सुरमा और देवगुप्त का प्रेमालाप चल रहा है। देवगुप्त सुरमा से कहता है "सुरमा! मेरे जीवन में ऐसा उन्मादकारी अवसर कभी न आया था। तुम यौवन, स्वास्थ्य और सौंदर्य की छलकती हुई प्याली-पागल न होना ही आश्चर्य है मेरे इस साहस की विजय लक्ष्मी!"[3] देवगुप्त के इस सम्भाषण में वात्स्यायन काम सूत्र के अनुसार परकीया रति का परिष्कार हुआ है। देवगुप्त एवं सुरमा के सम्भाषण में कामातुर स्त्री पुरुषों में पाया जाने वाला उन्माद है। इतने में ही विकटघोष यम के रूप में वहाँ पधारकर उनके आनन्द पर नमक छिड़कता है। देवगुप्त सुरमा के बाहुपाश से अलग होता है और भयभीत होकर वहाँ से भाग जाता है। सुरमा विकटघोष को पहचानकर लज्जित हो जाती है। वह उससे क्षमा माँगती है। उधर राज्यवर्धन और नरेन्द्रगुप्त की सम्मिलित शक्ति क्रमशः मृत

१ राज्यश्री पृ० ३६
२ वही, पृ० ३८
३ वही, पृ० ४२

रूप धारण करती है । रण मे कोलाहल मच जाता है । विकटघोष राज्यश्री को दस्युओ के साथ गुप्तमार्ग मे सुरक्षित स्थान पर भेज देता है और स्वय सुरमा को लेकर भाग जाता है । इधर राज्यवर्धन की सेना भी कन्नौज दुर्ग मे पहुच जाती है । राज्यवर्धन और देवगुप्त के युद्ध म देवगुप्त की मृत्यु हो जाती है । देवगुप्त को अपने छल का प्रायश्चित जल्दी ही मिल जाता है ।

तृतीय अक

विकटघोष और सुरमा रास्ते म अपने भावी कार्यक्रम के बारे म विचार कर रहे हैं । वे गौड के शिविर मे आ जाते हैं । इतने म ही नरेन्द्रगुप्त एव सहचर के साथ प्रवेश करता है । उन दोनों म राज्यवर्धन की मृत्यु के लिए षडयन्त्र रचाने की बातचीत होती है । विकटघोष एव सुरमा छिपकर सभा सुन लते हैं । यथा समय दोनो प्रकट होते है । सुरमा भयभीत हो जाती है । वह विकटघोष से कहती है 'जा करो, मैं प्रस्तुत हूँ । (अलग) हाय दूसरा पथ नहा, यदि मैं कहती हू कि नही तो, उहूँ फिर, यही सही, इस ओर से भी प्राण नही बचता ।"[1] सुरमा के इस सभाषण म जीभ की फिसलन (Slip of Tongue) दिखाई देती है जो उसके अन्तर्मन के सघर्ष की परिचायक है । दूसरी ओर धन की इच्छा स राज्यश्री का दो दस्यु लिए हुए जाते हैं पर उसकी निर्धनता देखकर व उस किसी के हाथ बच देने का विचार करते हैं । आत्मसम्मान एव अहम् (इगो) की रक्षा न होते देखकर राज्यश्री अपने जीवन को समाप्त कर देना चाहती है इतने म दिवाकर मित्र वहाँ पहुचकर उसे दस्युओ के चगुल स मुक्त करता है । रणक्षेत्र मे हर्षवर्धन और पुलकेशिन म सन्धि हो जाती है । सरयू तट पर अशोक कानन मे विकटघोष डाकुओ के साथ बैठा है । दस्यु सुएनच्याग को लेकर प्रवेश करते हैं । उसके पास धन का अभाव होने से उसे बलि के लिए प्रस्तुत किया जाता है इतने म भयकर आँधि मे चीत्कार सुनाई देती है । सुएनच्याग की मुक्ति होती है । दिवाकर ने राज्यश्री की रक्षा की है, पर अभी वह विमनस्क अवस्था म है । दिवाकर के तपोवन म प्रज्वलित चिता म वह कूदना चाहती है, इतने म हर्षवर्धन वहाँ पधारता है और राज्यश्री को जीवन दान मिलता है । हर्षवर्धन के विचारो स उसमे विस्थापन की प्रक्रिया होती है । उसके इड एव अहम (इगो) म समझौता है । वह अपने भाई हर्षवर्धन स कहता है चलो भाई ! जहाँ तक बन पडे, लोक सेवा करके अन्त म हम दोनो साथ ही काषाय लेंगे ।"[2]

---

१ राज्यश्री पृ० ४३

२ वही, पृ० ६६

चतुर्थ अंक

विकटघोष सुरमा अपने अन्य साथी स्त्रियों के साथ प्रयाग आ जाते हैं। राज्यश्री अपना सब सम्पत्ति दान कर देती है। सम्राट हर्षवर्धन भी इस क्रिया में सम्मिलित होता है। इसकी स्वच्छन्दतावादिता मनोविज्ञान की दृष्टि से ध्यान देने लायक है। फ्रायड के मतानुसार ईश्वरी मातृ-पितृ कल्पना है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास का मनोवैज्ञानिक अर्थ मानव की मानसिक दुर्बलता है। बुद्ध प्रतिमा के सम्मुख राज्यश्री हर्षवर्धन और प्रमुख सामन्तगण नतमस्तक होते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति में फ्रायड के अनुसार उनकी मानसिक दुर्बलता है पर वात्स्यायन के मतानुसार लोकयात्रा की दृष्टि से धर्म का महत्त्व अनन्य साधारण है। धर्म या नैतिकता को वात्स्यायन ने केवल निषेधात्मक ही नहीं माना बल्कि रचनात्मक भी माना है।[1] अतः हम कह सकते हैं कि जयशंकर प्रसाद जी ने वात्स्यायन प्रणीत धर्म कल्पना को स्वीकार कर नाटकों के माध्यम से इसका प्रसार भी किया है। विकटघोष (शान्तिभिक्षु) और सुरमा दोनों महाश्रमण के पैर पर गिरते हैं। यहाँ उनकी कामुक प्रवृत्ति का उदात्तीकरण हुआ है। इस तरह के उदात्तीकरण के बाद भक्तिभावना निर्माण होती है।[2] इसकी यहाँ प्रतीति आती है। नरेन्द्रगुप्त, भण्डि सुरमा विकटघोष आदि सभी को राज्यश्री एवं हर्षवर्धन के द्वारा क्षमा की जाती है। लोक-सेवा के लिए हर्ष नत होकर मुकुट और राजदण्ड ग्रहण करता है। करुणा कादम्बिनी बरसे ! शान्ति के अवसर पर पुष्पवर्षा होती है। सभी ओर प्रकट होती है—शान्ति !

राज्यश्री इस नाटक की नायिका है जिसके चरित्र में पतिपरायणता साहस उदारता एवं आत्मगौरव आदि गुण विद्यमान हैं। शान्तिभिक्षु (विकटघोष) एवं देवगुप्त कामज यौन भाव से उसके पीछे लगे रहते हैं पर आत्मनिग्रह के कारण वह उनके चंगुल में फँसती नहीं। उसका नैतिकतार (सुपर इगो) सशक्त है। अपने पति की हत्या के बाद उसका दुर्दम्य अहम् (इगो) उसे आत्महत्या की ओर प्रवृत्त करता है किन्तु दिवाकर मित्र तथा हर्षवर्धन की सहायता से उसके जीवन को नया मोड़ मिलता है। उसकी आत्मनिष्ठा आन्तरिक अवस्था से प्रभावित है। अतः उसका व्यक्तित्व अन्तर्मुखी संवेदन

१ डा० रू० शा० चौधरी कामसूत्र और फ्रायड के सन्दर्भ में हिन्दी काव्य का अनुशीलन प्रथम संस्करण पृ० १२३

२ डा० प्र० न० जोशी मराठी साहित्यातील मधुराभक्ति प्रथमावृत्ति, पृ० २०४

प्रकार का है। सुरमा स्वभाव म चचल एव विवेकहीन है। देवगुप्त एव विकटघोष से वह अपनी जनप्न दमित कामवासना की पूर्ति कर लेना चाहती है। उसम इड का प्राबल्य दिखाई देता है। शातिभिक्षु (विकटघोष) की दमित कुण्ठाएँ उसे पतनो मुख बनाती हैं। मालव नरेश देवगुप्त विलासिता एव कामुकता का प्रतीक है। उसके कुचक्र का सजल ही उस प्रायश्चित मिलता है। हर्षवधन के चरित्र म राज्यगुप्त के प्रति वैराग्य भाव दिखाई देता है।

राज्यश्री के कथोपकथनो म का यत्व और जीवन का सूक्ष्म दशन प्रति बिम्बित हुआ है। छोटे छोटे एव अर्थग्राही सवाद इस नाटक का वशिष्टय है। उदाहरण के लिए–

राज्यश्री– भिक्षु तुमने प्रवज्या ग्रहण कर ली है किन्तु तुम्हारा हृदय अभी

शातिदेव–कल्याणी ! मैं, मेरा अपराध––

राज्यश्री– हाँ तुम ! भिक्षु ! तुम्हे शील–सम्पदा नही मिली, जो सब प्रथम मिलनी चाहिये।

शातिदेव–मैं सब ओर से दरिद्र हू देवि ! –(स्वगत)–विश्व म इतनी विभति ? और मैं–सिर ऊँचा करके अत्य त ऊँचाई की ओर देखता हुआ केवल उलटा होकर गिर जाता हूँ–चढने की कौन कहे !

राज्यश्री– क्या सोचते हो, भिक्षु !

शातिदेव– केवल अपनी क्षुद्रता

राज्यश्री– तुम सयत करो अपने मन को भिक्षु ! श्लाघा और आकाक्षा का पथ तुम बहुत पहले छोड चुके हो। यदि तुम्हारी कोई अत्यन्त आवश्यकता हो तो मैं पूरी कर सकती हू निश्चित उपासना की व्यवस्था करा दे सकती हूँ।[1]

इन सवादो से स्पष्ट होता है कि राज्यश्री म नतिकता का प्राबल्य एव शातिदव म कामज य मनोग्रस्तता का आविष्कार हुआ है।

राज्यश्री की भाषा शली अत्य त ठोस स्पष्ट एव परिष्कृत है। इस नाटक म मुहावरो का यथोचित प्रयोग हुआ है जिनकी उपस्थिति से भाषा का सौदय बढा है। जसे–हाथ पाव फलाना लोहा मानना, नौ–दो ग्यारह होना पिण्ड छूटना, आँख उठाकर देखना, उगलियो पर नाचना, कृतकृत्य हो जाना, पत्थर का कलेजा, होम करते हाथ जलना।[2]

---

१ राज्यश्री, पृ० २१

२ वही, पृ० क्रमश १७, ३३, ४७ ४८, ४९, ५२ ५६, ६१, ७१

इस नाटक में संस्कृत प्रचुर शब्दों की भरमार है। इनके प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य बढ़ा है। उदाहरण के तौर पर—सुरभि समीर स्नात, परिणाम दर्शी अवगुण्ठन जीवन धन दान-पत्र, शान्तसम्पदा आग्याकारी पद रज, उत्तमरना प्रतिदिन प्रमय भूमि[1] इत्यादि।

निम्नलिखित सूक्तियाँ ध्यान देने लायक है।

१–प्रियतम की उत्कण्ठा में प्राय ऐसा ही भ्रम हुआ करता है।

२–महत्त्वशाली व्यक्तियों के सौभाग्य अभिनय में धूर्तता का बहुत हाथ होता है।[2]

समग्रालोचन द्वारा यह कहा जा सकता है कि 'राज्यश्री' में अनन्त-दमित कामवासना एवं वात्स्यायनकृत धम उत्पत्ति का सुस्पष्ट चित्र अंकित हुआ है।

विशाख

जयशंकर प्रसाद जी का विशाख नामक ऐतिहासिक नाटक काश्मीर के राजा नरदेव से सम्बन्धित है। इस नाटक की कथावस्तु कल्हणकृत राजतरंगिणी से ली गई है।

प्रथम अंक

नाटक का प्रारम्भ विशाख के स्वगत कथन से होता है। वह अपने विगत जीवन पर विचार करते हुए कहता है "शैशव! जब से तेरा साथ छूटा तब से असन्तोष अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय का घोंसला बना डाला। इन विहगमों का कलरव मन को शान्त होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता। यौवन सुख के लिए आता है—यह एक भारी भ्रम है। आशामय भावी सुखों के लिए इस कठोर कर्मों का सकल्प ही कहना होगा। उन्नति के लिए मैं भी पहली दौड़ लगाने चला हूँ। देखूँ क्या अदृष्ट में है।"[3] इससे विदित होता है कि विशाख के अन्तर्मन में द्वन्द्व चल रहा है। इतने में ही चन्द्रलेखा एवं उसकी बहिन इरावती सम को फलियाँ तोड़ती हुई दिखाई देती हैं। उनका सुन्दर रूप एवं उनके मलिन वस्त्र देखकर विशाख का ध्यान उनकी ओर खिंचता है। वे दोनों सुश्रुवा नाग की कन्याएँ हैं यह जानकर वह कह उठता है—

---

१ राज्यश्री पृ० क्रमश १२ १६ १७ १८ १९ २० २१ ४३, ४७ ६४, ७२ ७३

२ वही, पृ० क्रमश २२ ४१

३ जयशंकर प्रसाद विशाख, सप्तम संस्करण पृ० १२

"घन घन बीच कुछ अवकाश में यह चन्द्रलेखा भी ।
मलिन पट में मनोहर है निकष पर हेमरेखा-सी ॥"[1]

नागा की सारी भू सम्पत्ति हरण करके नरदेव द्वारा उस बौद्ध मठ में दान कर देने की वार्ता सुनकर विशाख को दुःख होता है। वह उनकी सेवा करने को तत्पर हो जाता है। इतने में ही बौद्ध महन्त एवं भिक्षु उधर आते हुये दिखाई देते हैं। विशाख उनसे पूछता है कि आपको यह भूमि किसने दी है? आपका इस पर कैसे अधिकार है? इन प्रश्नों से भिक्षु त्रायायमान हो जाते हैं। विशाख भिक्षु को भेड़िया का भय दिखाते हो वह घबड़ाकर गिर पड़ता है। इससे भिक्षु कितने डरपोक एवं कमजोर दिल के हैं, इसकी जानकारी मिलती है। थोड़ी देर में सुश्रवा गाता हुआ मन के पास की पगडण्डी से निकलता है। भिक्षु से उसकी भेंट होती है। दोनों में भूमि को लेकर वाद विवाद होता है। इधर विशाख राजसहचर महापिंगल की मदद से बौद्ध भिक्षुओं के अत्याचारों को राजा नरदेव से निवेदन करता है। राजा न्याय करने के लिए उद्यत होता। भिक्षु एवं चन्द्रलेखा को बुलाया जाता है। चन्द्रलेखा को देखते ही नरदेव का दृष्ट उसकी ओर चक्कर काटने लगता है। वह अपने आत्मकथन में कहता है, 'आह! ऐसा रंग तो मेरे रंगमहल में भी नहीं रूप की सत्ता ही ऐसी है। कौन इससे बच सकता है"[2] नरदेव तुरन्त सेनापति को आज्ञा देता है कि इस मिथ्या नास्तिक भिक्षु को कोठरी में बन्द करो और इस विहार में आग लगवा दो। राजा के इस आदेश में राजसत्ता की धुन एवं चन्द्रलेखा के प्रति आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। पर प्रेमानन्द के उपदेश से वह अपने को थोड़ा सा संभाल लेता है। विहार को जलवाने की आज्ञा स्थगित करता है।

द्वितीय अंक

पहाड़ी झरने के समीप विशाख और चन्द्रलेखा का प्रेमालाप शुरू होता है। विशाख कवित्त प्रधान पात्र है जिसमें कामप्रवृत्ति भी दिखाई देती है। चन्द्रलेखा में भी उसके प्रति आत्मसमर्पण की भावना है। विशाख चन्द्रलेखा से कहता है, प्रिय! आज मैं भी क्या उस आशामय भविष्य का आनन्द मनाऊँ, हृदय में रसीली वंशी बजाऊँ? क्या मैं "[3] एक दृश्य में महापिंगल की पत्नी तरला उसके बुढ़ापे का स्मरण दिलाकर सद् मार्ग पर चलने का उप

१ जयशंकर प्रसाद विशाख सप्तम संस्करण पृ० १४
२ विशाख पृ० ४०
३ वही, पृ० ४२

अनुरोध करती है। इधर राजा नरदेव चन्द्रलेखा को प्राप्त करने के लिये व्याकुल है। वह अपने आत्मनिवेदन में कहता है 'यह हृदय ही दूसरा हो गया है या समय ही। मन अकस्मात एक मनोहर मूर्ति का एकान्त भक्त होता जा रहा है। चित्त में अनेक उमंगें विचित्र मादकता फैला रही हैं। आप ही आप चुटीला मन और भी घायल होने के लिये लालायित रहा है। राजा नियम बनाता है प्रजा उसका व्यवहार में लाती है। उन नियमों में मकड़ी और जाले की तरह मुक्ति नहीं किन्तु कभी भी उलटा लटक जाना है। उस रमणी को बरजोरी अपने वश में करने के लिये जी मचल रहा है किन्तु नीति नियम। आह! हमारा शासन मुझ पर बोझ हो रहा है मन की यह उच्छृंखलता क्या है।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि राजा नरदेव के अन्तर्मन में संघर्ष चल रहा है। यहाँ अहम् (इगो) और नतिकाह (सुपर इगो) का द्वन्द्व स्पष्ट हो रहा है। इसके बाद नरदेव महापिंगल के साथ रमण्याटवी की ओर आ गया गलत के बहाने चन्द्रलेखा से मिलने के लिए जाता है। चन्द्रलेखा कर्तव्य भावना से नरदेव का आतिथ्य करती है। परन्तु उसकी कलुषित भावना को समझ लेने के पश्चात वह स्पष्ट रूप से कहती है 'राजन्, मुझ से अनाहत न हूजिये बस यहाँ से चले जाइए।'[2] तात्पर्य विशाख के प्रेम के सम्मुख उस कोई राजा भी व्यर्थ है। उसका नतिकाह (सुपर इगो) प्रबल है। इसी कारण वह अपने ध्येय से टस से मस नहीं होती। नरदेव वहाँ से चला जाता है। इसके बाद वह अन्य साधना से उसे वश करने की कोशिश करता रहता है। महापिंगल के द्वारा षड्यन्त्र की रचना करवाता है। महापिंगल भिक्षु को प्रलोभन देकर चैत्य मन्दिर की ओर उसे ले जाता है, तब तुम वहाँ के देवता बनकर उसे आज्ञा दो कि वह राजा से प्रेम करे। अँधेरी रात में चन्द्रलेखा चैत्य के सम्मुख रहकर प्रार्थना करती है 'मेरा वसन्तमय जीवन है। प्रभो, इसमें पतझड़ न आने पावे। मेरा कोमल हृदय छोटे सुख में सन्तुष्ट है फिर वह सुखवाले उसमें क्यों वज्रपात डाला है। क्या उस हृदय में भी ईर्षा है जो संसार भर को अपनाना चाहते हैं? दूसरा क्या उपाय है? हमारे सम्पूर्ण तुम्हारा ही नाथ।'[3] इतने में ही चैत्य की आड़ से चन्द्रलेखा सुनती है 'तू नरदेव की रानी हो जा।'[4] ऐसे अवसर पर भी चन्द्रलेखा अपने प्रण से विचलित नहीं होती। वह आत्मविश्वास के साथ कहती है 'तब तू अवश्य इस चैत्य

१ विशाख, पृ० ५० ५१

२ वही पृ० ६६

३ वही, पृ० ६६

४ वही पृ० ६६

का कोई दुष्ट अपदेवता है । मैं जाती हूँ आज से इस राम्र के टीले पर कभी नही आऊँगा ।'[1] इतन म वहाँ प्रेमान द आ जाता है । उसके पीछे से विशाख भी पधारता है । विशाख भिभु पर तलवार उठाना चाहता है इतने म प्रेमा न द उस रोकता है ।

तृतीय अक

वितस्ता के तट पर नरदेव महापिगल के सम्मुख अपने मनोभावो को प्रदर्शित करते हुए कहता है, "पिंगल ! तुम जानते हो कि प्रतिरोध से बडी शक्तियाँ रुकती नही, प्रत्युत उनका वेग और भी भयानक हो जाता है । वही अवस्था मेरे प्रेम की है । इसने कोमलता के स्थान मे कठोरता का आश्रय लिया है । माधय छोडकर भयानक रूप धारण किया ।"[2] यहाँ उसकी दमित कुण्ठाए दृष्टिगोचर होती हैं । इतने मे ही नरदेव की उपेक्षिता महारानी उसके पास आती है । वह अपने पतिदेव को अन्याय एव वासना के पक्ष से विमुख करन की कोशिश करती है । परन्तु राजा उसकी ओर आनाकानी करता है । महारानी के कमजोर अहम पर भरोसा न रहने के कारण वह नदी म कूद पडता है । इधर विशाख चन्द्रलेखा को धीरज बँधा रहा है । महापिगल चन्द्रलेखा को राजा के महल मे जाने का अनुरोध करता है । इससे विशाख का खून गरम हो जाता है और प्रतिशोध की भावना स अपनी तलवार स उसकी हत्या कर देता है । विशाख एव चन्द्रलेखा बन्दी हो जाते है । इस घटना स चन्द्रलखा का पिता सुश्रवा तथा सभी नाग उत्तेजित हो उठत है और उनको मुक्त करने की प्रतिज्ञा करते हैं । प्रेमान द के उपदेश से नागो की उत्तजना कम होती है । फिर भी आत्मबल के भरोसे सत्य का मुकाबला करन के लिय-न्याय माँगन के लिय व चल पडत हैं । इधर नरदेव विशाख को उसका सवस्व अपहरण करके उसे राज्य से बाहर निकालने की आज्ञा देता है । इससे चन्द्रलेखा भी क्रुद्ध हो जाती है । नरदेव दोनो को शूली पर चढा देन की आज्ञा करता है । क्रुद्ध नाग अत्याचार का प्रतिकार करने के लिय उद्यत होते हैं । क्रोधित नाग राजमहल को आग लगाते हैं । उनम नग्नसता बढती है । भीड (Crowd) का महाप्रलाप दिखाई देता है । सामूहिक शक्ति की अनुभूति से नागो मे अनौपचारिक भीड (Unorganized Crowd) की निर्मिति होती है । प्रेमान द प्रज्वलित आग स राजा की रक्षा करता है । चन्द्रलेखा राजमन्दिर की आग स राजकुमार को सुरक्षित रखती है । नरदव

१ विशाख पृ० ६७

२ वही, पृ० ३७

की कामान्ध दृष्टि निर्वासित होती है। उसके काम का उन्नयन होता है। वह अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है। विशाख एवं चन्द्रलेखा का प्रेम सफल होता है। नरदेव शान्ति के लिए महात्मा से प्रार्थना करता है।

इस नाटक का प्रधान पात्र विशाख है। पर दे नवानरता एवं सद्भाव उसके व्यक्तित्व का स्थायीभाव है। वे चन्द्रलेखा के प्रेम के लिए उसे बड़ी कठिनाइयों के साथ जूझना पड़ता है। वह यौवन के प्रभाव से नाग उत्तेजित होकर अन्याय का प्रतिशोध माँगता है। राजा नरदेव नाटक के प्रथम अंक में कर्तव्य परायण एवं पवित्र राजा के रूप में दिखाई पड़ता है किन्तु आगे चलकर चन्द्रलेखा के सौन्दर्य के कारण उसका स्वभाव दृढ़ उसे विचलित करता है। वह कामान्ध बन जाता है और अन्त में उसके काम का उन्नयन भी हो जाता है। प्रेमानन्द सत् प्रवृत्ति का पात्र है जिसके सान्निध्य में अनेकों की दुर्भावना निराकृत हुई है। महापिंगल एक स्वार्थी एवं कामुक प्रवृत्ति का चाटुकार है। उस अर्थ मनुष्य का प्रार्थी पक्ष हृदय के रूप में मिलता है। चन्द्रलेखा सुखभागी आत्मिक ज्ञान एवं नतिवाह (सुन्दरता) से परिपोषित प्रतिबिम्ब नागकन्या है। राजा नरदेव की स्त्री महारानी एवं महापिंगल की स्त्री तरला के द्वारा नाटककार ने भारतीय नारी की अवतारणा की है।

विशाख के कथोपकथन में रोचकता, स्वाभाविकता एवं पात्रानुकूलता का यथार्थ प्रयोग हुआ है। संवाद योजना में स्वगत कथनों का अभाव है। मनोविज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित कथोपकथन महत्त्वपूर्ण है।

विशाख— अच्छा तो प्रिये! अब मैं जाता हूँ शीघ्र ही लौटकर यह मुखचन्द्र देखूँगा।

चन्द्रलेखा—ना ना—मैं न जाने दूँगी, तुम्हें कहाँ जाने की क्या आवश्यकता है? मैं कैसे रहूँगी?

विशाख— मन कभी तो किसी बात का नहीं है फिर भी उदासीन मनुष्य शिथिल हो जाता है। उसका चित्त आलसी हो जाता है इसलिए कुछ थोड़ा भी इधर उधर कर आऊँगा तो मन भी बहल जायगा और कुछ काम भी हो जायगा।

चन्द्रलेखा—क्या इतने ही दिनों में तुम्हारा मन ऊब गया? क्या मुझ से घृणा हो गई! लाभ यह तो केवल बहाना है हो![1]

उपर्युक्त संवादों में विशाख एवं चन्द्रलेखा के चेतन अचेतन मन के भाव उमड़ पड़े हैं जिनमें प्रेम को घृणा और घृणा को प्रेम में परिवर्तित कर डालने की महान शक्ति है।

---

१ विशाख पृ० ५४

इस नाटक की भाषा सरस एव मधुर है। प्रसग और स्थलो के अनुसार वचित्र्य का भी निर्माण हुआ है। पर नाटककार ने सस्कृत शब्दो का उचित स्थानो पर बडा ही सुन्दर प्रयोग किया है। यथा- मकरन्द, सुमनावली, कद थना, आत्मश्लाघा, निमत, 'कण्टकेनैव कण्टक', दयासिन्धु हृदय-कमल, प्रति सध्या, विभिषिकामयी, जीवन वत्ति अभियुक्त' इत्यादि।

विशाख म प्रयुक्त मुहावरा कहावता से पात्रा के मनोभावो पर प्रकाश पडता है। उदाहरण के तौर पर 'कान सीधे कर देना बक बक करना, सिर मुडाते ही ओले पडना यथा राजा तथा प्रजा, दूध के दात जमना पानी पानी होना सिर पीटना, आख की पुतली, पानी फिर जाना, अग्नि मे घी डालना पौ बारह हो जाना।'[2]

मार्मिक एव मनोवज्ञानिक सूक्तियाँ प्रसाद की भाषा के प्राण हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

(१) दुखी की अवश्य सहायता करनी चाहिये।

(२) सेवा, परोपकार और दुखी की सहायता मनुष्य के प्रधान कत य हैं।

(३) प्रम की सत्ता को ससार मे जगाना मेरा कतव्य है।

(४) वराग्य अनुकरण करने की वस्तु नही।

(५) जो कत य है उसे निभय होकर करो।

(६) सत्ता शक्तिमाना को निबलो की रक्षा के लिये मिली है औरा को डराने के लिए नही।

(७) राजा नियम बनाता है प्रजा उसको व्यवहार मे लाती है।

(८) उद्योग हीन मनुष्य शिथिल हो जाता है।

(९) अन्याय का राज्य बालू की भीत है।

(१०) भगवान की करुणा ही सबका न्याय देती है।

(११) प्रकृति के दास मनुष्य का- आत्मसयम, आत्मशासन की पहली आवश्यकता है।

(१२) हृदय- राज्य पर जो अधिकार नही कर सका, जो उसम पूण शाति न ला सका, उसका शासन करना एक ढोग है।'

---

१ विशाख, पृ० क्रमश ११, १८ १९ १९, २६, ३०, ३१, ३७, ६५ ७४, ७९ ८३।

२ वही पृ० क्रमश १९ २४, ३२, ४१ ४७, ४८, ५०, ५५, ६०, ७७, ७८

३ वही, पृ० क्रमश १५, ३४, ३५, ३६, ३७, ४१, ५१, ५४, ७३, ८६, ९०, ९१।

(१३) प्रतिहिंसा पापवर्ति है।[1]

निष्कर्ष यह है कि विशाख में कामप्रवृत्ति के प्रमित पात्रों का तब भाव के मनोविज्ञान का यथार्थ आविष्कार हुआ है।

अजातशत्रु

बौद्ध कालीन इतिहास के आधार पर प्रसादजी ने अजातशत्रु की रचना की है। इसमें उन्होंने मानवी मन की द्वन्द्वमय अवस्था का यथार्थ चित्र खींचा है।

पहला अंक

नाटक का प्रारम्भ अजातशत्रु के शिकारी के एक प्रसंग से होता है। लुब्धक और अजात में वाद विवाद हो रहा है। इतने में पद्मावती आ जाती है वह कहती है कि निरीह जीवों को पकड़ कर निर्दयता सिखाने में सहायक न हो। पर अजात को अपनी बहन की यह बनावटी असह्य होती है। इतने में ही अजात की माँ छलना आती है। वह पद्मावती से कहती है। 'पद्मावती यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक (अजात) का हृदय छोटा छोटी बातों से तोड़ देना, उस डरा देना उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।'[2] यहाँ नाटककार ने बालमनोविज्ञान की दृष्टि से बाल्य जीवन में क्रियात्मक योग्यताओं का महत्व विचार किया है। आत्मनिर्भरता पाठशालीय समायोजन सामाजिक सम्पर्क स्व को समझना आदि कारणों से बालकों में क्रियात्मक योग्यताओं का विकास होता है।[3] छलना अजात को राजा बनाने के लिए अपनी इच्छानुसार उसे शिक्षा देना चाहती है। वासवी भी कुछ समझा देने की कोशिश करती है पर कोई किसी की सुनता नहीं। गृह-कलह की यह बात बिम्बसार तक पहुँच जाती है। गौतम बुद्ध भी वहाँ आ जाते हैं। वे बिम्बसार से कहते हैं तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो। राजन ! समझ लो इस गृह विवाद और आन्तरिक झगड़ों से विश्राम लो।[4] राजा बिम्बसार इस आज्ञा को निरमावद्य मानता है। अजातशत्रु राजमाता छलना एवं देवदत्त के निर्देशन में कार्यारम्भ करता है। महाराज बिम्बसार और महारानी वासवी उपवन में अपना जीवन व्यतीत करने लगते हैं। देवदत्त संघ से अलग होकर भगवान बुद्ध के प्रभाव को।

---

१ विशाख पृ० ९२।

२ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु चौबीसवाँ संस्करण पृ० २८।

३ भाई योगेन्द्रजीत बाल-मनोविज्ञान, पृ० ९८।

४ वही पृ० ३१।

हटाने की कोशिश कर रहा है। वह सोचता है कि राज्य से बिम्बसार के बाहर जाने के बाद बुद्ध का प्रभाव कम हो जायगा। अजातशत्रु तथा उसकी माता छलना महत्वाकांक्षी होने के कारण छल से मगध के शासन से महाराज बिम्बसार को राज्यत्याग करने पर मजबूर कर देते हैं। थोड़े ही दिनों में बिम्बसार तथा वासवी की अवस्था प्रायः निर्धन सी हो जाती है। मगध के शासन में ही प्रसेनजित द्वारा दिया गया काशी राज्य भी सम्मिलित था जिसे वासवी अपनी पैतृक सम्पत्ति होने के कारण अपने अधिकार में लेना चाहती है। मगध के राज परिवार की कलहाग्नि कौशल पहुँचती है। अजातशत्रु की तरह कोशल का राजकुमार विरुद्धक राज्य का अधिकार प्राप्त करना चाहता है, पर इस कोशिश में उसे अपने युवराजपद से भी हाथ धोना पड़ता है। उधर कौशाम्बी में मागन्धी उदयन की एक रानी होते हुए भी अपमान का जीवन व्यतीत कर रही है। वह अपने आत्मकथन में कहती है 'इस रूप का इतना अपमान! सो भी एक दरिद्र भिक्षुक के हाथ। मुझसे ब्याह करना अस्वीकार किया! यहाँ मैं राजरानी हुई, फिर भी वह ज्वाला न गयी, यहाँ रूप का गौरव हुआ, तो धन के अभाव से दरिद्र कन्या होने के अपमान की यन्त्रणा में पिस रही हूँ! अच्छा इसका भी प्रतिशोध लूंगी अब से यही मेरा व्रत हुआ। उदयन राजा है, तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ। दिखला दूंगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं।'[1] इससे विदित होता है कि हीनता ग्रंथि एवं इसका प्रबल भाव उसे अस्वस्थ कर रहा है। वह पद्मावती के विरुद्ध षडयन्त्र का आयोजन करती है। हस्तिस्कंध वीणा में साँप का बच्चा रखवा देती है। इससे उदयन क्रोधायमान हो जाता है। वह युग प्रणीत समष्टि अचेतन की प्रेरणा से उद्यत होकर पद्मावती पर तलवार उठाना चाहता है इतने में वासवदत्ता वहाँ आकर उदयन के इस कृत्य को रोकती है। उदयन को विदित होता है कि षडयन्त्र में मागन्धी का हाथ है। इतने में मागन्धी के महल में आग लगी हुई दिखाई पड़ती है।

दूसरा अंक

अजातशत्रु की राजसभा में समुद्रदत्त कह देता है कि काशी की प्रजा राजकर देने के विरोध में है। तब अजातशत्रु समुद्रगुप्त से कहता है, 'ओह! अब समझ में आया। यह काशी की प्रजा का कंठ नहीं, इसमें हमारी विमाता का व्यंग्य स्वर है। इसका प्रतिकार आवश्यक है। इस प्रकार अजातशत्रु को कोई अपदस्थ नहीं कर सकता।'[2] यहाँ अजातशत्रु के दुर्बल अहम् (इगो) पर

---

१ अजातशत्रु पृ० ३९।
२ वही, पृ० ६०।

प्रकाश पडता है। देवदत्त अजातशत्रु को जानकारी देता है कि कोशल रानी की प्रजा म विद्रोह करना चाहता है और इस षडयन्त्र म गौतमबुद्ध का हाथ है इतन म ही विरुद्धक का पत्र लेकर एक दूत आता है। वह कहता है कि विरुद्धक वहाँ की प्रजा क विरोध म काय कर रहा है। प्रसनजित बन्धुल को रानी का साम त बनाकर भजता है। माग म बन्धुल एव विरुद्धक दोना मिल जाते हैं। विरुद्धक शलन्द्र क रूप म बन्धुल को अपना परिचय दता है। यहीं मागन्धी श्यामा नामक कन्या क रूप म विचरण कर रही है। प्रायडियन लिबिडो वत्ति एव अनियत्रित आवेग के कारण उसन वश्यावत्ति को अपनाया है। वहीं शलन्द्र डाकू क रूप म उस परिचय दता है। वह अपन आत्मकथन म कहती है, किन्तु मैं शलन्द्र स मिलन आयी हू– वह डाकू है तो क्या, मरी भी अतप्त वासना है। माग धी ! चुप वह नाम क्या लती है। मागन्धी कौशाम्बी के महल म आग लगाकर जलमरी– अब तो मैं श्यामा रानी की प्रसिद्ध वार विलासिनी हू। बड बडे राजपुरुष और श्रेष्ठी इसी चरण को छूकर अपन को धन्य समझते हैं। धन की कमी नहीं मान का कुछ ठिकाना नहीं राजकुमारी होकर और क्या मिलता था केवल सापत्न्य ज्वाला की पीडा।'[1] दूसरी ओर बन्धुल और शलन्द्र का द्वद्वयुद्ध हो जाता है। शलन्द्र छल से उसकी हत्या कर दता है। परिणाम म विरुद्धक (शलेन्द्र) ब दी होता है। श्यामा शलन्द्र की मुक्ति के लिए दण्डनायक को दने क लिए हजार मोहरें समुद्र दत्त क पास देती है। वह शलन्द्र को जी जान स चाहती है। एक रात म श्याम जल का एक भयानक चिता स्वप्न दखती है। इसके बाद विरुद्धक श्यामा का, जिसन उस पर पूण रूप स विश्वास किया था गला घोटता है। और उसक आभूषण लेकर चम्पत हो जाता है। अपराध ग्रथि का यह कुप्रभाव है। इसी बीच मल्लिका को अपने पति की हत्या की वार्ता मिलती है। असीम दु ख म भी वह तथागत का कत यपूण ढग स स्वागत करती है। प्रसनजित और विरुद्धक की सवा सुश्रूषा भी करती है। बन्धुक की हत्या होते ही अजातशत्रु कोशल को हस्तगत करना चाहता है। दूसरी ओर गौतम बुद्ध आन द के साथ श्यामा के पास आ पहुचते हैं। श्यामा मरी नहीं था। करुणा का आदेश मानकर व उस विहार ल जाते हैं। श्यामा जीवित हो उठती है। इस अक क अ त म कोशल और कौशाम्बी की सना मिलकर अजातशत्रु आक्रमण करने के लिए डटी रहन की वार्ता मिलती है।

तीसरा अक

राजा प्रसनजित और उदयन दानो मिलकर मगध पर आक्रमण करते है।

---

1. अजातशत्रु पृ० ६८।

अजात की हार होती है। उसे बन्दी बनाकर कोशल भेज दिया जाता है। छलना देवदत्त को दोष देते हुए कहती है "धूर्त ! तेरी प्रवचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई। पुत्र बन्दी होकर विदेश चला गया और पति को मैंने स्वयं बन्दी बनाया। पाखण्डी ! तूने ही यह चक्र रचा है।[1]" यहाँ छलना के इड का मार्गान्तरीकरण देखने लायक है। उधर कोशल की राजकुमारी वाजिरा अजातशत्रु पर मुग्ध हो जाती है। अजातशत्रु की मुक्ति होती है। उसमें नैतिकतावान (सुपर इगो) की जाग्रति होती है। इसी कारण वह वासवी से कहता है, 'कौन ! विमाता ? नहीं तुम मेरी माँ हो ! माँ ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया। मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, माँ ! क्या तुम क्षमा करोगी ?[2]' इसके बाद कोशल राजकुमारी वाजिरा के साथ उसका परिणय होता है। मागन्धी (श्यामा) आम्रपाली के रूप में उपस्थित हो जाती है। उसकी यह क्रिया प्रक्षेपण के अन्तर्गत आती है। प्रक्षेपण अचेतन मन की एक आत्मरक्षार्थ क्रिया है जिसके द्वारा मागन्धी अचेतन मन के अपराध भाव को अपनी कामजनित पीड़ा को बाहरी विषय पर आरोपित करके अपना भार हल्का कर लेती है। पुत्र प्राप्ति के बाद अजात को पितृ प्रेम की सही परख होती है। वह बिम्बसार से क्षमा माँगता है। इसी अवसर पर गौतम बुद्ध प्रवेश करते हैं और बिम्बसार पर अभय का हाथ उठाते हैं।

अजातशत्रु के चरित्र चित्रण में मनोविज्ञान की कई गुत्थियों का आविष्कार हुआ है। गृह-कलह के कारण अजात में बचपन से ही वीररूप क्रूरता एवं कठोरता दिखाई देती है। उसके मानसिक द्वन्द्व को देखकर डा० गणेशदत्त गौड़ ने अजात की तुलना मकबेथ के साथ की है।[3]" बिम्बसार मगध का सम्राट है। छोटी रानी छलना एवं पुत्र अजात के विद्रोह की आशंका से गौतम के आज्ञानुसार उन्होंने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया। इनकी इस क्रिया में उन्नतीकरण का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। विरुद्धक कोशल का राजकुमार है जो अपनी माता की प्रेरणा से राष्ट्रद्रोह के लिए उद्यत होता है। उसमें अपराध ग्रंथि एवं इड का प्राबल्य है। देवदत्त का गौतम के विरोधी द्वेषभाव उसकी हीनता ग्रंथि का परिचायक है। छलना आवेग-प्रधान महत्त्वाकांक्षी एवं इड

---

१ अजातशत्रु पृ० १०८।

२ वही पृ० १११।

३ डा० गणेशदत्त गौड़ आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन,
- पृ० १७

प्रणति मात्र है। मागन्धी या श्यामा के मन में भाव लिबिडो से उत्पन्न होते हैं बाजिरा में इस प्रवृत्ति होने से यह सन्तान अजातशत्रु के प्रेमपाश में बँध जाती है।

अजातशत्रु के कथोपकथन सादृश्य हैं। उसमें कहीं कहीं विस्तार एवं दार्शनिकता दिखाई देती है। मनोभावों को प्रदर्शित करने में उनको अत्युत्तम सफलता मिली है। उदाहरण के लिए–

प्रसनजित––नहीं–मैंने अपराध किया है। सेनापति बन्धुल के प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था–इसलिए उनकी हत्या का पाप मुझे भी लगता है।

मल्लिका––यह अब छिपा नहीं है महाराज! प्रजा के साथ आप इतना छल, इतनी प्रवंचना और कपट व्यवहार रखते हैं! धन्य हैं।

प्रसनजित––मुझे धिक्कार हो–मेरा पाप हो–मल्लिका! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो वह कहो मैं उसे पूर्ण करूँगा–

मल्लिका–– (हाथ जोड़कर)–कुछ नहीं महाराज! आज्ञा दीजिए। कि आपके राज्य से निर्विघ्न चली जाऊँ किसी शान्तिपूर्ण स्थान में रहूँ। ईर्ष्या से आपका हृदय प्रत्यय के मध्याह्न का सूर्य हो रहा है उसकी भीषणता से बचकर किसी छाया में विश्राम करूँ। और कुछ भी मैं नहीं चाहती।[1]

उपर्युक्त कथोपकथन में प्रसनजित में विस्थापन कार्य-पद्धति और मल्लिका में प्रबल नैतिकता (सुपर इगो) उद्भूत हुआ है।

अजातशत्रु में काव्यात्मकता और अलंकारों की भरमार होने के कारण भाषा में कहीं कहीं जटिलता आई है। भाषा में प्रचुरता एवं सरसता है। इस नाटक की भाषा में काव्य दर्शन एवं मनोविज्ञान का सबल प्रयोग हुआ है अपदस्थ राजस्व शृंगार मंजूषा बोधन विवेक वाज सन्तुष्टश्च महीपति! प्रभृति संस्कृत प्रचुर शब्दों से भाषा का सौन्दर्य बढ़ा है। इसमें प्रयुक्त मुहावरों से पात्रों के चरित्रों पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है। जैसे–पानी फेरना दाँत जमे रहना टाँग अड़ाना पिंड छूटना आदि।[2]

निम्नलिखित सूक्तियाँ ध्यान देने लायक हैं।

(१) मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

(२) विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है।

---

१ अजातशत्रु पृ० ८१।

२ वही पृ० क्रमशः २६ ३७, ७०, ८५ १०१।

३ वही पृ० क्रमशः ४८, ६०, १००, १००।

(३) वाक् सयम विश्वमैत्री की पहली सीढी है।
(४) जीवन की सारी क्रियाओ का अन्त केवल अनन्त विश्राम मे है।
(५) निर्भय होकर पवित्र कर्तव्य करो।
(६) कुल शील पालन ही तो आर्य ललनाओ का परमोज्ज्वल आभूषण है।
(७) आतक का दमन करना प्रत्येक राजपुरुष का कर्म है।[1]
(८) उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव हृदय के लिए ही बने हैं।
(९) मनुष्य हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है।[2]

ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जयशकर प्रसाद ने इस नाटक मे अपराध मनोग्रथि लिबिडो वृत्ति, समष्टि अचेतन आदि कई मनोवैज्ञानिक उपसिद्धान्तो का यथार्थता के साथ प्रयोग किया है।

कामना

प्रसाद जी ने प्रतीक योजना के सहारे 'कामना' की निर्मिति की है। इस कल्पना-प्रधान नाटक मे नाटककार ने मानव समाज की आदिम प्रवृत्तियो पर गहरा प्रकाश डाला है। इस पर 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'देव माया प्रपच' एव उनकी महाकाव्य 'कामायनी' का प्रभाव दिखाई देता है।

पहला अक

समुद्र के किनारे फूलो के द्वीप मे वृक्ष की छाया मे लेटी हुई कामना अपने मनोगत मे कह रही है "विशाल जलराशि के शीतल अक से लिपटकर आया हुआ पवन इस द्वीप के निवासियो को कोई दूसरा सदेश नही, केवल शान्ति का निरन्तर सगीत सुनाया करता है। सन्तोष ! हृदय समीप होने पर भी दूर है सुन्दर है, केवल आलस का विश्राम का स्वप्न दिखाता है। परन्तु अकर्मण्य सतोष से मेरी पटेगी ? नही ! इस समुद्र मे इतना हाहाकार क्यो है ?"[3] कामना के इन विचारो से विदित होता है कि उसमे यौवन जन्य उद्दाम वासना तथा कुछ प्राप्त करने की असीम चाह है, जिसके लिए वह अस्वस्थ हो गई है। इतने मे ही सतोष और विनोद आ जाते हैं। दोनो ब्याह को लेकर वार्तालाप करते हैं। सन्तोष विनोद से कहता है कि मैं सन्तुष्ट हूँ मुझे ब्याह की आवश्यकता नही। थोडी देर मे लीला भी आ जाती है।

---

१ अजातशत्रु पृ० क्रमश २५ २८ ३० ३६, ४६, ५१, ६६।
२ वही, पृ० क्रमश ९० १३४।
३ जयशकर प्रसाद कामना, अष्टम आवृत्ति, पृ० ७।

कामना उससे कहती है "मेरा कुछ नहीं है तू जा । मैं चुप रहना चाहती हूँ मेरा हृदय रिक्त है । मैं अपूर्ण हूँ।"[१] इससे ज्ञात होता है कि उसके अंतमन में द्वन्द्व चल रहा है । इतने में उसे दूर पर वंशी की ध्वनि सुनाई देती है। एक नाव में अत्यंत चमकीले वस्त्रों से सज्जित एक युवक तट पर आता है । उसके आकर्षक प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर कामना उस पर अनुरक्त हो जाती है । फूलों के द्वीप में वह उसका हार्दिक स्वागत करती है । उस युवक का नाम होता है विलास । अपने द्वीप का मनोरम कथा सुनाते समय वह उससे कहती है "हम लोग बड़ी दूर से आये हैं। जब विलोड़ित जल राशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर आया उसी समय हम लोग नीतल तारिकाओं की किरणों की डोरी के सहारे नीचे उतर गये। इस द्वीप में अब तक तारा की सन्तानें बसती हैं ।"[२] सब सुनकर विलास विस्मित हो जाता है । सुरीले पक्षी के शब्द सुनकर कामना विलास से कहती है "पिता का सन्देश सुन रही थी । मैं उपासना गृह में जाती हूँ । क्योंकि कोई नवीन घटना होने वाली है । तुम चाहे ठहरकर आना ।"[३] यहाँ नाटककार ने रहस्यात्मक भाव का प्रस्फुटीकरण किया है जिसमें विशिष्ट तरह की मानसिक अवस्था दृष्टिगोचर हुई है । विलास अपने देश में कुकर्मों के कारण निष्कासित किया गया है । वह अनाचार अत्याचार एवं अपराधों के द्वारा फूलों के द्वीप पर हाहाकार फैलाना चाहता है । इसके लिए स्वर्ण तथा मदिरा के प्रचार की योजना बनाता है । सर्वप्रथम वह स्वर्णमुकुट के बल पर कामना पर अधिकार जमाता है । इसके बाद लीला लालसा तथा विनोद को भी अपने चंगुल में फंसाता है । मदिरा के प्रचार में विनोद का विशेष सहयोग मिलता है। सारा द्वीप स्वर्ण तथा मदिरा के नशे में डूब जाता है । सन्तोष एवं विवेक इसका विरोध करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु उनकी ओर कोई ध्यान तक नहीं देते । विलियम जेम्स के अनुसार नई आदत बनाने के लिए यथासंभव शक्तिशाली प्रेरणा शक्ति से कार्य आरम्भ होना चाहिए ।[४] विलास इस तत्व के आधार पर अपने काम को श्रीगणेश करता है । अपनी कार्य सिद्धि के लिए वह कामना को द्वीप की रानी बनाता है ।

दूसरा अंक

विलास कामना पर अनुरक्त होते हुए भी उससे विवाह नहीं करना

---

१ जयशंकर प्रसाद कामना अष्टम आवृत्ति पृ० १५ ।

२ वही पृ० १६ ।

३ कामना पृ० १७ ।

४ डा० माथुर एस० एस० सामान्य मनोविज्ञान षष्ठ संस्करण पृ० २११

चाहता । वह कामना मे कहता है कि परन्तु अब तो तुम इस द्वीप की रानी हो । रानी को क्या ब्याह करके किसी बन्धन मे पडना चाहिए । वास्तव मे वह ऐसी नारी चाहता है जो बिजली के समान वक्र रेखाओ का सजन कर सकेगी । कामना मे इसका अभाव होने से वह लालसा की ओर आकृष्ट होता है । (स्वर्ण के लालच मे) लालसा के पति शान्तिदेव की हत्या हो जाती है। फूलो के द्वीप के लोग मदिरा का आकण्ठ पान कर कई कुमार्गों का अवलम्ब कर रहे हैं । चोरी, हत्या जसे अपराध तो दिनदहाडे हो रहे हैं । इस सन्दर्भ मे विवेक सतोष से कहता है, "इस देश के बच्चे दुबल, चिन्ताग्रस्त और झुके हुए दिखाई देते हैं । स्त्रियो के नेत्रो मे विह्वलता सहित और भी कैसे कैसे कृत्रिम भावो का समावेश हो गया है । व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है । सोने का ढेर छल और प्रवचना से एकत्रित करके थोडे से ऐश्वर्यशाली मनुष्य द्वीप भर को दास बनाये हुए हैं और, आशा मे, वल स्वय भी ऐश्वर्यवान होने की अभिलाषा मे बचे हुए सीधे सरल व्यक्ति भी पतित होते जा रहे हैं ।"[1] विलास एक महत्त्वाकाक्षी पात्र है, जिसमे फ्रायड वर्णित लिबिडो वृत्ति खचाखच भरी हुई है । लालसा भी इसी प्रवृत्ति की है। फूलो के देश की दुर्दशा ! और क्या ? इसका विवरण करते हुए सन्तोष करुणा के सम्मुख कहता है, 'पतझड हो रहा है, पवन ने चौका देनेवाली गति पकड ली है---इसे वसन्त का पवन कहते हैं —मालूम होता है कि कर्कश और क्षीण पत्रो के बीच चलने मे उसकी असुविधा का ध्यान करके प्रकृति ने कोमल पल्लवो का सजन करने का शुभारम्भ कर दिया है ।" विरल डालो मे कही कही दो फूल और कहीं हरे अकुर फूलने लगे हैं—गोधूली मे खेतो के बीच की पगडडिया निजन होने पर भी मनोहर हैं—दूर दूर रहट चलने का शब्द कम और कृषको का गाना विशेष हो चला है। इसी वातावरण मे हमारा देश बडा रमणीय था परन्तु अब क्या हो रहा है, कौन कह सकता है । सब सुख स्वर्ण के अधीन हो गये । हृदय का सुख खो गया । पतझड हो रहा है ।"[2] तात्पर्य, देश की मरणप्राय अवस्था हो गई है । इसी अक के अन्त मे विलास का लालसा के साथ परिणय हो जाता है । कामना त्रस्त हो जाती है । उसके प्रबल मनावेग की गति रुद्ध हो जाती है ।

तीसरा अक

आचार्य दम्भ क्रूर, दुबल और प्रमदा के सम्मुख देश के नवीन सजन के

१ कामना पृ० ८४ ।
२ वही, पृ० ५६ ।

के बार म मोन रह हैं । परन्तु मदिरा की मस्ती म नागरिक एव स्त्रियाँ इस ओर ध्यान नहीं देती । कामना की अतृप्त एव दमित कुण्ठाए उसे अस्वस्थ कर रही हैं । वह अपने आत्मनिवदन म कहता है प्रकृति शान्त है, हृदय चचल है । आज चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ है । मन मछली के समान तर रहा है उसकी प्यास नहीं बुझती । अन त नक्षत्र लोक स मधर वशी की धन कार निकल रही है परन्तु कोई गान वाला नहीं है । किसी का स्वर नहीं मिलता । दासी [1] प्यास [1] इधर कामना के दुर्बल इद न माना उसे पागल बना दिया है । लालसा विलास को जीवन सगिनी बनाकर भी अतृप्त दिखाई देती है । उसका यौन सम्बन्धी द्वन्द्व (Sex conflicts) उस उद्विग्न कर रहा है वह अपने मनोगत म कहती है दारुण ज्वाला, अतृप्त का भयानक अभिशाप मेरे जीवन का सगी कौन है ? मैं लालसा हूँ जन्म भर जिसस सन्तोष नहीं हुआ । नगर स आ रही हूँ । प्रमदा के स्वतन्त्रता भवन के आनन्द विहार से भी जी नहीं भरा कोई किसी को रोक नहीं सकता और न तो विहार की धारा म लौटने की बाधा है । उच्छृखल उन्मत्त विलास मदिरा की विस्मृति । विहार की शान्ति फिर भी लालसा [1] [2] लालसा सनिक के साथ भी कुकर्म करना चाहती है । इधर विलास स्वर्ण प्राप्ति की आशा स अपने सहयोगियो के साथ निकटवर्ती प्रदेश पर आक्रमण कर देता है । युद्ध म उसे सफलता भी मिलती है । परन्तु फूलो के देश म अनाचार व्यभिचार असत्य एव छलप्रपच की मानो बाढ आ जाती है । कामना रानी स्वर्ण मुकुट को उतारकर फेंक देती है । विनोद तथा लीला भी अपने स्वर्णपट्ट एव आभूषण उतारकर फेंक देते हैं । इन सभी म उदात्तीकरण की वृत्ति जाग्रत हो जाती है । अनन्त समुद्र म काल के परदे म कहीं तो स्थान मिलेगा--इस विचार के साथ लालसा विलास को नाव म अपने साथ बिठा लेती है । अन्त म सन्तोष तथा कामना का मिलन होता है । फूलो के देश के नागरिक नौका पर स्वर्ण फेंकते हैं । नाव डगमगाती है । विलास एव कामना अन्धकार म अदृश्य हो जाते हैं ।

इस पूरे नाटक पर आचरणवाद (Behaviourism) का गहरा असर दिखाई देता है । वाटसन के मतानुसार मानव व्यवहार अत्यन्त जटिल होता है । इस जटिल व्यवहार का अध्ययन केवल उद्दीपक तथा प्रतिचार के माध्यम स किया जाता है । इस नाट्यकृति म उद्दीपक प्रतिक्रिया प्रतिक्षेप-शृखला, आदत, चेष्टा आदि के द्वारा मनुष्य का प्रकट एव अप्रकट शारीरिक आचरण स्पष्ट हो गया है । हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डा० नगेन्द्र ने बताया है कि

---

१ कामना, पृ० ६७ ।

२ वही, पृ० ७४ ७५ ।

कामना का रूपक सांगोपाग है । इसका स्पष्टीकरण करत हुए उन्होने कहा है- मनुष्य की कामना की परितप्ति विलास द्वारा नही, सतोप द्वारा ही सम्भव है ।– – – मनुष्य की लालसा ही विलास से थोडी देर के लिए तप्त हो सकती है–पर विलास और लालसा के वशीभूत होकर मनष्य अपनी स्वत त्रता खो बठता है और इस प्रकार दु ख का आरम्भ होता है । लीला स ही मनुष्य पहले धन की ओर आकृष्ट होता है । लीला और विनोद विलास के अंग हैं– उनसे उसकी परिवद्धि होती है, विवेक और सन्तोप से ह्रास । विवेक का बार-बार आकार रंग मे भग करने का प्रयत्न इस वत्ति की ओर इगित करता है कि हमारा विवेक हमारे विनाशरत जीवन मे भी किस प्रकार बार बार चेतावनी देता रहता है– – – हमारी आज की सस्कृति सभ्यता की नीव, दम्भ दुव त्ति और क्रूरता पर आधारित है, शांति नष्ट भ्रष्ट हो गयी है, करुणा निराश्रित – – – विलास और लालसा से मुक्त हो जाने पर ही मानवता को प्रकृत सुख और शांति मिलेगी ।[1]

'कामना' के विलास का चरित्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । वह अपन बुद्धि कौशल द्वारा फूलो के द्वीप पर अधिकार जमाता है । वह क्रूर एव विलासी है । अनाति और अनाचार उसके व्यक्तित्व का स्थायी भाव है । विवक कतव्य निष्ठ है । न्याय के लिए वह सदव यत्नशील रहता है । सन्तोप ठण्ड प्रकृति का पात्र है । उसके सान्निध्य में कई लोगा को सान्त्वना मिलती है । विनोद पराक्रमी होते हुये भी अति मदिरा सेवन प्रेमी है । कामना महत्वाकाक्षी एव चचल नारी है । शुरू मे विलास ही उसके जीवन–सवस्व है पर अ त मे वह अपने विगत प्रेमी सन्तोप के साथ समझौता करती है । लालसा कामग्रस्त एव कुटिल नारी है ।

इस नाटक क पात्रो के कथोपकथनो की भापा म उनके भावो म नसर्गिक उत्कप दिखाई देते हैं । सवादा मे स्वाभाविकता एव मनोवज्ञानिकता का सहज सुन्दर आविष्कार हुआ है । जसे–

कामना––और देखते हुए भी आँखें बन्द थी ।
सतोप––मेरे पास कौन सम्बल था कामना रानी ।
कामना––ओह ! मरा भ्रम था !
सतोप––क्या तुम्हें दुःख है कामना ?
कामना––मेरे दुखों को पूछकर और दु खी न बनाओ ।

---

१ डॉ० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक, नवीन सस्करण १९७०, पृ० ५५–५६,

सताप--नहीं कामना क्षमा करो। तुम्हारे कपोलों के ऊपर और भौंहों के नीचे एक श्याम मण्डल है नाना रोदन हृदय में और गम्भीरता ललाट में खेल रही है ! और भी एक लज्जा नाम की नयी वस्तु परदा के परदे में छिपी है जो कुछ ऐसी मर्म की बातें जानती है जिन्हें हम लोग पहले नहीं जानते थे।[१]

उपर्युक्त संवादों में कामना एवं संताप की अंतर्मनाभिव्यक्ति यथार्थ रूप में हो गयी है।

इस नाटक की भाषा अधिक काव्यमय है। अलंकृत एवं कलात्मक भाषा इस नाटक के प्राण हैं। उदाहरण तौर पर–

(१) ये मुरझाये हुए फूल इन्हें–कलियां चुनो वे हँस रहे थे और सजाओ तब कहीं पहनो।

(२) ये हरे भरे वन छोटी छोटी पहाड़ियों से झुकते मचलते हुए परन फूलों से लदे हुए वनों की पंक्ति नाली गउओं और उनके प्यारे बच्चों के झुंड इस बीहड़ पागल और नंगे कुछ समझने वाले उन्मत्त समुद्र में कहीं मिलेंगे। ऐसी धवल धूप ऐसी तारा से जगमगाती रात कहाँ होगी ?

(३) इस प्रधान के स्वच्छन्द कर्मों से कुसुम के समान सृष्टि में अन्धकार मिश्रित आलोक फैल गया है।

(४) और जब वह नाच पहनने लगी है तो जैसे सन्ध्या के गुलाबी आकाश में सुनहरा चाँद खिल जाता है।

( ) जैसे खुले उन्नत वक्षस्थल पर कपाल के यौवन का एक सुनील मेघखण्ड छाया किये हो।[२]

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि इस नाट्यकृति में मन का अन्तर्द्वन्द्व एवं आचरणवाद का यथार्थ निरूपण हुआ है

जनमेजय का नागयज्ञ

जनमेजय का नागयज्ञ प्रसाद जी का पौराणिक नाटक है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रियों के पारस्परिक संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है।

पहला अंक

कथानक का प्रारम्भ मनसा और सरमा के वार्तालाप से होता है। सरमा कहती है कि जब मैंने प्रभास के विप्लव के बाद अर्जुन के साथ आते हुए नागराज वासुकि को आत्म-समर्पण किया था तब भी इस साहसी और वीर जाति

१ कामना पृ० ६९
२ वही, पृ० क्रमशः ८, ९, २४ २९, ४६

पर मेरी श्रद्धा थी। मनसा भी प्रबल नाग जाति के गौरव की प्रशंसा करती है। इसी दृश्य में श्रीकृष्ण एवं अर्जुन का संवाद है, जिसमें भारतीय दर्शन की एक झाँकी दृष्टिगोचर हुई है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं "किन्तु देखो जिन्हें हम जड़ कहते हैं, वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते हैं, तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है स्पन्दन होता है जिसे जड़ता नहीं कह सकते। वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है जड़ता कहाँ ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है।"[1] इसके उपरान्त उत्तंक तथा वेदपत्नी दामिनी का प्रसंग आता है। दामिनी उच्छृंखल एवं कामुक स्त्री है। वह उत्तंक से कहती है 'और जो फूल ऋतु में विकसित हो, उसे अपनी तृप्ति के लिये तोड़ लेना चाहिये, नहीं तो वह कुम्हला जाएगा, व्यर्थ जाएगा। इसलिये उसका उपयोग कर लेना चाहिये। क्या, यही बात है न ? - - - हाँ उत्तंक, भला मैं तुमसे रुष्ट हो सकती हूँ ? वाह यह भी अच्छी कही। अच्छा लो, तुम इन्हीं फूलों की एक माला बनाओ और तब मैं कुछ गाऊं।'[2] यहाँ दामिनी की वृत्ति में समस्त कामातुर स्त्री-पुरुषों में पायी जाने वाली वात्स्यायनकृत परकीयारति भावना दिखाई देती है। उत्तंक आत्म-संयमी है। वह उसके साथ गुरुपत्नी जैसा ही बर्ताव करता है। इसके बाद दामिनी उत्तंक से गुरु दक्षिणा के रूप में रानी के मणि कुण्डल माँगती है। उसकी इच्छा पूरी करने के लिये उत्तंक रानी व पुष्टमा में नागों के मणिकुण्डलों की याचना करता है जिसे रानी उदारता एवं आनन्द से दे देती है। इधर मनसा के तीखे शब्द असह्य होने के कारण सरमा नागकुल को छोड़कर अपने पुत्र माणवक के साथ आर्य-कुल में आती है। वह माणवक से कहती है, 'बेटा तुम इस अभागिनी की और भी भर्त्सना करोगे ? क्षमा करो लाल मैं इन्हें अपना सम्बन्धी समझकर इनका आश्रय लेने चली आयी थी। तुम मेरी अग्नि परीक्षा न करो। जिसकी रसना की तृप्ति के लिये अनेक प्रकार के भोजनों की भरमार होती है वे पेट की ज्वाला नहीं समझते। मैंने आर्य की प्रार्थना की, तो उन्होंने एक अपमान और जोड़ दिया। मैंने नाग परिणय किया था। यह भी मुझ पर एक अपराध लगा।'[3] यहाँ सरमा के चेतन अचेतन मन का द्वन्द्व प्रस्फुटित हुआ है। इस अंक के एक दृश्य में जनमेजय का नाग विद्रोही भाव दिखाई देता है। इसके बाद उत्तंक मणिकुण्डल गुरुपत्नी दामिनी को दे देता है। दामिनी मणिकुण्डल उत्तंक के हाथों से पहनना चाहती

---

१ जयशंकर प्रसाद जनमेजय का नागयज्ञ, अष्टम संस्करण, पृ० १२

२ वही, पृ० १९

३ वही पृ० ३०

है परन्तु ऐसा पारिस्टय नहीं करता । वह अपन कत य म मुक्त होता है जिसम अप्रधर्षी प्ररणा-शक्ति दिखाई दती है । इसी अक के अत म मृगया करते समय जनमजय के बाण म अकस्मात जरत्काऱु ऋषि की हत्या हो जाती है ।

दूसरा अक

जरत्कारु का पुत्र आस्तीक तथा तक्षक की पुत्री मणिमाला म दार्शनिक शब्दावली म वार्तालाप चल रहा है । यहीं जनमजय एव मणिमाला की भेंट होती है । परिचय के बाद जनमजय मणिमाला स कहता है, तुम्हारे इस सरल मुख पर तो शत्रुता का कोई चिह्न ही नहीं । ऐसा पवित्र सौन्दयपूण मुख मडल तो मैंने कहीं नहीं दखा । [1] अन्ततागत्वा दोना एक दूसरा की ओर आकृष्ट हो जात हैं । दूसरी ओर दामिनी अपनी वासना की तप्ति न करन वाल उत्तक से प्रतिशोध लना चाहती है । उसका इड उस चुपचाप नहीं बठने देता । वह उत्तक शत्रु तक्षक के सम्मख अपनी मनोकामना प्रकट करती है । इस अङ्क के तीसर दश्य म उत्तक जनमजय का उत्त नागा का दमन करन के लिए अश्व मध क स्थान पर नागयन करन को प्ररित करता है । उत्तक एव जनमेजय में प्रस्फुटित धार्मिक भावना फ्रायड के मतानुसार मानसिक दवलता है परन्तु वात्स्यायन लोक-यात्रा की दष्टि म अलौकिक फल की प्राप्ति के लिए धम का अक्षुण्ण महत्त्व मानते हैं । यहा वात्स्यायन के मत का प्रभाव दिखाई देता है । अर्थात् पौराणिक काल से मेल खाने वाली घटना है । भले ही बौद्धिकता की दृष्टि से उसमें कोई तथ्य न हो । इसी अक के एक दश्य म तक्षक का पुत्र अश्वसेन दामिनी के साथ अभद्र यवहार करने की कोशिश करता है इतने म मणिमाला वहा आकर उसकी रक्षा करती है । काश्यप (पुरोहित), तक्षक तथा अन्य ब्राह्मणा के साथ मिलकर जनमजय क साम्राज्य पर अधिकार जमाने की बात कहता है । सरमा तक्षक के विरोध में रहती है । थोडी देर म मनसा आती है और आर्यों के आक्रमण की जानकारी लती है । उसके द्वारा विदित होता है कि जनमजय की सना तक्षशिला पहुँच गयी है तथा नागा को जिन्दा जलाया जा रहा है । इस अक के अत म दामिनी पुनश्च पश्चाताप करती हुई उप स्थित होती है । अब उसके इड एव अहम (इगो) का सघप प्राय लुप्त हो चुका है । वह अपन भ्रम के लिय अपन पति की (वद) क्षमा मांगती है ।

तीसरा अक

वदव्यास तथा जनमेजय के वार्तालाप स नियति और पाप की दार्शनिक व्याख्या स्पष्ट हो जाती है । वदव्यास सिद्ध कर दता है कि जनमेजय को

---

1 जनमेजय का नागयन पृ० ४५

अश्वमेघयज्ञ करना ही पडेगा । इसके वाद एक दृश्य म जनमेजय का अश्व अय दिशाओ म विजयश्री सम्पादन करने के बाद नाग प्रदेश म आ जाता है । मनसा की प्ररणा से नाग अश्व का रोक लेते है । आर्यो एव नागा म तीव्र सघष होता है जिसम नागो को अपयश आता है। काश्यप की कुटिल नीति असफल हाती है । मणिमाला योद्धा क वेश मे उपद्रव मे कूद पडती है । माजवक उसकी रक्षा करता है। यज्ञशाला से मूर्च्छित वपुष्टमा को कई नाग बाहर लाते हैं । लक्षक और मणिमाला दोनो व दी हात हैं । जनमजय अपनी रानी वपुष्टमा का छिपा दन की वार्ता सुनकर क्रोधित हा जाता है । वह ब्राह्मण तथा साम श्रवा क सम्मुख कहता है 'तुम लागा को इसका प्रतिफल भागना होगा । यह छात्र रक्त उबल रहा है। उपयुक्त दण्ड ता यही है कि तम सबको इसी यज्ञकुण्ड म जला दूँ । कि तु नही, मैं तुम लागो का दूसरा दण्ड दता हू । जाआ तुम लोग मरा देश छोडकर चल जाओ । आज से कोइ क्षत्रिय अश्वमेध आदि यज्ञ नही करगा । तुम सरीखे पुरोहिता की अब इस दश म आवश्यकता नही । जाओ, तुम सब निवासित हा । '[1] यहा जनमजय म ध्वसात्मकता (Destructiveness) की भावना का निर्माण हुआ है । पूव यो जनानुसार नागयज्ञ प्रारम्भ होता है । उसी समय वद और दामिनी आत हैं । दामिनी उत्तक स क्षमायाचना मागता है। इतन म ही वेद यास के साथ सरमा, मनसा, माणवक और आस्तीक आत है । आस्तीक पितवध की ब्रह्म-हत्या की क्षतिपूर्ति चाहता है । वह अपन पिता की हत्या क बदल दो जातिया म शाति स्थापना की इच्छा प्रदर्शित करता है । सरमा व्यास की अनुमति स नागर या मणिमाला का परिणय जनमजय के साथ करा दती है। दो जातिया म हाने वाल सघष पर परदा गिरता है। सभी ओर शाति का साम्राज्य फल जाना है । नाटक के अ त म जनमेजय पर मक्डूगल के मन ऊजा सिद्धा त का झांकी दिखाई दता है । मन ऊजा का तात्पय है–व्यवहार की साहश्यता जा जिदा रखने का दिशा म प्रकट हाती है ।

इस नाटक का नायक जनमेजय है । उसक चरित्र म साहस और दढता है । उसके पिता पराक्षित का हत्या नागा द्वारा हुई थी । उसक नागा के विरुद्ध प्रतिशोध का यह भी एक कारण ह । मणिमाला शत्रु कन्या हात हुए भी जनमजय उसक प्रति आकृष्ट हाता है । इससे स्पष्ट होता है । कि वह सौ दय एव सरलता का गुण ग्राहक है । नियतिवादी दृष्टि यह उसक व्यक्तित्व की एक त्रुटि है। तक्षक क सतप्त हृदय मे हिंसा

१ जनमजय का नागयज्ञ पृ० ९१

की भावना दिखाई देती है। उत्तंक का साहस और शुद्ध चरित्र उसके व्यक्तित्व का विनाशशील पहलू है। आत्मीय उक्ति एवं कृति में सामञ्जस्य रखने वाला पात्र है। दो जातियों में सामञ्जस्य प्रस्थापित करने में उसका ठोस योगदान है। वपुष्टमा के चरित्र में स्वाभिमान, निर्भीकता एवं कृतज्ञ भावना दिखाई देती है। उसने अपनी इच्छा से वासुकि से परिणय किया था। आपत्तियों में भी वह अपने पति की कल्याण कामना में विमुख नहीं होती। तक्षक की कन्या मणिमाला आतिथ्यशील एवं उदार स्वभाव की है। जनमेजय से उसका परिणय होता है, जिसका प्रमुख श्रेय उसके सौहार्दपूर्ण व्यक्ति को देना चाहिए। वपुष्टमा यथोचित एवं प्राप्त स्थिति के साथ समझौता करने वाली नारी है। अपने पति के कल्याण के लिए सापत्न्य भाव भी ग्रहण कर लेती है। दामिनी अनन्त काम भावना की परिचायक है।

जनमेजय के संवादों में भाषा पात्रानुसार स्वरूप परिवर्तन करती चलती है। इस नाटक के कथोपकथन कुछ स्थलों पर बहुत विस्तृत एवं उबसान वाले हो गए हैं। श्रीकृष्ण तथा वेदव्यास के वार्तालाप में नाटकीयता दिखाई देती है। निम्नलिखित कथोपकथन मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

दामिनी—कौन उत्तंक ! तुम आ गए ?

उत्तंक—हाँ देवि मणिकुण्डल भी प्रस्तुत हैं।

दामिनी—उत्तंक ! मुझे अपने हाथों से पहना दो।

उत्तंक—देवि क्षमा हो, मुझे पहनाना नहीं आता।

दामिनी—उत्तंक ! तुम मुझे छूने से हिचकते क्यों हो ?

उत्तंक—नहीं देवि मुझे गुरु ऋण से मुक्त करें मैं जाऊँ।

दामिनी—तो चले ही जाओगे ? आज मैं स्पष्ट कहना चाहती हूँ कि

उत्तंक—चुप रहो देवि ! यदि ईश्वर का डर न हो तो संसार से तो डरो। पृथ्वी के गर्भ में असंख्य ज्वालामुखी हैं कदाचित् उनका विस्फोट ऐसे ही अवसरों पर हुआ होगा। तुम गुरु पत्नी हो मेरी माता तुल्य हो।[१]

उपर्युक्त संवादों में दामिनी की अनन्त कामवासना उमड़ पड़ी है परन्तु उत्तंक के नैतिकतावाद (सुपर इगो) के सम्मुख उसकी हार हो जाती है।

इस नाटक में नाटककार की भाषा का एक विकसित एवं सम्वर्धित रूप मिलता है। कहीं कहीं दुर्बोधता एवं जटिलता भी आई है। भाषा में संस्कृत गर्भित शब्द अधिक हैं। उदाहरण के तौर पर सर्प विग्रह, मधा नक्ति द्रुम

१ जनमेजय का नागयज्ञ पृ० ३८।

दल, सतृष्ण, विधि विहित, विश्याऽमतमश्नुत, स्वणवल्लसवासिनी, ऊजस्विता भरिगण शापादपि शरादपि पद स्खलन, निर्वाणोन्मुख।[1] मुहावरो के कारण रोचकता एव सुदरता मे वद्धि हुई है। कुछ मुहावरा के कारण रोचकता एव सुदरता मे वद्धि हुई है। कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं–आँखें गडा देना, हाँ–म हा मिलाना अट सट पढना, मारा मारा फिरना, चगुल म फँसना, भण्डा फाड देना, हृदय काप उठना, बीडा उठाना।[2]

निम्नलिखित सूक्तियो मे पात्रो का विविध मनोभाव प्रकट हुए हैं।

(१) विश्व मात्र एक अखण्ड व्यापार है। उसम किसी का व्यक्तिगत स्वाथ नही है।

(२) फूल प्रकृति की उदारता का दान है।

(३) मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।

(४) राज सम्पर्क हो जाने से इसी हडडी मास के मनुष्य अपने को किसी बड प्रयोजन की वस्तु समझने लगते हैं।

(५) जो सामने आवे उसे करते चलिए।

(६) दया, उदारता, शक्ति आजव और सत्य का सदव अनुसरण करना चाहिए।

(७) जिस दिन वे मरने से डरने लगेंगे उसी दिन उनका नाश होगा।

(८) बडे बडे विद्वान भी प्रवत्तियो के दास होते हैं।

(९) परमात्माशक्ति सदा उत्थान का पालन और पतन का उत्थान किया करती है।

(१०) उलट फेर को शा त और विचारशील महापुरुष ही समझते हैं।

(११) नियति का क्रीडा कन्दुक नीचा ऊँचा होता हुआ अपने स्थान पर पहुँच ही जायगा।[3]

(१२) यदि स्त्रियाँ अपने इगित की आहुति न दें तो विश्व म क्रूरता की अग्नि प्रज्वलित ही नही हो सकती।

(१३) जहाँ समाज हो, वहाँ उसी रूप म जाना चाहिए।[4]

ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कष पर पहुँचते है कि इस नाटक म

---

१ जनमजय का नागयज्ञ पृ० क्रमश १३, १९, १९, २१, २६, ३६, ५४, ६३, ७७ ८०, ८५ ८९।

२ वही पृ० क्रमश ११, २३, ३७ ४८, ५७, ५७, ७८, ८८।

३ वही पृ० क्रमश १४, १८ ४०, ४६, ५२, ६१, ६३, ६४, ६६, ६७, ७४

४ वही, पृ० क्रमश ७८, ८२।

भारतीय पद्धति के अनुसार धर्म और संस्कृति का मनोवैज्ञानिक आविष्कार हुआ है।

स्कन्दगुप्त

कला और नाटक विधान की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद का स्कन्दगुप्त एक महान कलाकृति है। प्रसाद जी ने इस नाटक में अन्तर्विद्रोह, स्वार्थपरता एवं विलासिता का एक प्रभावी चित्र प्रस्तुत किया है। डा० दशरथ ओझा के शब्दों में "स्कन्दगुप्त में प्रसाद ने पहले पहल इस तथ्य को अपनाया है कि ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक घटनाओं के साथ साथ पारिवारिक घटनाएँ भी जीवन पर प्रभाव डालती है।"[1]

प्रथम अंक

कथानक का आरम्भ उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य के स्कन्धावार से होता है। स्कन्दगुप्त अधिकार सुख के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट करते हुए कहता है 'अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है! उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं? (ठहरकर) ऊह! जो कुछ हो हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।'[2] उसकी इस वृत्ति में हीनता ग्रंथि का आविष्कार हुआ है। वह सेनापति से साम्राज्य की विषम स्थिति एवं दशपुर के दूत से मालवपति के निधन का समाचार सुनकर ववर हूणों से मालव की रक्षा के लिए तत्पर हो जाता है। वह दूत से कहता है कि अकेला स्कन्दगुप्त मालव की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। उसका आत्मनियंत्रण सराहनीय है। वह अपनी प्रतिज्ञा को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करना चाहता है। इस संदर्भ में डा० निरुपमा पोटा ने कहा है "नाटक के प्रारम्भ में ही स्कन्द की मनोदशा का आभास मिल जाता है। अचेतन में स्थित साम्राज्य के अधिकार की भावना स्कन्द के मानस में द्वन्द्व उत्पन्न कर देती है परन्तु नैतिकता अपने आपको सैनिक समझकर ही सन्तोष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अहम का संघटन हो जाता है।"[3] कुसुमपुर के राजमन्दिर में सम्राट कुमार गुप्त परिषद में स्पष्ट रूप से बता देता है

१ डा० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पंचम संस्करण पृ० २२९।

२ जयशंकर प्रसाद : स्कन्दगुप्त, चौदहवाँ संस्करण पृ० ९।

३ डा० निरुपमा पोटा : प्रसाद के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, प्रथम संस्करण पृ० २०९।

कि अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए युद्ध तो आवश्यक है। मगध सम्राट कुमारगुप्त और अनन्तदेवी के सम्भाषण से कुमारगुप्त की विलास प्रियता विदित होती है। मातृगुप्त में कवि की मनोदशा का हृदयगम दर्शन होता है। उसकी जिजीविषा देखने लायक है। कुमारदास (धातुसेन) मातृगुप्त से कहता है, "काले मेघ क्षितिज में एकत्र हैं, शीघ्र ही अंधकार होगा। परन्तु आशा का केन्द्र ध्रुवतारा एक युवराज स्कन्द है।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि स्कन्द सभी की आंखों का तारा है। अनन्तदेवी की इच्छा है कि अपना पुत्र पुरगुप्त मगध का सम्राट बने। इसी इच्छा से वह भटार्क की सहायता से षडयन्त्र आयोजित करती है भटार्क की दृष्टि से उसकी आंखों में कामपिपासा के संकेत देखे रहे हैं। वह अपना ध्येय साध्य करने के लिए हीन से हीन कृत्य करने को तैयार हो जाती है। भटार्क स्कन्द माता देवकी के द्वार पर शर्वनाग को प्रहरी के रूप में नियुक्त करता है। कुमारगुप्त के निधन की वार्ता गुप्त रखी जाती है। भटार्क परम भट्टारक राजाधिराज पुरगुप्त की जय की घोषणा करता है। कुमारामात्य, महादण्डनायक और महाप्रतिहार ये तीनों शास्त्र नीचे रखने की पुरगुप्त की आज्ञा को मानते नहीं। साम्राज्य का अन्तर्विद्रोह रोकने के लिए ये तीनों छुरे से आत्महत्या कर लेते हैं। उनकी स्वामिनिष्ठा में आन्तरिक द्वन्द्व के मार्गान्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है। मुद्गल और मातृगुप्त के संवाद से यह पता चलता है कि शक और हूणों की सम्मिलित सेना घोर आतंक फैला रही है, चारों ओर विप्लव का साम्राज्य है। गिरोह भारतीयों की घोर दुर्दशा है। इसी समय रूपकते हुए संन्यासी वेश में गोविन्दगुप्त आ जाता है। उससे ज्ञात होता है कि अब हूणों के आतंक का डर नहीं है। पुष्यमित्रों से युद्ध में स्कन्द की विजय हुई है और स्कन्द थोड़ी सेना लेकर बन्धुवर्मा की सहायता के लिए गये हैं। इस समय गोविन्दगुप्त कहता है स्कन्द! आकाश के देवता और पृथ्वी की लक्ष्मी तुम्हारी रक्षा करें। आर्य साम्राज्य के तुम्हीं एक मात्र भरोसा हो।'[2] इससे स्कन्द के नैतिकाह (Super Ego) के प्राबल्य की जानकारी मिलती है। इस अंक के अन्तिम दृश्य में जयमाला, देवसेना, बन्धुवर्मा और भीमवर्मा युद्ध की गतिविधि पर वार्तालाप कर रहे हैं। जयमाला युद्ध का दायित्व संभालते हुए कहती है कि हम क्षत्राणी हैं चिरसंगिनी खड्गलता का हम लोगों से चिर स्नेह है। उसके मन में एडलर प्रणीत एक प्रखर जीवन शैली (Style of life)

१ स्कन्दगुप्त, पृ० २५।
२ वही, पृ० ४०।

उन्मुत हुई है। अन्तगोगत्वा स्कन्द नाक और हूणों को परास्त करता है। उसका पराक्रम देखकर दवसना और विजया उसके प्रेम म फस जाती हैं। ज म के लिए प्राणो का उत्सग करने वाल स्व न जस प्रभावी व्यक्ति पर दो युवतिया का प्रेम हो जाना मनोविज्ञान की दष्टि स स्वाभाविक घटना है।

द्वितीय अक

निप्रा-तट कुज म देवसना और विजया म वातालाप हो रहा है। देवसना विजया स कहती है पवित्रता का माप है मलिनता सुख का आलोचक है दुःख, पुण्य की कसौटी है पाप। विजया ! आकाश क सुदर नक्षत्र आंखा स केवल देखे ही जाते हैं वे कुमुम कामल हैं कि वज्र-कठोर कौन कह सकता है।[1] दवसेना के मन म द्वन्द्व चल रहा है जिसम चतन अचेतन क असामजस्य का प्रतिबिम्ब दिखाइ दता है। दूसरी ओर स्कन्दगुप्त क मन म उदासीनता मँडरा रही है। वह चक्रपालित स कहता है नही चक्र ! अश्वमघ-पराक्रम स्वर्गीय सम्राट कुमारगुप्त का आसन मरे योग्य नही चाहता मुझ सिंहासन नहा चाहिए। पुरगुप्त को रहन दा। मेरा अकेला जीवन है। मुझ[2] इसस उसम आत्महीनता ग्रथि ने कितना प्रभाव जमाया है इसकी जानकारी मिलती है। किसी एक मठ म प्रपचबुद्धि और भटाक दोना न शवनाग को अपने षड यन्त्र म फँसाकर महादेवी दवकी की हत्या की आयोजना की है। उन्हाने शव नाग के द्वारा दवकी की हत्या करन का जाल रचा है। राजमन्दिर के बाहरी भाग म मदिरोन्मत्त शवनाग दवकी की हत्या के लिए प्रस्तुत हाता है। पर उसकी पत्नी रामा उस इस घणित कुकम का रोकती है। रक्त-पिपासु ! क्रूरकमा-मनुष्य ! कृतघ्नता की कीच का कीडा। नरक की दुग ध ! इन तीखे शब्दा म वह अपन पति की-शवनाग की भत्सना करती है। शवनाग उस सोना और सम्मान का लालच दिलाता है परिक वह कुछ एक मानती नहा है। अपन अचतन मन म भी वह महादवी का अकल्याण नही चाहती है। (यह देखकर कि) वह अपन निश्चय पर अटल है शवनाग उस पकड कर मारना चाहता है परन्तु वह शीघ्रता स हाथ छुडाकर भाग जाती है। इतने म भटाक और प्रपचबुद्धि वहाँ उपस्थित हात हैं। रामा बन्दी गह म जाकर महादेवी दवकी को सभी बाता की जानकारी देती है। थाडी दर म अनन्त देवी के साथ शवनाग और भटाक वहा आ जाते हैं। प्रपचबुद्धि शवनाग को आग बढाकर अपना ईप्सित साध्य करन का आदेश दता है। इस अवसर पर

१ स्कन्दगुप्त, पृ० ४५
२ वही, पृ० ४७

रामा स्वय छुरी निकालकर प्रतिरोध करती है। तब देवकी रामा से कहती है, "शान्त हो रामा ! देवकी अपने रक्त के बदले और किसी का रक्त नही गिराना चाहती है। चल र रक्त के प्यासे कुत्ते ! चल, अपना काम कर।"[1] देवकी एक आदर्श भारतीय नारी है। वह प्राणो व प्रण मे जीवनोत्सर्ग के लिए उद्यत हो जाती है। अपन आदर्शों से पल भर भी विचलित नही होती है। शर्वनाग रामा के दूर न हटने पर पहले उस पर ही प्रहार करने को प्रवृत्त होता है। इतने मे किवाड तोडकर स्कन्द भीतर घुस आता है। आते ही शर्वनाग की गर्दन दबाकर उसकी तलवार छीन लेता है। यहा भटार्क और स्कन्द के द्वन्द्व युद्ध म भटार्क घायल होकर गिरता है। तब वहाँ उपस्थित रही अनन्तदेवी विवश होकर स्कन्द स कहती है 'स्कन्द ! फिर भी मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हू।'[2] यहाँ उसका चरित्रगत दौर्बल्य प्रस्फुटित होता है। ऐसी अवस्था म भी स्कन्द अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह पूर्णरूपेण करता है। व ध वर्मा मालव का राज्य स्कन्दगुप्त को सौंप देना चाहता है। भटार्क की मा भटार्क क हीन कृत्य पर उद्विग्न है। विजया भी वहा आ जाती है और भटार्क के प्रेम म मशगूल हो जाती है। उसकी इस क्रिया म इड की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। ऐश्वर्य म पली विलास को ही सब कुछ समझने वाली विजया स्कन्द के आकांक्षा हीन जीवन की पत्नी नही बनना चाहती। शीघ्र ही उसके सामने चक्रपालित की मूर्ति आ जाती है। पर वह उसकी पहुच के बाहर है, अत उस भुलाकर फिर भटार्क की ओर आकर्षित हो जाती है। विजया का प्रेम भावना के मूल मे रूप एव ऐश्वर्य मोह है। उसम अस्थिरता एव अविवेक की प्रधानता है। विजया आवेग-प्रधान एव नियन्त्रण हीन पात्र है।[3] अर्थात उसम फ्रायड प्रगति लिबिडो की अभिव्यक्ति है। इस अक क अन्त म स्कन्दगुप्त और गोविन्दगुप्त का मिलन होता है। जयमाला और देवसेना वहाँ आती हैं। जयमाला स्कन्दगुप्त का सिंहासन पर बिठाने की इच्छा प्रदर्शित करती है। गोविन्दगुप्त और बन्धु वर्मा हाथ पकडकर स्कन्दगुप्त को सिंहासन पर बठाते हैं। अन्त में स्कन्द महादेवी देवकी की इच्छानुसार शर्वनाग, भटार्क, विजया और कमला आदि सभी को बन्दी स मुक्त कर देता है। स्कन्द के इस स्वभाव म रैंक प्रगति औसत प्रकार का व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है जो सदव समझौते की

---

१ स्कन्दगुप्त, पृ० ६२

२ वही, पृ० ६३

३ डॉ० निरूपमा पोटा प्रसाद क नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० ११८

चतुर्थ अक

विजया अनन्तदवी स अपमानित होकर नवनाग से मिलती है। भटार्क नतकी के साथ नाचरग म डूब गया है। भटार्क के तीखे न्दो को सुनकर भय और चिता के मारे स्कन्द की माता देवकी की अकस्मात मत्यु होती है। भटार्क की माँ कमला पुत्र की भत्सना करती है। आखिर वह अपनी मा से क्षमा मागता है और शस्त्रत्याग करता है। उसमे स्थानान्तरण हो जाता है। इस अक के अतिम दश्य म स्कन्दगुप्त विचित्र अवस्था म प्रवेश कर कहता है 'बौद्धो का निर्वाण योगियो की सम धी और पागलो की सी सम्पूण विस्मति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है, और उत्तर मे जसे कोई कहता है कि तू खिलौना है—उसी खिलवाडी वटपत्रशायी बालक के हाथो का खिलौना है तेरा मुकुट श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ है।'[1] यहाँ स्कन्द का दुहरा व्यक्तित्व दिखाई दता है जिसमे हीनता ग्रथि का प्राबल्य है। इसीलिए डा० गणेशदत्त गौड ने कहा है स्कन्दगुप्त का दोहरा व्यक्तित्व तो मनोवनानिक कसौटी पर खरा उतरता है। उसकी चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर म कोई कहता है कि तू खिलौना है। इसी द्वित्व के तान वान से उसका चरित्र निर्मित है।[2]

पचम अक

विदूषक को मुदगल मे सभी परिस्थितियो का नान होता है। विजया और भटार्क की मन स्थितियो म आमूलाग्र परिवतन हो जाता है। स्कन्द दव सेना से मिलता है। स्कन्द अपना ममत्व उस अर्पित कर उऋण होना चाहता है पर दवसेना उससे कहती है 'सा न होगा सम्राट! मैं दासी हूँ! मालव न जो दश के लिए उत्सग किया है उसका प्रतिपादन लेकर म उस महत्त्व को कलकित न करूँगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूँगी परन्तु आपके प्राप्य म भाग न लूँगी।' यहा देवसेना के हीनत्व कुण्ठा की जागति हुई है। इसी कारण वह हीन भाव मे स्वय को दासी कहलवाती है। इसके बाद स्कन्द आजीवन कुमार रहने की प्रतिज्ञा करता है। इसी कारण वह विजया स दूर रहता है। विजया मनोग्रस्तता के द्वन्द्व म आत्महत्या कर लेती है। स्कन्द का पुन पूर्णा

---

१ स्कन्दगुप्त पृ० १२३

२ डा० गणेशदत्त गौड आधुनिक नाटको का मनोवनानिक अध्ययन पृ० १८१

३ स्कन्दगुप्त पृ० १३४

से संघर्ष होता है । हूणों की हार हो जाती है । अन्तिम दृश्य में पुरगुप्त को रक्त का टीका लगाकर युवराज बनाने की घोषणा करते हुए कहता है इसकी मर्यादा जन्मभूमि की रक्षा न हो ।[1] स्कन्द का निष्काम कर्मयोग भूलने से भी भुलाया नहीं जाता है । अन्तिम अंक के अन्तिम दृश्य में देवसेना स्कन्दगुप्त से विदा लेती है । उन दोनों के संवादों में संचित मौन व्यथा उमड़ पड़ती है । वह है—पवित्र प्रेम का उद्दाम मधुर एवं मनोरम आविष्कार ।

स्कन्दगुप्त के प्रधान पात्रों में से अधिकांश पात्र शुद्ध ऐतिहासिक हैं । इस योजना में प्रसाद को पर्याप्त सफलता मिली है । उनके पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व और चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिकता सराहनीय है । इस नाटक का नायक स्कन्दगुप्त हमारे मानस लोक में अमर हो उठता है जिसकी कर्मवीरता उदारता उदासीनता स्वाभाविक है । डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में सम्पूर्ण नाटक में उसका व्यक्तित्व प्रधान है । अन्य सभी पात्र उसके साथ चलते साथ विरत होते हैं । अथवा उसके चरित्र से प्रभावित रहते हैं ।[2] स्कन्द के जीवन में अधिकार की मादकता रही है । आपादन की रक्षा का वह एकमात्र आधार है । उसमें कहीं कहीं हीनता ग्रंथि दिखाई देती है पर आत्मनियन्त्रण उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू है । वह अपने आदर्शों तथा मान्यता के अनुसार कार्य करने लगता है जिसमें विषयक इच्छा का प्राबल्य है । देवसेना की भावुकता तथा मूक आत्म समर्पण ध्यान देने लायक है । स्कन्द को वह प्रेम देती है, पर कुछ लेना नहीं चाहती । वह पर्णदत्त के साथ भीख माँगती है—अपने लिए नहीं—साम्राज्य के लिए । स्कन्द को विकृत देखकर उसे वह उस जीवन के प्राप्य कहता है यह इसकी विशिष्टता है । उसका आदर्श अहम (L_oo) एवं नैतिकता (Super Ego) प्रबल था ।[3] गुप्त साम्राज्य का प्रमुख सेनापति पर्णदत्त है जो सच्चा युद्धवीर और सच्चा राजभक्त है । देश की दुर्दशा देखकर देवसेना के साथ भीख माँगने वक्त विक्रमादित्य सरीखे उस वीर मिलते हैं । धर्मभावना का उज्ज्वल स्वरूप व बुधमा में दिखाई देता है । भावना का अपना कर्म ग्रंथ का ज्यादा महत्व देने वाली जयमाला दो चार स्थलों पर आती है जो युद्ध का गान सुनाती हैं और दुर्ग रक्षा का भार स्वयं ले लेती है ।

---

1. स्कन्दगुप्त पृ० १६६
2. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन षष्ठा वृत्ति पृ० ९७
3. डा० निरुपमा पाठक प्रसाद के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० १५८

उसका धैर्य एवं मानसिक सतुलनात्मकता द्रष्टव्य है । पडयन्त्रपट भटार्क महत्त्वाकांक्षी एवं कुकर्मी है । साम्राज्य की सेवा करने का उसका व्रत स्कंद गुप्त के साथ धोखा देना है और बाद में माता की भर्त्सना पाकर स्कद की शरण में आ जाता है । प्रायश्चित के लिए वह स्वय गुरुकुली करने लगता है, पर इस वक्त उसे स्कन्द की आज्ञा निरावद्य मानकर उसका सहयोगी बनना पडता है । यह इसका प्रत्यावर्तन भय और मंगलमय है । मालव के धनकुबेर की कन्या विजया चचल और अस्थिर वृत्ति की है । उसमें लिबिडो एवं इड की प्रधानता है । महादेवी देवकी यह राजमाता है । उनका द्वेष करने वाली अनन्तदेवी षडयन्त्रपटु बन जाती है । पुरगुप्त को सिंहासन पर बिठाने के लिए वह अत्यन्त कटु और कठोर बन जाती है । उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को लेकर डा० पोटा ने कहा है 'आदिम भावना की तुष्टि किसी भी प्रकार हो यही मानव की मूल प्रवृत्ति रही है । जिन व्यक्तियों का नैतिक मन प्रबल होता है वे उन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण कर पाते हैं, परन्तु उनके विवेक बुद्धि नहीं होती व लिबिडो के प्रभाव में बह जाते हैं । अनन्तदेवी की भी वही स्थिति है । वह अपनी मूल भावना की पूर्ति चाहती है । और इस उद्देश्य बुन में खण्ड प्रलय तक देखना चाहती है । यह प्रतीत होता है कि वह राजा कुमारगुप्त से सतुष्ट न थी और उसकी क्षतिपूर्ति अपने पुत्र पुरगुप्त युवराज बनाकर करना चाहती थी । अनन्तदेवी में मिथ्या अहम की प्रधानता है ।'[1] शर्वनाग का लालच और रामा का कर्तव्य कुछ द्वन्द्वात्मक है । सारा, स्कन्द, पर्णदत्त, बन्धुवर्मा, देवसेना और पाना के सामने एक लक्ष्य है और अनन्तदेवी, भटार्क, पुरगुप्त आदि उसका विरोध करते हैं पर अन्त में हृदय परिवर्तन होकर प्रसादान्त हो जाते हैं ।

स्कन्दगुप्त के संवादों में कवित्व तथा दार्शनिकता का प्राधान्य है । कुछ संवादों में क्षोभ का उग्रतम रूप भी दिखायी देता है । ओजपूर्ण और स्फूर्तिमय सवादों की भी इसमें प्रचुरता है । डा० दशरथ सिंह के शब्दों में 'इस प्रकार हम देखते हैं कि स्कन्द गुप्त' में कथोपकथन मर्यादोचित, मानवोचित शिष्टतापूर्ण ढंग से आगे बढ़ता है और हम इतने में ही स्कन्द गुप्त की सरलता शिष्टता मानवीय, व्यवहार पटुता आदि उसके गुणों से परिचित हो जाते हैं ।[2]

१ डा० निरुपमा पोटा प्रसाद के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० १४०

२ डा० दशरथ सिंह हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, प्रथम संस्करण पृ० १११

कई पात्रों के संवादों में मनोवैज्ञानिक शैली की पुष्टि मिलती है। यथा–
विजया—यह क्या राजकुमारी ! युवराज तो उदासीन हैं।
देवसेना—हाँ विजया युवराज की मानसिक अवस्था कुछ बदली हुई है।
विजया—दुर्बलता इन्हें राज्य से हटा रही है।
देवसेना—कहीं तुम्हारा सोचा हुआ युवराज के महत्व का परदा तो नहीं हट रहा है ? क्या विजया ! प्रभव का अभाव तुम्हें खटकने तो नहीं लगा ?
विजया—राजकुमारी ! तुम तो निदय वाक्य बाणों का प्रयोग कर रही हो !
देवसेना—नहीं विजया बात ऐसी नहीं है। धनवानों के हाथ में माप ही एक है यह विद्या सौन्दर्य बल पवित्रता और तो क्या हृदय भी उसी से मापते हैं। वह माप है–उनका ऐश्वर्य।[1]

उपर्युक्त कथोपकथन से स्कन्द के अचेतन मन के द्वन्द्व की जानकारी मिलती है और साथ ही साथ देवसेना का मानसिक सन्तुलनात्मक भाव एवं विजया की नियन्त्रण हीनता विदित होती है।

'स्कन्द गुप्त' की भाषा में काव्यात्मकता संस्कृत प्रचुरता एवं अलंकार की प्रवृत्ति मिलती है। इस नाटक के सभी पात्रों की भाषा एक सी का व्यमय है। प्रसाद ने कई जगहों पर मनोविश्लेषणात्मक शैली का यथार्थ निर्वाह किया है। इससे पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व की सुस्पष्ट जानकारी मिलती है। प्रसाद पहले कवि थे बाद में सब कुछ। इसी कारण उनकी भाषा में अलंकार का समावेश सरलता के साथ हो गया है। जैसे–

(१) आपकी वीरता की लेखमाला शिप्रा और सिंधु की लोल लहरियों से लिखी जाती है।

(२) यह भूकम्प के समान हृदय को हिला देने वाला कौन व्यक्ति है ?

(३) गुप्त साम्राज्य के हीरा के से उज्ज्वल हृदय वीर युवकों का शुद्ध रक्त सब मरी प्रतिहिंसा राक्षसी के लिए बलि हो ![2]

इस नाटक में विशेष रूप से सम्बन्धित स्थितियों पर लिखी गई कई सूक्तियाँ देती है। उदाहरण के लिये—

(१) अपनी चंचलता को विष वृक्ष का बीज न बना देना।

(२) विश्वास तो कहीं से क्रय नहीं किया जाता।[3]

---

१ स्कन्दगुप्त पृ० ४८
२ वही पृ० क्रमशः ९, २८ ३५
३ वही, पृ० क्रमशः १२, ९९

संस्कृत की समास युक्त पदावली का प्रयोग कई स्थानों पर हो चुका है। जन-विप्लवाग्नयवाण, विश्व प्रहेलिका प्रलय मेघ, नयन जल धारा साम्राज्य ध्वंस इत्यादि।[1]

कतिपय स्थानों पर मुहावरों का सहजता के साथ समावेश हुआ है। कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं--गोवर गणेश देवता कूच कर जाना आँखें फाडकर देखना आपा खो जाना कलेजा कँपा देना, घाव पर नमक छिडकना, दाँत पीसकर रहना, लोहा मानना।[2]

समग्रालोचन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि फ्रायड प्रणीत मनोविश्लेषण का इस नाट्यकृति पर गहरा प्रभाव है। इड, हीनता ग्रंथि मानसिक नियतिवादिता मनोग्रस्तता आदि मनोवैज्ञानिक उपसिद्धान्तों का स्कन्दगुप्त में सफलता के साथ चित्रण हुआ है।

चन्द्रगुप्त

प्रसाद जी के प्रौढ नाटकों में चन्द्रगुप्त का एक विशेष स्थान है। इसमें उन्होंने अपने ऐतिहासिक अन्वेषण से प्राप्त सामग्री का प्रयोग कर ऐतिहासिक एवं काव्यात्मक नाटक की रचना की है। इस नाटक में मनोविज्ञान के कई तथ्य प्रभावी रूप में आविष्कृत हुए हैं।

प्रथम अंक

तक्षशिला के गुरुकुल में गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर चाणक्य तथा उसके दो शिष्य चन्द्रगुप्त तथा सिंहरण गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिये निकलते हैं। तीनों के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि पश्चिमोत्तर सीमा की राजनीतिक अवस्था चिन्ताप्रद है। इसी वार्तालाप के बीच आम्भीक तथा अल्का का प्रवेश होता है। आम्भीक तथा सिंहरण के बीच कटु वार्ता हो जाती है। सिंहरण आम्भीक से कहता है कि गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं। यहाँ प्रसाद जी ने गुरु शिष्य की मर्यादा का आदर्श चित्रित किया है। अपनी शिक्षा की परख देते हुए चन्द्रगुप्त चाणक्य से कहता है 'आर्य! संसार-भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा कि आत्म-सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।'[3] चन्द्रगुप्त के इस संभाषण में आत्म विश्वासपूर्ण प्रभावी व्यक्तित्व की जानकारी मिलती है। आम्भीक और पर्वतेश्वर में विरोध होने के

---

१ स्कन्दगुप्त पृ० क्रम। २७ २९, ६९, ८०, ८७

२ वही पृ० क्रमश ३१, ३१ ५७ ६७ ६९, ९२ ९४, ९६

३ जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त, सोलहवीं आवृत्ति, पृ० ५०

होती है। अलका उस फँसा कर चपत हा जाती है। वहा चाणक्य और चन्द्रगुप्त आ जाते हैं। इराफार से सेल्यूकस व्याघ्र से चन्द्रगुप्त की रक्षा करता है। इस अक के अन्त म सिधु तट पर दाण्डयायन के आश्रम म एनिसाक्रीटीज अलका, चन्द्रगुप्त चाणक्य, सल्यूकस आदि सभी इकट्ठे होते हैं। उस समय सिकन्दर को सम्बोधित कर दाण्डयायन कहता है, "अलक्षेद्र सावधान ! (चन्द्रगुप्त को दिखाकर) देखो, यह भारत का भावी सम्राट तुम्हारे सामने बैठा है"[1] दाण्डयायन को प्रतिभ ज्ञान से भविष्य की ज्ञानोपलब्धि होती है, जिसमे गस्टाल्ट मनोविज्ञान के कुछ पहलू दृष्टिगोचर होते हैं।

द्वितीय अक

उद्भाड म सिन्धु के किनारे यवन-शिविर म बैठी कार्नेलिया को चन्द्रगुप्त फिलिप्स के कामजन्य आक्रमण से बचाता है। चन्द्रगुप्त के प्रथम दर्शन से ही कार्नेलिया उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। (Love at fi st sight) वह चन्द्रगुप्त के प्रस्थान के बाद अपने आत्म-कथन म कहती है वह भी आह कितना आकर्षक है ! कितना तरग सकुल है ! इसी चन्द्रगुप्त के लिए न उस साधु न भविष्यवाणी की है—भारत-सम्राट होने की ! उसम कितनी विनयशील वीरता है।"[2] कार्नेलिया का इस भारतीय युवक चन्द्रगुप्त के आकर्षण के रूप म व्यक्त होना है। दाण्डयायन के आश्रम म प्रथम दर्शन के समय ही इस जनित प्रीति उसकी आँखो मे उतरने लगती है।[3] झेलम तट वन पथ म चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका भविष्य के बारे म कुछ आयोजन कर रहे हैं। गाधार नरेश के साथ सिंहरण भी वहाँ आ जाता है। चाणक्य सिंहरण स कहता है "पौधे अधकार म बढ्ते है और मेरी नीतिलता भी उसी भाति विपत्तितम म लहकती होगी। हाँ, केवल शौर्य से काम नही चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्धि देखता है साधन चाहे कैसे ही हो। बोलो तुम लोग प्रस्तुत हो ? यहाँ चाणक्य सिंहरण को प्ररणा देता है, जो मनोविज्ञान की दृष्टि स अतीव महत्त्वपूर्ण घटना है आभीक की घूसखोरी के कारण आखिर सिकन्दर और पर्वतेश्वर की पराजय होती है। इस समय पर्वतेश्वर और सिकन्दर के बीच हुआ वार्तालाप ध्यान देने लायक है।

सिकन्दर—अब म तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ ?

पर्वतेश्वर—जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है सिकन्दर ![5]

---

१ चन्द्रगुप्त, पृ० ८७
२ वही, पृ० ९१
३ डा निरुपमा पोटा प्रसाद के नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० १३१
४ वही पृ० १७
५ चन्द्रगुप्त, पृ० १०३

स अपन दश प्रस्थान करता है। बाद मे राक्षस को चाणक्य की धूतता विदित होती है। पर 'अब पछतावे होत क्या जब चिडियाँ चुग गइ खेत' ऐसी उसकी अवस्था हो जाती है। वह सजल्द मगधि की ओर रवाना हो जाता है। न द के दुष्ट हाथो से सुहासिनी की मुक्ति कराता है। सुवासिनी का चरित्र उज्ज्वल है। राक्षस ही उसके जीवन का स्तर सवस्व है। उसके लिये वह स्वग भी जाना चाहती है। थोडी देर बाद चाणक्य मालविका को राक्षस की मुद्रा एव पत्र देकर उस न द की ओर भेज देता है। वह पत्र दखते ही न द क्रोधाय मान हा उठता है। राक्षस और सुवासिनी को तुर त ब दी बनाकर लान का आदश दता है। फिलिप्स को द्व द्व-युद्ध म मारकर च द्रगुप्त भी मगधि आ जाता है। न द के आदेशानुसार राक्षस, सुवासिनी एव मालविका को भी ब न्दी किया जाता है। न द के अत्याचार के कारण सभी नागरिक सतप्त हो चुके है। वे न द से उचित याय माग रह हैं। चाणक्य भी इसी अवसर पर न द पर कई अभियोग लगाता है। इतने म प्रतिशोध की तीव्र भावना स नकटार छआ निकालकर न द की हत्या करता है। राक्षस सुवासिनी एव मालविका की मुक्ति होती है। च द्रगुप्त का सम्राट क रूप म अभिषेक हाता है। इन सभी घटनाओ के पीछे प्रमुख सूत्रधार है चाणक्य। उसकी अग्रदर्शी प्रेरणा शक्ति सराहनीय है।

चतुथ अक

कल्याणी द्वारा पवतेश्वर का वध होता है। निराइत एव मनोग्रस्तावस्था म कल्याणी भी स्वय आत्महत्या कर लेती है। आमतौर पर च द्रगुप्त का माग निष्कटक हो जाता है। दूसरी ओर सुवासिनी के अ तमन म द्व द्व चल रहा है। वह एक समय राक्षस के लिये स्वग भी जाना चाहती थी, पर अब वह उससे घणा कर रही है। इसी कारण वह राक्षस से कहती है 'अब पिताजी की अनुमति आवश्यक हो गई है।'[1] उसके इस परिवतन का एक कारण है चाणक्य के प्रति उसका आकपण और दूसरा है राक्षस का किया हुआ राजद्रोह। बचे चाणक्य का सुवासिनी से बाल्य परिचय है। इन सभी कारणो का परिपाक है उसके इड और इगो का सघप। चाणक्य की आज्ञा के कारण विजयोत्सव नही मनाया जा रहा है जिससे च द्रगुप्त क माता पिता रुष्ट होकर चले जाते हैं। इस अक के एक दश्य म च द्रगुप्त मालविका क सम्मुख अपना हृदय खोलकर दिखाता है। वह मालविका स कहता है, सघप! युद्ध देखना चाहो तो मरा हृदय फाडकर देखा मालविका! आगा

1 च द्रगुप्त, प० १६१

निर्भीकता उदारता स्पष्टवादिता, कृतज्ञता आदि मौलिक गुण मौजूद हैं। पराक्रम एव साहस का वह एक आदर्श नमूना है। उसके काय के मूल म चाणक्य की प्रेरणा, जिसके कारण वह किसी भी आपत्ति म नतिकाह की रक्षा करता है। गणेशदत्त गौड के शब्दा म 'च द्रगुप्त म मनस्तत्ववेत्ता चाणक्य की प्रतिभा का आलोक सव यापी है। मनोवनानिक दृष्टि म चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व चाणक्य से भिन्न प्रतीत नही होता। ऐसा ज्ञात होता है कि चन्द्र गुप्त केवल चाणक्य के व्यक्तित्व का बहिमु खी अर्थात क्रियान्वित रूप है।[1] पर हम यहाँ डा० गौड के मत से सहमत नही हैं। क्योकि चाणक्य और चन्द्रगुप्त इन दोनों का व्यक्तित्व एक दूसरे स भिन्न है। भले ही दोनो का ध्येय एव हो, पर माग भिन्न हैं। प्रेरकीय मनोविज्ञान की दृष्टि से चन्द्रगुप्त के काय को प्रारम्भ या सपन्न करने की प्रेरणा चाणक्य स मिलती है। चाणक्य के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा न कहा है 'उसकी नीति है कि जब तक कोई काय व्यापार चलता रहे, तत्सम्बन्धी रहस्य और भेद की बात किसी को ज्ञात न हो। कष्ट और विपत्तियो से तो तनिक भी उद्विग्न और भयभीत नही होता। जितने अधिक से अधिक उग्र संघर्षों म वह पडता है उसकी बुद्धि उतनी ही कायतत्पर हो उठती है उसकी नीति लता विपत्ति तम म लहलहाती है और वह सिद्धि देखता है साधन नही। उसे अपना स्वाथ पूर्ण करना ही अभीष्ट रहता है किन उपायो और उपादानो से पूर्ण करना होगा इसकी कुछ चिन्ता नही करता।'[2] काय के प्रति आत्म विश्वास यही उसके यश का रहस्य है। सिंहरण एक सच्चा वीर है जो यवनो के विरुद्ध तन मन धन से लडता है। नन्द आवेग प्रधान, कामुक एव विलासी पात्र है। नन्द का आमात्य राक्षस एक प्रवाह पतित पात्र है। कार्नेलिया भारतीय सस्कृति स प्रभावित व्यक्ति रेखा है जो अपने प्रेम के साथ आजीवन एकनिष्ठ रहने की कोशिश करती है। कल्याणी अलका, मालविका एव सुहा सिनी का नारी मनोविज्ञान की दृष्टि से सफल चित्रण हुआ है।

चन्द्रगुप्त के कथोपकथन छोटे एव मनोवनानिक हैं। इनसे कथानक को गति मिलकर पात्रो के चरित्रो पर प्रकाश पडता है। उनमे बौद्धिकता एव वाग्वदग्ध्य भी है। उदाहरण के लिए—

---

१ डा० गणेशदत्त गौड आधुनिक नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० १७२

२ डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, षष्ठावृत्ति पृ० १६०

फिलिप्स– कुमारी ! प्रणय के सम्मुख क्या साम्राज्य तुच्छ है ?
कार्नेलिया–यदि प्रणय हो ।
फिलिप्स– प्रणय तो मेरा हृदय पहचानता है ।
कार्नेलिया–(हँसकर) ओ हो ! यह तो बड़ी विचित्र बात है ।
फिलिप्स– कुमारी क्या तुम मेरे प्रेम की हँसी उड़ाती हो ?
कार्नेलिया–नहीं सेनापति ! तुम्हारा उत्कृष्ट प्रेम बड़ा भयानक होगा, उससे तो डरना चाहिए ।
फिलिप्स– (कुछ सोचकर)–कुमारी ! न जाने फिर कब दर्शन हों, इसलिए एक बार इन कोमल करों को चूमने की आज्ञा दो ।
कार्नेलिया–तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स ।
फिलिप्स– प्राण देकर भी नहीं कुमारी ! परन्तु प्रेम अन्धा है ।
कार्नेलिया–तुम अपने अन्धेपन से दूसरे को ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स ।[1]

उपर्युक्त कथोपकथन में नाटककार ने सहृदयावस्था का अत्युत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है । कार्नेलिया ग्रीक नारी होते हुए भी भारतीय संस्कृति के साथ एकरूप हो चुकी है । वह अपने प्रेम का ओछा प्रदर्शन दिखाना नहीं चाहती है । उसके अचेतन मन में भी हल्की सी प्रेम की उमंग प्रस्फुटित नहीं होती क्योंकि उसने सिर्फ चन्द्रगुप्त को ही अपना प्रेम अर्पित किया है । इसीलिए फिलिप्स के साथ एकान्त में भी सहृदोधावस्था की विस्मृति नहीं होती है ।

काव्यात्मक शैली यह इस नाटक की खासियत है । इसकी भाषा में भावों के अनुरूप कलात्मकता संयम सजीवता एवं प्रवाह है । सहजता से रूप प्रयुक्त हुए अलंकार इस नाटक के काव्य सौन्दर्य को बढ़ाते हैं । जैसे–

(१) चपला रणलक्ष्मी इन्द्रधनुष-सी विजयमाला हाथ में लिये उस सुन्दर नीललोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-हृदय मयूर से नाचेंगे ।
(२) तारा से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश-जैसे कोई विराट गणितज्ञ निभृत में रेखागणित की समस्या सिद्ध करने के लिये बिन्दु दे रहा है ।
(४) मेरे जीवन के दो स्वप्न थे–दुर्दिन के बाद आकाश के नक्षत्र विलास सी चन्द्रगुप्त की छवि और पर्वतेश्वर से प्रतिशोध, किन्तु मगध की

१ चन्द्रगुप्त, पृ० ९०

राजकुमारी आज अपन ही उपवन म वदिनी है ।[१]

इस नाटक के शब्द भण्डार म कई सस्कृत प्रचुर श द दिखाई देते हैं। उदाहरण के तौर पर मूर्धाभिषिक्त दण्डनीति लोक विश्रुत अनुग्रहीत यशो मन्दिर धरोहर दिग्दाह अन्यथा[२] इत्यादि ।

इस नाटक म महावरो का यथोचित प्रयोग हो चुका है जिसमे पात्रो की मनोदशा पर प्रकाश पडता है। यथा–चूर चूर हो जाना सिर खपाना पुल बँधना तिल तिल कट जाना तिलमिला जाना चगुल म फसना दम तोडना दम घुटना पैरोतले कुचलना अग्नि म घी डालना इधर खाइ उधर पवत ।[३]

मनोभावो स युक्त बहुविध सूक्तियाँ इस नाटक की विशेषता का अग हैं। जसे–

(१) आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।
(२) जिसका जो माग है उस पर वह चलेगा ।
(३) विजय-तृष्णा का अन्त पराभव म होता है।
(४) स्वच्छ हृदय भीरु कायरो की सी वचक शिष्टता नही जानता ।
(५) मनुष्य अपनी दुबलता स भली भाँति परिचित रहता है।
(६) स्मृति जीवन का पुरस्कार है।
(७) किन्तु अवसर पर एक क्षण का विलम्ब असफलता का प्रवतक हो जाता है ।
(८) उत्पीडन की चिनगारी को अत्याचारी अपने ही अचल म छिपाए रहता है।
(९) नियति सम्राटो से प्रबल है।
(१०) महत्वाकाक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी मे रहता है।
(११) जो काय बिना किसी आडम्बर के हो जाय वही तो अच्छा है।
(१२) विजया की सीमा है परन्तु अभिलाषाओ की नही ।
(१३) निग्रह करना ही महापुरुषो का स्वभाव है।
(१४) अधिक हष अधिक उन्नति के बाद ही तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है।
(१५) मनुष्य साधारणधर्मा पशु है विचारशील होने से मनुष्य होता है

१ चन्द्रगुप्त प० क्रमश ५१, ११५ १५८
२ चन्द्रगुप्त प० क्रमश ६७ ७३, ७८ ८३ १२४ १३८ १४२ १८२
३ चन्द्रगुप्त पृ० क्रमश ७३, ७४ ७६ ७७ ८०, १२१, १४३, १४३ १४८ १८२, १८४

और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।[1]

(१६) महत्त्वाकांक्षा के दाव पर मनुष्यता सर्व हारी है।

(१७) या तो मूर्खों की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है।[2]

निष्कर्ष के तौर पर कहा जाता है कि फ्रायड एवं एडलर की विचार धारा से प्रेरणा प्राप्त कर नाटककार ने कई मनोवैज्ञानिक एवं सजीव पात्रों का निर्माण किया है।

ध्रुवस्वामिनी

जयशंकर प्रसाद ने बड़े आकर्षक एवं प्रभावी ढंग से ध्रुवस्वामिनी की रचना की है। ध्रुवस्वामिनी की विषय वस्तु ऐतिहासिक होते हुए भी नाटककार ने उसमें नारी समस्या का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है।

प्रथम अंक

शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी प्रवेश करती है। उसके पीछे पीछे एक लम्बी और कुरूप स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिए आती है। खड्गधारिणी कुछ बोल नहीं पाती है ऐसा देखकर ध्रुवस्वामिनी कहती है "तो क्या तुम मूक हो ? तुम कुछ बोल न सको मेरी बातों का उत्तर भी न दो इसीलिए तुम मेरी सेवा में नियुक्त की गई हो ? यह असत्य है। इस राजकुल में एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा क्या ? जिधर देखो कुबड़े बौने, हिजड़े गूंगे और बहरे।"[1] इस आत्मनिवेदन से विदित होता है कि ध्रुवस्वामिनी में मानसिक नियतिवाद अज्ञात मन में प्रविष्ट हो रहा है। इस प्रकार नियतिवाद से प्रेरित जीवन में ऐसी घटनाएँ उपस्थित होती हैं जिनकी कभी कल्पनाएँ भी नहीं की जा सकती। यहाँ ध्रुवस्वामिनी का कोई आन्तरिक प्रबल आवेग उसकी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवश कर रहा है। खड्गधारिणी उससे कहती है कि प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होते। इसके बाद वह ध्रुवस्वामिनी को कुमार चन्द्रगुप्त की याद दिलाता है। क्योंकि ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त के स्थान पर रामगुप्त के साथ अनिच्छापूर्वक ब्याह दी जाती है। रामगुप्त शासन भार के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में सर्वथा असमर्थ तथा भोगविलास में सर्वग्रस्त रहता है। इसी कारण ध्रुवस्वामिनी को एक उपेक्षित तिरस्कृत एवं असंतृप्त जीवन व्यतीत करना पड़ा है। थोड़ी देर में प्रतिहारी से विदित होता है कि शकों ने किसी पहाड़ी

---

१ चन्द्रगुप्त पृ० क्रमशः ५०, ५१, ८७, १२९, १३१, १४१, १४२, १५२, १५३, १६१, १६३, १६६ १६७, १७२, १७९।

२ वही, पृ० क्रमशः १८८, १९९।

१. जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी, द्वादश आवृत्ति, पृ० १४।

राह म उतरकर नीर का गिरि पथ रोक लिया है। शकराज सधि क लिए ध्रुवस्वामिनी तथा अन्य सामन्त वीरो क लिए स्त्रिया की माँग करता है। शिखर स्वामी और रामगुप्त इस पर विचार करत हैं और राष्ट्ररक्षा के लिए ध्रुवस्वामिनी को शक शिविर म भेजन का विचार निश्चित हो जाता है। इस अनपेक्षित घटना से ध्रुवस्वामिनी का आत्म सम्मान जागत हो उठता है। अचेतन मन म छिपी हुई भावनाएँ प्रदर्शित करती हुई रामगुप्त से कहती है 'निर्लज्ज । मद्यप !! क्लीव !!! ओह तो मरा कोई रक्षक नहा ? (ठहर कर) नही, मैं अपनी रक्षा स्वय करूँगी ! मैं उपहार म दन की वस्तु शीतल मणि नही हूँ। मुझम रक्त की तरल लालिमा है। मरा हृदय उष्ण है और उसम आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।'[1] यहाँ ध्रुवस्वामिनी म स्वाभिमानवश बढ जाता है। उसका दुवल अहम (इगो) जाग्रत होता है। वह आत्महत्या के लिए प्रवृत्त हो जाती है ठीक इसी अवसर पर चन्द्रगुप्त वहाँ उपस्थित होकर उसकी रक्षा करता है। चन्द्रगुप्त उस समझाते हुए कहता है 'दवि, जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रमाद स, क्षणिक आवश से या दुःख की कठिनाइया स उसे नष्ट करना ठाक तो नही। गुप्तकुल लक्ष्मी आज यह छिन्नमस्ता का अवतार किसलिए धारण करना चाहती है।'[2] सत्य स्थिति का ज्ञान होन हो चन्द्रगुप्त अत्यत क्रोधित हो जाता है। कुछ क्षण का पश्चात समस्या का हल ढूँढ लेता है। चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के वश म शकराज से मिलन का निश्चय करता है। रॅक के अनुसार उसम विधायक इच्छा दृष्टिगोचर होती है। चन्द्रगुप्त यहा अपन आदर्शों तथा मान्यता क अनुसार काय करन लगता है।

द्वितीय अक

शकराज के दुग म उसकी प्रेमिका कोमा एक अनोखा आनन्द प्राप्त कर रही है। पर शकराज किसी मानसिक व्यथा क कारण अन्यमनस्क है। इसी लिए वह कोमा स कहता है तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं म डालकर व्यथित नहा करना चाहता। मर सामन जीवन मरण का प्रश्न है।'[3] शकराज क मन म परस्पर विरोधी भावो के घात प्रतिघात का आविष्कार हो रहा है। कोमा प्रणय माग म अपना सवस्व अपण करन वाला एक भावुक, सवेदनशील एव कोमल नारी है। उस शकराज का कम परख है। शकराज

---

१ ध्रुवस्वामिनी पृ० २८।
२ वही, पृ० २९।
३ वही, पृ० ३८।

लिखित शक्ति का पतन हुआ है। ध्रुवस्वामिनी की गत माय हान की बाता आन ही वह पूरा नहा समा रहा है। इस सूनी के उपलक्ष्य म विजया त्सव मनान का आदेश दता है। मनिरा का मन्दिरा पिलाई जाती है। नृत्य गान का आयोजन होता है। कोमा के एक प्रश्न के उत्तर म शकराज कहता है जो विषय न समझ म आए उस पर विवाद न करो।[1] बचारी कोमा चुपचाप बठ जाती है। इतन म आचाय मिहिरदव प्रवश कर शकराज स कहता है राजा! स्त्रियो का स्नेह विश्वास भग कर दना कोमल ततु को ताडन स भी सहज है परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।[2] शकराज अपनी ही धुन म व्यस्त है। वह किसी की एक सुनता नहीं। आखिर अपने कुकर्मों का फल उस अकेले को भुगतना पडता है। स्त्री वश म चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी आती है। मोहवश शकराज दोनो को ही रानी के रूप म स्वीकारना चाहता है। इतने म चन्द्रगुप्त अपना सही रूप प्रकट कर उसे यमसदन भजता है।

तृतीय अक

ध्रुवस्वामिनी दाव दुग के भीतर एक प्रकोष्ठ म चिन्ता म निमग्न बठी है। उसकी स्नेह की मन्दाकिनी उसे बधाई दती है। पुरोहित आकर कहता है कि इस उपद्रव के बाद शान्ति कम होना आवश्यक है। कोमा शकराज का शव ले जाती है किन्तु माग म ही रामगुप्त के सैनिक कोमा और मिहिरदव की भी हत्या कर डालते है। चन्द्रगुप्त मन ही मन ध्रुवस्वामिनी को चाहता है जिसके कारण उसके इगो (अहम) एव सुपर इगो (नतिकाह) म द्वद्व चल रहा है। वह अपन आत्मनिवदन म कहता है विधान की स्याही का एक बिन्दु गिरकर भाग्य लिपि पर कालिमा चढा दता है। मै आज यह स्वीकार करन म भी सकुचित हो रहा हू कि ध्रुवदेवी मेरी है (ठहरकर) हा, वह मेरी है उस मैंने आरम्भ से ही अपना सम्पूण भावना स प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अन्तस्तल स निकली हुई यह एक मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरुष हूँ? नहा मैं अपनी आँखा स अपना वभव और अधिकार दूसरो को अन्याय स छीनते देख रहा हू और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही। नहीं यह शक्ति का कपट मोह और प्रवचना है। मैं जो हू वही तो नहा स्पष्ट रूप स प्रकट कर सका। यह कसी विडम्बना है। विनय के आवरण मे मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी?[3]

१ ध्रुवस्वामिनी पृ० ४३।
२ वही पृ० ४४।
३ वही, पृ० ५७।

इनके बाद सामन्तकुमार आकर ध्रुवस्वामिनी से कहता है 'स्वामिनी आपकी आज्ञा के विरुद्ध राजाधिराज ने निरीह शकों का संहार करवा दिया है।'[1] ध्रुवस्वामिनी से वार्तालाप करता हुआ सामन्त कुमार स्पष्ट रूप से कह देता है, "मैं सच कहता हूँ रामगुप्त जैसे राजपद को कलुषित करने वाले के लिए मेरे हृदय में तनिक भी श्रद्धा नहीं। विजय का उत्साह दिखाने यहाँ वे किस मुँह से आये जो हिंसक, पाखण्डी क्षीब और क्लीव है।'[2] इधर नाटककार ने मनोविज्ञान का विशेष रूप से यौन मनोविज्ञान का सम्यक् परिचय दिलाया है। ध्रुवस्वामिनी में इसी कारण आमूलाग्र परिवर्तन हो जाता है। उसके आन्तरिक द्वन्द्व का मार्गान्तरीकरण हो जाता है। रामगुप्त की विनाशकाले विपरीत बुद्धि होती है। चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी प्रभृति को बन्दी बनाने का रामगुप्त का आदेश क्षणभंगुर का होता है। पुरोहित परिषद् में स्पष्ट रूप से कह देता है 'विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं' यह भाष्य सुनकर रामगुप्त हतबल हो जाता है। यह हेत्वारोपण उसे असह्य हो जाता है। मनोग्रस्तावस्था में चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँचकर उसे कटार निकालकर मारना चाहता है इतने में वही चन्द्रगुप्त का शिकार बनता है। चन्द्रगुप्त राजाधिराज और ध्रुवस्वामिनी महादेवी पद को प्राप्त करती है।

ध्रुवस्वामिनी का नायक चन्द्रगुप्त है। कुलमर्यादा की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग देने को उद्यत है। रेंक की व्यक्तित्व की परिभाषा के अनुसार चन्द्रगुप्त सृजनात्मक व्यक्तित्व का परिचायक है। क्योंकि वह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर अंतिम सफलता प्राप्त करता है। रामगुप्त पुरुषार्थ विहीन पात्र है। शिखर स्वामी के सिवा वह कुछ भी नहीं कर पाता है। शकराज काम विकृत पीडाजन्य पात्र है। ध्रुवस्वामिनी में सहनशीलता होते हुए भी वह रामगुप्त के अत्याचार की भर्त्सना करती है। जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी का

१ ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५७।
२ वही, पृ० ५८।
३ वही, पृ० ६३।

नक शिविर म भजन की वात करता है तब उसका स्त्रीत्व जाग्रत हो जाता है। कोमा म आदश भारतीय नारी क कई गुण मौजूद हैं। कोमा क मा यम स ध्रुवस्वामिनी म प्रसाद न सवथा भिन्न कोटि की नारी का चित्रण किया है। वह मूलत प्रेम क लिए बनी है। *प्रेम का भावुकताजन्य अनुभूति उसक* रक्त म समाहित है। प्रसाद न सूक्ष्म मनावैज्ञानिक विश्लषण स कोमा क प्रणय प्रसग सम्ब धी मनोभावो क विषय म कुछ नवीन रहस्यो का उदघाटन किया है।[1]

इस नाटक क कथोपकथन प्रसाद के अन्य नाटको स भिन्न हैं। कहा कहीं छोटे और सरल कथोपकथन प्रयुक्त हुए हैं जिसस कथावस्तु की गतिशीलता का भी पता लगता ह। चारित्रिक सघष एव मनोविज्ञान क प्रबल आधार म दष्टिगोचर होता है। जस–रामगुप्त–तो तुम महादवी नही हो न ?

ध्रुवस्वामिनी––नही ! मनुष्य की दी हुइ उपाधि म लौटा देती हू।

रामगुप्त––और मरी सहधर्मिणी ?

ध्रुवस्वामिनी—धम ही इसका निणय करगा।

रामगुप्त—ऐं क्या इसम भी सन्देह !

ध्रुवस्वामिनी—उस अपन हृदय स पूछिए कि क्या मैं वास्तव म सहध मिणी हू ?[2]

उपयु क्त कथोपकथन म ध्रुवस्वामिनी की अतप्तदमित कामच्छाए एव उसका आतरिक सघष ममस्पर्शी बन पडा है।

इस नाटक की भाषा बोल्चाल के अधिक निकट है और साथ ही साथ उसम रचिरता भी है। इस नाटक म मुहावरो का बहुत कम प्रयोग हुआ है। आखें खोलना, अन्यमनस्क होना बक बक करना[3] इत्यादि मुहावरो का यथा स्थान प्रयोग हुआ है। सस्कृत शब्दो की भरमार है। नमून क तौर पर–अभ्रभेदी अलक्ष्य गिरि पथ स्वण पिंजर का पुरुष स्वस्त्ययन सदिग्ध चित्र, प्रवचन च र[4] इत्यादि। निम्नलिखित सूक्तियो म मन क भाव प्रभावो रूप म दष्टिगोचर हुए हैं।

(१) जीवन विश्व की सपत्ति है।

---

१ डा० निरुपमा पाटा प्रसाद क नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० ११८।

२ ध्रुवस्वामिनी पृ० ५९।

३ वही पृ० क्रमश ३३ ३८, ४१।

४ वही पृ० क्रमश १४ १५ १७ १९, ३१ ५२, ५३, ५६।

(२) सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं।

(३) ससार म बहुत सी बातें बिना अच्छी हुए भी अच्छी लगती है और बहुत सी अच्छी बातें बुरी मालूम पडती हैं।

(४) बीती हुई बातो को भूल जाने मे ही भलाई है।[1]

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कष पर पहुचते है कि ध्रुवस्वामिनी पर फ्राय डियन मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

निष्कर्ष

प्रसाद जी के नाटको का मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य म अध्ययन करने के अनन्तर कहा जा सकता है कि उन्हाने अपने नाटको के विवेचन मे मनो विज्ञान का सशक्त परिचय दिया है। प्रसाद ने भारतीय तथा पाश्चात्य नाटय शैलियो के सम वय से मानव की सहजात प्रवत्ति पर प्रकाश डाला है। उनके नाटको पर शेक्सपियर एव द्विजेन्द्रलाल राय के नाटका का प्रभाव लक्षित होते हुए भी यत्र तत्र उनकी स्वत त्र रुचि एव दष्टिकोण का परिचय प्राप्त हाता है। प्रसाद के नाटको म मानवीय सवेदनाआ के सूक्ष्म ताने बाने यथाथ रूप म चित्रित हुए है। उनके जरिए मनाविज्ञान के सम्प्रदाय अधिक सुस्पष्ट हो गय हैं। आमतौर पर प्रसाद के सभी नाटको म राष्ट्रीय प्रेम परिलक्षित होता है, जिसम नाटककार की जीवन शैली परिष्कृत हुई है। प्रसाद की नाटय सष्टि के नायक ऐस होते है, जिन पर नारियाँ जी जान से प्रेम करने लगती हैं और उनके हृदय पटलो पर सहानुभूति की एक अमिट रेखा छोड जाती है। प्रसाद क नाटका के प्रमुख पात्र साहसी, सेवाभावी एव आत्म सम्मान की रक्षा करन वाले दष्टिगोचर हात है। उनम दुबल इड अहम् नतिकाह आदि प्रवृत्तिया पायी जाता है। उनके नाटको के कथापकथना म रोचकता, स्वाभाविकता, पात्रोपयुक्तता दाशनिकता, का यत्व एव मनावज्ञा निकता का परिष्कार हुआ है। प्रसाद की भापा का यमयी है। सस्कृत गर्भित शाद, यथोचित अलकार, मार्मिक एव मनोभावा से यक्त सूक्तियाँ उनकी भापा के कण्ठहार हैं।

---

[1] ध्रुवस्वामिनी, पृ० क्रमश २९ ३८, ४२, ६१।

४ | गोविन्दवल्लभ पन्त के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

वरमाला

गोविन्दवल्लभ पन्त ने 'वरमाला' नाटक मार्कण्डेय पुराण के एक आख्यान के आधार पर लिखा है। प्रेम एवं संघर्ष का एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण इस नाटक में साकार हुआ है। डा० गणेशदत्त गौड़ के शब्दों में 'वरमाला' नाटक में अवीक्षित और वैशालिनी दोनों प्रेम और घृणा, आकर्षण और विकर्षण से सम्पन्न हैं। चेतन और अचेतन मन का द्वन्द्व प्रायः कभी प्रेम को घृणा और घृणा को प्रेम में परिवर्तित कर डालता है।[1]

पहला अंक

भमण्डल का राजकुमार अवीक्षित स्वयम्वर के एक दिन पूर्व अपने प्रेम का प्रतिपादन पाने की इच्छा से विदिशा की राजकुमारी वैशालिनी से सम्पर्क स्थापित करता है। उपवन में दोनों के बीच वार्तालाप होता है। वैशालिनी अवीक्षित से कहती है — 'क्या यही तुम्हारी वीरता का प्रमाण है? तुमने इस तरह एक चोर की भाँति मेरे उपवन में पदार्पण किया। मैं पूछती हूँ क्या तुम क्षत्रिय हो? ... चुप रहो। मैं तुम्हारे मौन से उसका उत्तर चाहती हूँ, तुम्हारी अनुपस्थिति में इसका उत्तर माँगती हूँ। जवाब देने के बदले यहाँ से चले जाओ।'[2] प्रस्तुत उदाहरण से ज्ञात होता है कि वैशालिनी क्रोध के आवेग में ग्रस्त हुई है। तदुपरान्त अवीक्षित उससे कहता है — 'महाराज करन्धम के राजकुमार के हाथ देवता से वरदान माँगने में संकुचित होते हैं, उन्हीं से वह तुम्हारी प्रेम भिक्षा माँगता है। सुन्दरी! अपने सौन्दर्य की ज्योति से मेरे प्रासाद

---

१ डा० गणेशदत्त गौड़: आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, १९६५ पृ० १८७।

२ गोविन्दवल्लभ पन्त: वरमाला, नवमावृत्ति, पृ० १७।

को उद्घाटित करो । मैं अपने बाहु बल से लोक जीतकर तुम्हें उनकी अर्धांश्वरी बनाऊँगा ।" इस अवतरण से अवीक्षित के इड पर प्रकाश पड़ता है । वशालिनी उसके प्रेम का अनादर करते हुए उससे कह उठती है "तुम राह का भिखारी बना लोगे हमारा राजमुकुट चूर्ण कर दोगे मुझे कुचल डालोगे, एश्वर्य धन, सम्पत्ति सब कुछ छीन लोगे । किन्तु मेरे प्रेम को बल पूर्वक हथियाना तुम्हारी शक्ति के बाहर है । वह बड़ा ही सुन्दर अवसर होगा, जब फटे कपड़े पहने, भूखी प्यासी वशालिनी स्वयं मन से अपना प्रेम देगी जब वह धन, बल और रूप का नहीं, प्रेम का प्यार करेगी ।"[1] यहाँ वशालिनी का प्रबल अहम (Strong Ego) दृष्टिगोचर होता है । तब अवीक्षित उससे कहता है कि तुम मेरे लिए बनाई गयी हो, तुम मेरी ही होगी । बल स्वयंवर में तुम मेरा वरण न करोगी तो मैं तुम्हारा हरण कर ले जाऊँगा । तात्पर्य, अवीक्षित का आत्म सम्मान जाग्रत हो चुका है । इसके अनन्तर अवीक्षित बाहुबल से वशालिनी का हरण करता है । इस समय वशालिनी उससे कहती है कि निस्सन्देह तुम मेरे शरीर के स्वामी हो चुके । तत्पश्चात अवीक्षित कह उठता है कि और तुम्हारा प्रेम ? इस प्रश्न के उत्तर में वह उससे कहती है, "वह अभी मेरा ही है ।"[2] यहाँ वशालिनी के स्वाक्रमण प्रेरणावेग की प्रतीति आती है । कुछ देर बाद दोनों रथ से उतरते हैं । वशालिनी अशोक की छाया में बैठती है अवीक्षित अपना धनुष बाण वहीं रख कर जल लाने नदी तट पर जाता है । वशालिनी ज्यों ही रथ की ओर बढ़ती है त्यों ही अचानक नदी तीर से अवीक्षित की चीत्कार सुनाई देती है । वहाँ एक विशालकाय नक्र है । वशालिनी शीघ्र गति से अवीक्षित का धनुष बाण उठाकर नक्र के ऊपर छोड़ती है । तीर जाकर नक्र को विद्ध करता है । वशालिनी की इस कृति से अवीक्षित प्रसन्न हो जाता है । पर इतना होते हुए भी उसके लिए वशालिनी एक अबूझ पहेली है । उसकी वरमाला उसके गले में न पड़ने के कारण वह उदास, शर्मिन्दा हो बैठता है । इसी बीच राजा विशाल कुछ वीरों के साथ पीछा करते हुए वहाँ पहुँचता है । और तीर से विद्ध करके अवीक्षित को बन्दी बना लेता है । इस समय एकाएक वशालिनी में प्रक्षेपण भाव उभर पड़ता है । और वह जी जान से अवीक्षित की सेवा-शुश्रूषा करने लगती है । दूसरी ओर भूपति करंधम अपने सैनिकों के साथ विदिशा पर हमला करता है, पर वास्तविक स्थिति की जानकारी मिलते

---

१ गोविन्दवल्लभ पन्त, वरमाला नवमावृत्ति पृ० १८ ।

२ गोविन्द वल्लभ पन्त वरमाला, नवमावृत्ति, पृ० २१ ।

३ वरमाला, पृष्ठ २६ ।

ही अवीक्षित वनालिनी के विवाह सम्ब धी वात तय करके आपस म सधि करा देता है। तदुपरा त वनालिनी अवीक्षित से कहती है कि इस जन्म मे तुम्हे प्यार करूँगी जन्म जन्मान्तर में तुम्हे प्यार करूँगी। पर अब अवीक्षित का प्रेम घणा म परिवर्तित हो जाता है। वह उसस कहता है कि जिस तरह पूव और पश्चिम नहीं मिल सकते, उसी तरह हम एक दूसर से भिन्न हैं। इस अक के अन्त म वह अपन पिता जी (करधम) स कहता है 'नही पिता जी धृष्टता क्षमा हो। मैं वीर कुल कलक हू स्वय स्त्री हूँ। एक स्त्री का एक स्त्री के साथ विवाह कस हो सकता है ? जो प्रतिज्ञा वनालिनी के ग्रहण से आरम्भ हुयी थी वह आज मरे आजन्म अविवाहित रहने पर समाप्त हुयी। यह मरी कायरता का प्रायश्चित है।'[1] यहां अवीक्षित म हीनता ग्रन्थि परिलक्षित होती है।

दूसरा अक

वशालिनी अकेली अपने आत्मनिवेदन म कह रही है 'जब उन्होंने प्यार किया तो मैंने उनका अनादर किया। जब मैंने उन्हे प्यार किया तो वह अवहेलना कर चल गय ! हाय हम दोनो ने यदि एक दूसरे से घणा करनी थी तो क्यो एक साथ नहीं की ? यदि प्यार ही करना था तो क्या न एक ही समय किया ? अवीक्षित ! अवीक्षित तुमने क्या कहा ? यही न कि मैं आजन्म अविवाहित रहूँगा। और मैं'–[2] यहाँ वनालिनी के अन्तमन का सघष दृष्टिगोचर होता है। इतने म ही दासी का प्रवेश होता है। वनालिनी अपनी व्यथा उसे सुनाते हुए कह उठती है, हाय ! मैंने ही अपने परो म कुल्हाडी मारी। मैं अपने नाथ को न पहचान सकी। मैंने कह दिया– आओ यहाँ स दूर चले जाओ मैं तुमसे घृणा करती हू।'[3] प्रस्तुत अवतरण स ज्ञात होता है कि वनालिनी माना प्रणीत मनस्ताप सिद्धान्त स पीडित हुइ है। तत्पश्चात वह एकान्त वन म अवीक्षित को प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या करने लगती है। दूसरी ओर अवीक्षित वनालिनी के चित्र को ध्यानपूवक देखते हुए अपने स्वागत भाषण मे कहता है 'वोलो, वनालिनी ! कुछ तो वोलो। कहो, क्या तपोवन के एकान्त म तुम्हे कभी मरी भी याद आती है ? जब कोयल नवीन वसन्त का सन्देश लेकर तुम्हारे पास आती है तब तुम मरे अभाव का अनुभव करती हो, या नही ? जब वर्षा का अन्तिम मघ जाने को होता है तो तुम उसे सजल सतृष्ण दृष्टि स देखती हो, या नही ? हे सुन्दरी ! जब तूने ससार को छोड

१ वरमाला, पृ० ५०
२ वही, पृ० ५१
३ वही, पृ० ५५।

दिया, तो अपने चिन्ह वहा स अपने साथ क्या न ले गई ?[1] यहा अवीक्षित भी मनस्ताप सिद्धात से ग्रस्त हुआ परिलक्षित होता है। तदन तर नतकी आकर उस रिझाने की कोशिश करती है।

तीसरा अक

स यासिनी वशालिनी वन म अकेली गात हुए यत्र तत्र घूम रही है। एक रात्रि मे वह स्वप्न मे अवीक्षित को देखती है। स्वप्न मे दोना के बीच हुआ वार्तालाप सुनने लायक है।

वशालिनी–क्षमा करो नाथ ! वशालिनी क्या आपस घृणा कर सकती ? नही, यह उसकी शक्ति के बाहर है। अपने स्वामी से घृणा ? इस ज म म नही ज म ज मातर मे नही।

अवीक्षित–कि तु बहुत देर हो गइ वशालिनी। जो तत्त्व मेरे हृदय म तेरे प्रम रूप से था, वह अब भयकर बदला बन गया है।[2]

प्रस्तुत अवतरणो म फ्रायड प्रणीत स्वप्न की अचतनच्छा की पूर्ति परि लक्षित हाती है। तदुपरा त स्वप्न लोक म रथ पर चढे अवीक्षित और वशालिनी दाना आते हैं। अवीक्षित रथ से उतरता है। वशालिनी अ यमनस्क होकर उतरती है। अवीक्षित उसका हाथ पकडता है कि तु वास्तव म वह एक राक्षस के चगल मे फँस जाती है। वशालिनी रक्षा के लिए चिल्ला उठती है। राक्षस उसका पीछा करता है। इतने म शिकार खेलते हुए अवीक्षित वहा आ जाता है। वह तीर से राक्षस की हत्या कर वशालिनी की निर्बंध मुक्ति करता है। इसी क्षण उसके अ तमन का सघप नष्ट हो जाता है। वैशालिनी की तपस्या फलद्रूप होती है। वह शुष्क–छिन्न वरमाला उसके गले म पहनती है।

'वरमाला' का नायक अवीक्षित बहुमुखी विचारक पात्र है और नायिका वशालिनी अ तमुखी विचारक। दोनो म प्रेम क मनोविज्ञान की यथाथ अव तारणा हुई है। करधम तथा विशाल व्यवहार कुशल नरेश हैं।

इस नाटक के कथोपकथन ओजस्वी प्रवाहमय और गतिशील बन पड हैं। वे पात्रानुकूल तो हैं और मनोवज्ञानिक भी प्रमाणस्वरूप य पक्तिया प्रस्तुत हैं।

अवीक्षित–तुम मुझसे प्रेम नही करती ?

वशालिनी–प्रम करती हू लेकिन तुमस नहा तुम्हारी घृणा स।

अवीक्षित–तुम मुझसे विवाह न करागी ?

१ वरमाला, पृ० ६४

२ वही, पृ० ७२

वनालिनी मैं सूख जाऊँगी म अनुराग करूँगी कुटिल चन्द्र का प्यार करूँगी, मूक पत्थर की प्रतिमा से विवाह कर लूँगी कुमारी ही मर जाऊँगी पर तुम ? तुम मर पति न होओगे ।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनों से ज्ञात होता है कि अवाक्षित् का हृदय वनालिनी के इद गिर्द चक्कर काट रहा है किन्तु वनालिनी अपने अहम् से टस से मस नहीं होती है ।

वरमाला की भाषा सरल मधुर पात्रानुकूल और वातावरण के अनुसार है । भावावेग का चित्रण करते समय नन्दा की कमी लगती है । भाषा की काव्यात्मक परिणति देखने लायक है । उदाहरण के तौर पर—

(१) तुम्हारी आँखें प्रभात के कमल की तरह आद्र हैं तुम्हारा मुख प्रभात के चन्द्र के समान मलिन है ।

(२) यदि मेरा प्यार समाप्त हो जाएगा तो पतंग और दीपक से प्रेम उधार माँगूगी मेघ और मयूर से प्रेम की भिक्षा माँगूगी वसंत और कोकिला का प्रेम चुरा लूँगी वंशी और मृगों का प्रेम छीन लूँगी—तब भी तुम्हें प्यार करूँगी ।

(३) विकसित पुष्प-राशि नवीन जीवन और सुन्दर आशायें लेकर वसंत आता है । उसका आना नहीं मालूम देता । वह चला जाता है । जाना भी नहीं मालूम देता ।

(४) सखी ! यदि पुकारने ही से प्रियतम आ जाता तो मैं अपने जीवन भर के समस्त स्वरों को एकत्र कर एक ही समय में उसे पुकारती और जीवन भर गूँगी रहना पसन्द करती । किसी दिन जब मेरा प्रियतम धूप में थक कर मेरे पास आ जाएगा तो मैं उस पर छाया तान दूँगी और मुरझाने पर यदि शिशिर की एक भी बूँद और शीत रात्रि में जाकर उस मुख पर पहुँचा सकूँगी तो अपना जीवन धन्य समझूँगी ।[2]

गहन विचारों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिये नाटककार ने संस्कृत शब्दों का यथोचित प्रयोग किया है । यथा—पुष्प भण्डार प्रत्रीन निरन्तर च्युत उन्मीलित कमल किसलय क्षत्रिय-कुल कलंक क्षत विक्षत प्रहेलिका तृण पदार्थ तृण तुल्य आमोद प्रमोद अन्तर्हित गिरि गह्वर पशु कंटक परिपूरित सुधा वर्षा ।[3] इत्यादि । इस नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा मनोभावों का

१ वरमाला पृ० २०

२ वरमाला पृ० क्रमश २६ ४८, ६१ ७०

३ व०, पृ० क्रमश १४ १५ ११ १३ २६ २३ ३८ ४०, ४५ ६०
६३, २४ ६६ ७१, ८२

प्रभावी परिष्कार हुआ है। यथा—

(१) नारी का हृदय बचने खरीदने की चीज नही।

(२) नारी सदा रूप को ही नही चाहती।

(३) किन्तु नारी नारी जिसे प्यार करती है, उस पर दया करती है। जिस पर दया करती है उसे प्यार भी करती है।

(४) मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील है। प्रेम घृणा मे परिवर्तित हो गया, तो घृणा भी एक न एक दिन प्रेम मे परिणत हो सकती है।

(५) प्रेम का आरम्भ सयोग से होता है, पर समाप्ति वियोग पर ही होती है।[1]

अतएव निष्कपत कहा जा सकता है कि इस नाटक मे इड और अहम् (इगो) का सघर्ष यथा तथ्य रूप मे प्रस्तुत किया है।

राजमुकुट

गोविन्दवल्लभ पन्त का 'राजमुकुट' नाटक राजपूताने के गौरवपूर्ण इतिहास का एक सुवर्ण पृष्ठ है।

प्रथम अक

महाराणा विक्रमसिंह किसी चिन्ता मे व्यग्र हैं। अपनी चिन्ता को भूलने के लिए वह मदिरा का आश्रय लेता है। उसकी प्रजा भूख से तडप तडप कर मर रही है परन्तु उसकी ओर ध्यान नही देता है। एक अवसर पर वह दुखिनी से कहता है, 'उसे मरने दो। क्या मैंने उसकी फसल काटी है ? देश मे अकाल पडा है तो क्या बादलो का राजा मैं हू।'[2] उक्त सवाद से विक्रमसिंह की विपन्नता एव मनोग्रस्तता पर प्रकाश पडता है। तदुपरान्त कुछ दुखी लोग अपनी व्यथा महाराना के सम्मुख रखने के लिए आते हैं तो अपने थके मन को शान्ति देने के अवसर पर बाधा मानकर वह उन्हें तलवार से मारने के लिए उद्यत होता है। उसकी इस कृति मे अपराध ग्रन्थि भी छिपी है। आमतौर पर सभी की महान व्यथा यह है कि मेवाड के सिंहासन पर अन्यायी राजा है। बनवीर की मॉ शीतल सेनी कई दिनो से नियत भत्ते के *न मिलने के कारण असतुष्ट है। विक्रम जब उसकी निभर्त्सना करता है* तब वह कह उठती है मैं तेरे चाचा की स्त्री मॉ के समान हू, नीच दासी! इस अपमान जनक निन्दा को याद रखना विक्रम तूने नागिन की पूँछ दबाई

---

१ वरमाला, पृ० क्रमश १७, २० ४३, ५७, ६९

२ गोविन्दवल्लभ पन्त राजमुकुट, षष्ठदशावृत्ति, पृ० १५

है। [1] यहां शीतल सेनी में प्रतिशोध ग्रंथि परिलक्षित होता है। इतने में ही उत्पलसिंह की धाय पन्ना वहाँ आकर कह उठती है 'कौन ? भयकर अभिशाप की मूर्ति ! तू समूल नष्ट करेगा तो मुझ अपनी बलि देकर भी रक्षा करने की शक्ति प्राप्त हो। संग्राम सिंह के वंश के दावानल ! मैं उसको अपने रक्त से बुझा दूँगी। [2] यहां पन्ना की व्यक्तिगत अनुप्रेरणा (Individual Motivation) उमड पडी है। दूसरी ओर शीतलसेनी बनवीर के महल में अपने स्वगत भाषण में कहती है 'यह राजमाता बनने की इच्छा न जाने क्यों से बलवती होती जा रही है। समय इसके अनुकूल ही चल रहा है। विक्रम ने मेरा अपमान किया वही मेरे मान का कारण होगा। सरदारों और प्रजा का आग्रह है विक्रम के स्थान में बनवीर मेवाड के महाराना हो। मैं भी राजमाता बनूँगी। [3] यहां शीतलसेनी की लोकैषणा भावना दृष्टिगोचर होती है। एडलर के अनुसार सारा संसार लोकैषणा अथवा यश की कामना से प्रेरित है। इधर सुवर्ण के राजमुकुट बनवीर के सम्मुख एक विकट समस्या है। विक्रमसिंह के सिंहासन पर बैठने के लिये उसका मन हिचकिचाता है। उसका अचेतन मन चाहता है कि विक्रम के छोटे भाई उदय का राजतिलक हो। तदनन्तर बनवीर के मन का परिवर्तन करने के लिए उसकी माँ शीतलसेनी एक षड्यन्त्र रचाती है। वह रणजीत के द्वारा छद्मवेश में बनवीर को पाठ पर कटार मारने का स्वाँग रचाती है। जिससे बनवीर के मन में मेवाड के महाराणा के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न होती है। घातक भाग जाने के उपरान्त बनवीर शीतलसेनी से कहता है उसने (विक्रम) तुम्हारा अपमान किया वृद्ध पिता तुल्य सरदार कर्मचन्द जी का तिरस्कार किया प्रजा को असह्य कष्ट दिए, आज वही मेरे प्राणों का भूखा है। तुम्हारा बदला सरदारों का अनुरोध प्रजा का हाहाकार और अपने प्राणों का मोह—मैं इन सबके लिए मेवाड के सिंहासन पर बैठूंगा। बताओ माँ ! राजमुकुट कहाँ है ? [4] यहां बनवीर में रक्त के अनुसार प्रतिस्पर्धात्मक इच्छा की अवतारणा हुई है। पन्ना की मनोकामना है कि मेवाड के सिंहासन का उत्तराधिकारी उदय ही हो। विक्रम का भाई उदय उम्र में छोटा है। पन्ना का पुत्र चन्दन उसी उम्र का है। पन्ना उदय तथा चन्दन के बीच हुआ वार्तालाप बाल मनोविज्ञान का एक आदर्श

१ गोविन्दवल्लभ पंत राजमुकुट पष्ठसंस्करण पृ० २३
२ वही पृ० २८
३ वही पृ० २५
४ राजमुकुट, पृ० ३३

रूप है जिसमें बाल सुलभ प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । वार्तालाप के सिलसिले मे चन्दन पन्ना से कहता है महाराणा सग्रामसिंह, यह उदय के पिता का नाम है । तुम बार बार यह नाम सुनाती हो, तुमने एक बार भी मेरे पिता का वर्णन भली-भाँति नहीं किया । इतना तुमने अवश्य ही कहा है कि मेरे पिता सग्रामसिंह की सेना में सैनिक थे ।'' प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि क्रियात्मक (Motor) विकास का परिचायक बालक है । कुछ देर बाद विक्रम मानसिक असतुलता के कारण कर्तव्य विमुख हो जाता है । उसे लगता है कि उसके सिर में अब चित्तौड़ के मुकुट को धारण करने की क्षमता नहीं है । सैनिक तथा सरदार उसके विरोध में है । वह अपना राजमुकुट उदय के नन्हा होने के कारण पन्ना के हाथ सौंप देता है । तदुपरान्त शीतलसेनी के षड्यन्त्र के शिकार में विक्रम तथा उदय फँस जाते हैं । अँधेरे कारागृह में विक्रम की हत्या की जाती है । पन्ना को जब उदय की भी हत्या होने की बारी से जानकारी मिलती है तब वह कह उठती है 'मैं उसकी राह रोक लूँगी हाथ झटक तलवार छीन लूँगी । तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दूँगी । सावित्री ने यम के पंजे से अपने स्वामी को छुड़ाया था, क्या मैं मनुष्य के हाथ से अपने स्वामी के पुत्र को न छुड़ा सकूँगी ।'[2] यहाँ पन्ना में तीव्र संवेग की प्रवृत्ति उद्भासित हो गई । इसके अनन्तर वह उदय को बारी की टोकरी में सुलाकर बेरिस नदी की ओर भेज देती है और अपने लाडले लाल चन्दन को सुला देती है । थोड़ी ही देर में प्रतिशोध ग्रन्थि से ग्रस्त बनवीर वहाँ आ जाता है और चन्दन को उदय ही समझकर उसकी निर्मम हत्या कर देता है । ईर्ष्या से ग्रस्त शीतलसेनी कटार के रक्त से बनवीर का तिलक करती है ।

द्वितीय अंक

अपने पुत्र का शव लेकर पन्ना बेरिस नदी के किनारे श्मशान भूमि में आ जाती है । पूर्वयोजनानुसार बारी वहीं उदय को लेकर ठहरी है । पन्ना हतबुद्ध सी हो गयी है । श्मशान में मिले संन्यासी से वह अपने लाल देने की प्रार्थना करती है । दूसरी ओर विजया-गर्विता शीतलसेनी को आसुरी आनन्द हो गया है । वह अपने पथ की प्रत्येक बाधा को हटा रही है । उसे कमचन्द पथ का काँटा महसूस होता है । वह रणजीत के द्वारा उसे समाप्त करने का विचार कर रही है । तत्पश्चात विमनस्क स्थिति में पन्ना उदय को लेकर डूँगरपुर के राजा ईशवर्ण के यहाँ आ जाती है । थोड़ा देर में कमचन्द की हत्या का वृत्त वहाँ आ पहुँचता है । फिर भी पन्ना अपना धीरज नहीं

१ राजमुकुट पृ० ३६

२ वही, पृ० ६१

गँवाती है। राजा ईश्वर उन लोगों का आश्रय देता है। धन्य है पन्ना जिसने स्वामि भक्ति-वेदी पर अपने कुसुम से बालक का बलिदान किया। मेवाड़ की वंश बेलि को नष्ट होने से बचाया। उसके इस कृति में इच्छा शक्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इधर बनवीर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने के लिए आतुर हो उठा है। वह जयसिंह को उसके पद से हटाना चाहता है। पर जयसिंह को बनवीर की नीति पसन्द नहीं है। वह उससे कह उठता है 'बनवीर! तुम कायर हो। तुम मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं बँधे हुए महाराणा विक्रम नहीं हूँ, सोता हुआ बच्चा उदय नहीं हूँ, अपनी राह चलते हुए वृद्ध सरदार कर्मचन्द नहीं हूँ। मैं तेरे इस राज्यारोहण की तृष्णा को धिक्कारता हूँ। तेरे मेवाड़ को इस तलवार के साथ त्याग करता हूँ। (तलवार फेंक देता है।) जब तक जीता रहूँगा तब इस पाप-राज्य की कथा को आर्यावर्त के कान-कोने में पहुँचा दूँगा। बप्पा रावल के पवित्र वंश का नाश करने वाले तेरा अन्त हो।'[1] प्रस्तुत अवतरण में जयसिंह की जीवन शैली पर प्रकाश पड़ता है। तदनन्तर उदय के रास्ते में एक और बाधा आकर उपस्थित होती है। वह वन में गुम हो जाता है। पन्ना उसे ढूँढने लगती है। वह काली की विशाल मूर्ति के समीप बैठे तान्त्रिकों के हाथ लग जाता है। वे उसे काली माता को भेंट चढ़ाने का विचार कर रहे हैं। इतने में ही तान्त्रिकों का सरदार बहादुरसिंह वहाँ आ जाता है। उदय के गले की ताबीज देखते ही उसे अपने पुत्र की याद आ जाती है। थोड़ी देर में पन्ना भी वहाँ आ जाती है। वह अपने पति बहादुरसिंह को देखकर हर्षविभोर हो जाती है। उदय बंधन मुक्त हो जाता है। सब तान्त्रिक आश्चर्यान्वित हो जाते हैं।

तृतीय अंक

जब शीतलसेनी को उदय के अस्तित्व की जानकारी मिल जाती है तब वह अपनी छाती को पीटने लगती है। वह भावावेश में बनवीर से कह उठती है 'तक्षक बच गया बेटा बेटा! जिसे तुमने कुचला वह केवल रस्सी थी।'[2] यहाँ शीतलसेनी का भ्रमात्मक भाव परिलक्षित होता है। तदुपरान्त वह षड्यन्त्र द्वारा उदय को खत्म करना चाहती है परन्तु उसे यश नहीं प्राप्त होता। बहादुरसिंह उदय की जी जान से रक्षा करता है। जयसिंह भी उसकी सहायता करता है। अन्ततोगत्वा मेवाड़ के सिंहासन को लेकर छिड़े गये युद्ध में रणजीत आहत हो जाता है और बनवीर बन्दी। उदय के सभी शत्रु पराजित हो जाने

---

१ राजमुकुट, पृ० ९२।

२ वही, पृ० १०९।

हैं। सच्चा परमानन्द पन्ना को ही होता है। क्योंकि 'राजमुकुट' का प्रमुख आधार स्तम्भ वही है। महामना पन्ना आखिर बनवीर के अपराधों को भी क्षमा कर देती है। राजतिलक के आनन्दोत्सव में वह कृत कृत्य होकर कह उठती है, 'यह दिन दर्शन की बड़ी साध थी। यह वह चिर लालसा का राज मुकुट है। यह तुम्हारे मस्तक पर सुशोभित हो, तुम चित्तौड़ के महाराणा हुए उदय!'[1] प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि पन्ना में सजीवन प्रणीत सतोष भाव की अभिव्यक्ति हो गयी है।

इस नाटक का प्रमुख पात्र धाई-माँ पन्ना है। जिसमें स्वामि भक्ति ठूँस ठूँस कर भरी हुयी है। पन्ना के व्यक्तित्व में साहस कष्ट सहिष्णुता, निष्कपटता वीरता आदि सद्गुणों का विलोभनीय मेल है। उदय उसी के असीम त्याग एवं महान बलिदान का जीता जागता प्रतीक है। बनवीर की माँ शीतलसेनी एक महत्वाकांक्षिणी, धूर्त, षड्यन्त्र रचने में प्रवीण महिला है। बनवीर दंड के आधीन होकर कई निष्पाप जीवों की हत्या कर बैठता है। विक्रमसिंह पथभ्रष्ट महाराणा है तो कर्मचन्द एकनिष्ठ सरदार। बहादुरसिंह का मेवाड़ की रक्षा के लिये दिया हुआ योगदान ध्यातव्य है।

इस नाटक के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता है- उनकी ओजस्विता और गतिशीलता। सरलता, सरसता तथा पात्रानुकूलता इनके गुण हैं। उदाहरणतया-

उदय- (उठकर) धाई माँ! धाई माँ! यदि सरदारों ने कल प्रभात समय महाराणा विक्रम को मुक्त न किया, तो क्या होगा?

पन्ना- तुम अभी तक नहीं सोए। चिन्ता न करो विक्रम कल अवश्य मुक्त होंगे। रात को इतनी देर तक जागते रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे।

उदय- तुम भी तो अभी तक जाग रही हो। तुमने चारण से एक गीत याद किया था। मैं उसी को सुनते सुनते सो जाना चाहता हूँ।[2]

प्रस्तुत कथोपकथनों से ज्ञात होता है कि उदय में बालकों का संवेगात्मक व्यवहार का भाव उद्भावित हुआ है।

राजमुकुट की भाषा अत्यंत संयत, सरल एवं सुबोध है। कुछ स्थानों पर चुटीले और मार्मिक व्यंग्यों की अवतारणा भी हुई है। उदाहरण के तौरपर-

(१) क्षमा? तुम क्षमा करने को कहते हो, बनवीर! हा भगवान! मैं समझ लूँगी मैं वंध्या हूँ। मैंने गोद में पुत्र नहीं, पिंजरे में पक्षी का पालन

---

१ राजमुकुट, पृ० १३२।

२, वही, पृ० ५८।

किया ।

(२) चुप रहो हत्यारो ! तुम मेरे मन का अपना सिंहासन देकर भी भय नहीं कर सकते ।

(३) वकन भी दो उग। उसके वहा म होना ही क्या है ? विजा घरिये ? तुम भी चुप हो गयी ?[१]

भाषा की शोभा बढ़ाने के लिए कुछ स्थलों पर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया गया है । यथा– निर्दयी चित्त दावानल आजन्म पितातुल्य विद्राहाग्नि स्वण निर्मित तन सहस्र तीव्र वाण अग्राघर गिरि प्रांतर तिमिर वस्त्रा भूषण, सुर सरिता पञ्चि ह दुरात्म आत्मो सर्ग'' इत्यादि । इस नाटय कृति म कुछ स्थानों पर मुहावरों का यथोचित प्रयोग हुआ है । जसे– बाल बाँका न होना बाए हाथ का खेल मुख पीला पड जाना प्राण फूँक देना तीता के नाच तण रखकर शरण आना[३] आदि ।

उपयुक्त विवेचन के पश्चात हम कह सकते है कि इस नाटक म प्रतिशोध ग्रंथि और बाल मनोविज्ञान का यथार्थ निरूपण हुआ है ।

अंगूर की बेटी

अंगूर की बेटी म गोविन्दवल्लभ पंत न मदिरापान की समस्या आकषक ढग स प्रस्तुत की है ।

पहला अंक

मोहनदास शराब पीने के दुव्यसन म फस गया है । कामिनी जसी सुशील सुसंस्कृत गृहणी अपन पति के दुव्यसन के कारण गलितगात्र हो जाती है । वह अपन स्वगत भाषण म कहती है 'संसार का अभागा पिता वह है जो अपनी सन्तान का बुरी संगति स नही बचाता और बदकिस्मत वह बटा है जो बाप का कहना नही मानता । उस स्वामी की दुर्गति है जिसके दो स्त्रियाँ हैं और शायद उस पत्नी स अधिक दुखिता कोई नही है जिसका पति शराबी है ।

यहाँ कामिनी म मिश्रित भाव (Mixed feeling) दृष्टिगोचर होता है ।[४]

---

१ राजमुकुट पृ० क्रमश ३० ९१ ९३ ।

२ वही, पृ० क्रमश १९ २३, २८ २४, ३३ ३९, ४४, ८० ५३ ५५ ५९, ५९ ६९, ७०, ८८, १०७ १२० ।

३ वही पृ० क्रमश १४, २८ ८४ ११०, १२५ ।

४ गोविन्दवल्लभ पंत अंगूर की बेटी' द्वितीयावृत्ति, पृ० १०–११ ।

मोहनदास मदिरापान म कितना डूब गया है इसकी जानकारी उसी के एक कथन स प्राप्त होती है। वह बिन्दु के पिता हरिहर से कहता है। "जब शराब नही मिलती तब बहोश रहता हूं। मेरा दिमाग बहुत सही सोच और समझ रहा है। लो पियो इससे तम्हारे पुराने खयाल पर नया रग चढेगा—तुम *शराब और उसके भक्ता की बुराई करना छाड दोग।*"[1] प्रस्तुत उद्धरण स मोहनदास की आदत के प्रभाव (Effects of Habit) पर प्रकाश पडता है। वार्तालाप के सिलसिले मे वह कह उठता है 'अब किस तरह आन्त का छोड दू ? बक का सारा रुपया खत्म कर दिया। पिताजी की बनाई हुई शहर की सात कोठियां, दानो गाँव, लोहे का कारखाना सब शराब की गगा मे बह गए। एक एक कर पत्नी के आभूषण भी इसी दवी की भेंट हो गय।"[2] प्रस्तुत अवतरण स ज्ञात होता है कि मोहनदास प्रबल मनोवेग के अभाव (Want of master Sensidment) मे ग्रस्त हो चुका है। थाडी देर म उसका मित्र माधव वहाँ आ जाता है। वह एक सिनमा का डायरेक्टर है, पर उसकी कथनी और करनी म कोई सामजस्य नही है। मिस प्रतिभा नामक एक सिनमा-ऐक्ट्रेस को लेकर वह फिल्म कम्पनी स्थापन करना चाहता है, पर उसक पास एक कप दिका भा नही रहती ह। मोहनदास अपने इस मित्र की पाच हजार रुपया की माँग पूरी करन के लिए अपनी पत्नी कामिनी के सुहाग के अतिम चिह्न अल कार मागने लगता है। वह गहन देने स इकार कर दती है। तब मोहनदास क्रुद्ध होकर शराब की खाली बोतल उठाकर कामिनी के सिर पर द मारता है। कामिनी बहोश हो जाती है। मोहनदास उसके गल स हार और हाथा से सोन की चूडिया उतार लेता है। इतन म बनवारी बाबा वहाँ आ जाता है और बहोश कामिनी का उसके मैंके पहुँचा देता है। दूसरी ओर विनायक बिन्दु को अपन प्रेम-पाश म खीच रहा है। वह उस माधव के चगुल म न फसन की सलाह भी देता है। बल्कि वह अपनी राय पर अडिग रहता है। तदुपरा त रायल होटल म माधव और मोहन की उपस्थिति म मिस प्रतिभा का एक्टिंग शुरू हो जाता है। तत्पश्चात हरिहर बिन्दु को सिनमा की स्टार के पथ स हटान की कोशिश करता है। पर वह अपन विचार पर दृढ है। तब हरिहर उसस कहता है, चुप रह अभागिनी ! मैं तेरे कोई भी शब्द नही सुनना चाहता जा, मैंन तेरा परित्याग किया। तुझे अपन घर की दुर्गन्धि समझ झाडकर फेंक दिया। जा तुम अपन अग का कोढ जान काटकर दूर कर दिया। खबरदार !

१ गोविन्दवल्लभ पन्त अगूर की बटी द्वितीयावृत्ति, पृ० १३।
२ वही पृ० १५।

मुहँ न दिखाना। मर घर म अब तर लिय जगह नहा। मर लिय तू मर चुका तर लिए मैं मिट चुका।[1] यहाँ हरिहर म निषधात्मक मवग (Negative Emotions) उमड पडा है। इसर बाद बनवारी बाबा बिन्दु की सहायता करता है। इधर रूँव म मोहन क घर आग लग जाता है। वह फिर शराब क प्याल म डूब जाता है। मोहन का अहान लाकर माधव चुपचाप उसकी जब स हार और चूडियाँ निकाल लता है परन्तु जल्दबाजी स उसकी उगली का ढीली अगूठी मोहन की जब म गिर जाती है।

द्वितीय अक

बिनोद दी न्यू होटल का प्रोप्राइटर है। उस होटल म बनवारी बाबा बिन्दु और बिनोद के बीच वार्तालाप चल रहा है। इतन म शराब क नश म मोहनदास वहाँ आ जाता है। वह बनवारी बाबा स कह उठता है कुछ दिन पहल जा लाग मरी पूजन करत थ आज मर पाव तालियाँ बजात हैं। क्या सचमुच मैं ही इस नगर की सबस अशुद्ध और नष्ट भ्रष्ट हस्ती हू। मगर मरा दिल मला नहा है महात्मा जी।[2] यहाँ मोहनदास म शोधन की प्रक्रिया प्रस्फुटित हुयी है। तदुपरान्त बनवारी बाबा उस उपदश करत हुए कह उठता है मनुष्य की शक्ति की कोई अन्त नहा है। सब कुछ हो सकता है पर उसक लिए पहल मन म विचार पदा होना चाहिए फिर उसी एक विचार पर दृढ रहन की आवश्यकता है। यह तो जगत दिखाई द रहा है विचार का ही तो स्थूल रूप है। परन्तु शराब की दवी क चरणा म तन मन धन की भेंट चढान वाल पुजारी ! तन कभी सोचा भी है कि वह कसी चीज है ?[3] प्रस्तुत अवतरण स ज्ञात होता है कि बनवारी बाबा नयी आदत डालन के लिए यथा सम्भव शक्तिशाली प्ररणा-शक्ति स काय आरम्भ कर रहा है। इसक अनन्तर बनवारी बाबा क योजनानुसार मिस बिन्दु नियत समय पर नाप-तौल क मोहनदास को शराब दन लगती है। मोहनदास होटल म हिसाब किताब रखन का काम सभालन लगता है। कुछ दिनो बाद मिस बिन्द शराब म पानी मिला कर मोहनदास को दना शुरू कर दती है। वह हर रात शराब की मात्रा कम करती जाती है तथा पानी की मात्रा बढाती जाती है। मोहनदास क चारो ओर का वातावरण इस प्रकार का बना है जिसस पुरानी आदत की पुनरा

---

१ अगूर की बटी पृ० ४६।
२ वही, पृ० ६४।
३ वही पृ० ६५।

वृत्ति नहीं होती। दूसरी ओर माधव प्रतिभा को प्रसन्न नहीं रख पाता है। फिर भी उसे खुश करने के लिए वह चोरी का हार दे देता है। वह कामिनी का होते हुए भी वह उससे बताता है कि अपनी गुजरी हुयी स्त्री का है। वह माधव ने ही चुराया है जिसका सबूत उसकी अँगूठी है। तत्पश्चात माधव मोहनदास से वह अँगूठी छीन लेने की कोशिश करता है। दोनों में बड़ा झगड़ा हो जाता है। मोहनदास माधव की जेब से पिस्तौल निकाल लेता है। निशाना चूक कर आइने पर लगता है। इतने में पुलिस वहाँ आ जाती है और मोहन दास को गिरफ्तार करती है। उस पर पिस्तौल चलाने एवं कामिनी की हत्या का इल्जाम लगाया जाता है। तदनन्तर 'दी यू होटल' में विनोद और बिन्दु के बीच बात चीत हो रही है। मोहन पर लगाये गये इल्जाम पर भी उनमें बहस होती है। थोड़ी देर में विनायक वहाँ आ जाता है। इसी बीच बिन्दु विनोद का साफा भूमि पर गिराकर उसकी नकली मूँछें खींचकर उसका सही रूप प्रदर्शित करती है। पुरुष वेश का विनोद सही अर्थ में कामिनी होती है। तत्पश्चात न्यायालय में मोहनदास निर्दोष साबित होता है। जज द्वारा माधव की गिरफ्तारी और तलाश का हुक्म जारी होता है। रॉयल होटल में प्रतिभा माधव की दर्जनों सिनेमा कम्पनियों की स्कीमों और सैकड़ों फिल्मों की कहानियों से ऊब जाती है। इतने में उनको पुलिस आने की वार्ता मिलती है। दोनों जेवरों के रूमाल उठाकर धोती के सहारे नीचे उतरते हैं और मोटर से भागे थोड़ी देर बाद रास्ते की नदी के टूटे पुल से उनकी कार नदी में गिर जाती है।

तृतीय अंक

बिन्दु और मोहनदास के सम्भाषण से ज्ञात होता है कि मोहनदास की शराब की लत दिन-ब-दिन कम हो रही है। बिन्दु के गीत के बाद मोहनदास तंद्रा से जगकर अँगड़ाई लेते हुए शराब की देवी से कह उठता है, 'शराब की देवी है? कुछ नहीं! सपने की रानी! आकांक्षा की देवी! माया की मरीचिका! तू दिखाई देती है, मगर हाथ नहीं आती। तेरे पीछे दौड़कर आधे बाल सफेद कर चुका हूँ लेकिन अब नहीं। कभी सुन्दर और मनमोहिनी!

(सम्हलकर) कुछ नहीं! दस सँभल मोहनदास! फिर रपटन है फिर ठोकर है। सब झूठ! मेरा ही विचार मुझे फिर धोखा देना चाहता है।'[1] यहाँ मोहनदास चेतन-अचेतन मन का संघर्ष परिलक्षित होता है। तत्पश्चात मोहनदास की शराब की आदत सदा के लिए छूटती है। हरिहर और बिन्दु की शादी हो जाती है। इतने में प्रतिभा आकर कह उठती है "माधव अस्पताल

---

१ अंगूर की बेटी पृ० ११०-१११।

म मत्यु को प्राप्त हुआ। वह बीच म एक ही बार बोला था। उसके शब्द थे– यह कामिनी के आभूषण मैंने चुराये थे उसे दे देना, और मोहनदास से कह देना कि मुझे माफ करो।" प्रस्तुत उद्धरण से माधव की अपराध ग्रंथि पर प्रकाश पड़ता है। इसके बाद कामिनी के आभूषण बिन्दु को उपहार के रूप म पहना देती है। इन सभी सुनहली घटनाओं का सूत्रधार होता है बनवारी बाबा।[1]

'अंगूर की बेटी' का नायक मोहनदास है जो शराब की लत में फँस कर अन्त म उससे निमुक्त हो जाता है। इस नाटक का केन्द्र बिन्दु है बनवारी बाबा। वह मनोविज्ञान का सूक्ष्म पारखी है। परोपकारी, निर्लोभी एवं समदर्शी वृत्ति उसके व्यक्तित्व के असाधारण पहलू हैं। माधव धूर्त, चालाक एवं वासना परिचालित पात्र है। कामिनी दुःसह स्थिति म भी अपने विवेक से विमुख नहीं होती है। बिन्दु और प्रतिभा गुरु म इड के आधीन होती हैं पर बाद म अपने को सँभाल लेती हैं।

इस नाटक के कथोपकथन पात्रानुकूल और उनके चरित्र को विकसित करने वाले हैं। अधिकांश संवाद बड़े कलात्मक और प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। उदाहरणतया–

प्रतिमा– *मैंने चोरी नहीं की कहीं डाका नहीं डाला। मुझे तुम्हारे साथ भागने की जरूरत?*

माधव– ऐडवेंचर के लिए। इन जेवरों को बेचकर किसी तरह अमरिका भाग चलेंगे। वहाँ मैं तुम्हें हालीवुड की रानी बनाऊँगा– सारी दुनियाँ के पर्दे पर तुम्हारा सिक्का बैठेगा।

प्रतिमा– लेकिन–

माधव– प्रतिमा! एडवेंचर के लिए नाम के लिए और अपने एक दोस्त की मदद के लिए। चलो।[2]

उपर्युक्त कथोपकथनों म इड एवं अन्तर्द्वन्द्व की यथार्थ अवतारणा हुई है।

इस नाटक की भाषा बोधगम्य, स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। विषयानुकूल वातावरण को सुरक्षित रखने के लिए यथोचित शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस नाटक म प्रयुक्त किये अंग्रेजी शब्दों द्वारा पात्रों की अन्तः प्रवृत्तियों एवं मनोभावों पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है। जैसे– रिहर्सल, स्थान प्रेस मुनाइटी, इन्ट्राइयूस, एपार्टमेन्ट प्राफ्रान इन्टोडेक्शन, स्टीमुलेन्ट

१ अंगूर की बेटी पृ० १३८।
२ वही पृ० ९८।

फिलासफर, ऐक्टिंग, एडवांस, ऐडवेंचर' सूक्तियों के प्रयोग म मनोवैज्ञानिक परिवेश देखने लायक हैं। उदाहरण के तौर पर—

(१) दिल से ख्वाहिश करो तो सब कुछ हो सकता है।

(२) प्रतिज्ञा कर उसे तोड देना बहुत बुरा है।

(३) अपनी नजर मोटर और महलों से गिराकर सडक के नंगे और भूखे बैठे हुए भिखारियों पर रखो, तो तुम्हें सुख का भेद मालूम होगा।'

इस प्रकार संक्षेप म यह कहा जा सकता है कि इस नाटक मे बुरी आदतों को तोडने के नियमों का यथार्थ परिष्कार हुआ है।

अन्त पुर का छिद्र

गोविन्दवल्लभ पन्त कृत 'अन्त पुर का छिद्र' बौद्धकालीन इतिहास पर आधारित मौलिक नाटक है।

प्रथम अंक

कौशाम्बी के राजप्रसाद म महारानी पद्मावती कटार से धीरे धीरे दीवार की इंट कुरेदना आरम्भ कर देती है। इतने मे मागधिनी वहाँ आ जाती है। उसे देखते ही पद्मावती चौंककर कटार छिपाना चाहती है, पर वह हाथ से छूटकर भूमि पर गिर जाती है। पद्मावती सात्विक प्रवृत्ति की स्त्री है। वह मागधिनी से स्पष्ट कहती है कि यह छिद्र संध्या समय विहार को लौटते हुए अमिताभ बोधिसत्व के दर्शन के लिए है। परन्तु इससे मागधिनी का द्वेष जाग्रत होता है। वह घृणाभाव से अपने आत्मनिवेदन म कह उठती है। 'राजकुमार सिद्धार्थ ? यह तो उसी संन्यासी का नाम है। इसने मेरे साथ विवाह करना अस्वीकार कर मेरे पिता की आशाएँ चूर चूर की थीं। पुत्र हीन पिता का अपमान पितृहीन पुत्री से न भूला जा सके और इस सिद्धार्थ का नाम प्रतिहिंसा हो।'' यहाँ मागधिनी की प्रतिशोधि ग्रंथि परिलक्षित होती है। इसके अनन्तर मागधिनी पद्मावती से कहती है कि उस दिन राजसभा म काशी के एक कुलपति ने इसे भण्ड तपस्वी सिद्ध किया। मागधिनी मन ही मन बोधिसत्व का तिरस्कार करती है। उसकी इस प्रवृत्ति म उसका अचेतन मन काम करता है। क्योंकि पद्मावती का सिद्धार्थ सम्बन्धी स्नेह उसमे सहा

---

१ अंगूर की बेटी, पृ० क्रमश २६, २८, ३०, ३५, ३५, ३८, ४१, ४३, ५३, ६३, ७७, ९८।

२ वही, पृ० क्रमश ५४, १०८, ११८।

१ गोविन्दवल्लभ पन्त, अन्त पुर का छिद्र, द्वितीयावृत्ति, पृ० १९।

नहीं जाता है। तदुपरान्त मागधिना अपन स्वगत भाषण म कहती है, पद्मावती तुम न भूलन दोगी। इस म यामी स जितनी दूर जाना चाहता हू यह उतना ही निकट खडा दिखाई देता है। वह दीवार म छिद्र कर उस राजभवन क भीतर भी लाना चाहती है। यही छिद्र लक्ष्य बिन्दु हो। सिद्धार्थ क साथ वहीं पद्मावती भी है। प्रियतम क प्रम का उत्तम और अधिक अश क्या इसन मुझसे नही छीन रखा है ? तब क्यो न एक ही उपाय स य दोनो बाधाए दूर हो।¹ प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि मागधिनी म युक्त्याभास (Rationalisation) उद्भावित हुआ है। इतने म वहाँ मालिन आ जाती है। उसकी सहायता स वह यथासमय अपना इच्छित साध्य करना चाहती है।

द्वितीय अक

उदयन विलास भवन म वीणा झकरित कर गाता है। इतन म पद्मावती धीरे धीरे हार गूथती हुई आकर ओट म खडी हो जाती है। गीत समाप्त कर उदयन उससे कहता है कि तुम वहीं दूर से मेरे अलक्ष्य म खडी हो पद्मावती ! इसके उपरान्त पद्मावती उससे पूछती है कि वह चरण मेरा ही था, इसका विश्वास किस तरह हुआ ? तब उदयन उससे कहता है तुम्हारे नूपुरो द्वारा ! उनकी झकार माधुरी मेरे सबसे प्रिय गीत के साथ मिलकर स्मृति मन्दिर म हर समय उपस्थित रहती है। मैं आँखो स इसका रूप देख कर भी इसे जान सकता हू कानो से इसके स्वर सुनकर पहचानना तो स्वाभाविक ही है।² उक्त उद्धरण से उदयन की स्मृति की धारणा-शक्ति पर प्रकाश पडता है। थोडी देर म मागधिनी भी वहाँ आ जाती है। वह उदयन से कहती है मेरे ही आने स पद्मावती चली गई। वह महाराज के प्रम म मेरा अधिकार नही देख सकती। उसके द्वारा महाराज की ऐसी अवज्ञा मुझ भी सहन न हो।³ इन पक्तियो का पढने स मागधिनी और पद्मावती के पारस्परिक कलह द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। स्पष्ट ही है कि पदमावती बोधिसत्व अमिताभ पर श्रद्धा रखती है और मागधिनी उसके विरोधक देवदत्त पर। मागधिनी म द्वेषभाव तथा ईर्ष्या की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वह उदयन के मन म पदमावती के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करने के लिए सदैव यत्नशील रहती है। इसके बाद पदमावती हार गूथते हुए उदयन का चित्र छिद्र के आगे रखती है और अपने स्वगत भाषण म कहती है मेरे मन म बार बार

---

१ गोविन्दवल्लभ पत अन्त पुर का छिद्र, द्वितीयावृत्ति पृ० ५२।
२ अन्त पुर का छिद्र, पृ० २९।
३ वही, पृ० ३०।

यह भय का उदय कैसा ? मेरा मन वर्षा के बाद खिलने वाले कमल की तरह स्वच्छ हो, उसमे आकांक्षा का कोई भी कण न हो मैं किसी से क्या डरूंगी ? जो छिद्र के इस ओर है, वही उस ओर भी ।" यहाँ पदमावती अहम (इगो) एवं अन्तर्द्वन्द्व परिलक्षित होता है। तदनन्तर उदयन मागधिनी के साथ पदमावती के व्यक्ति के पास आ जाता है। मागधिनी उदयन को वह रध्र दिखाती है। रध्र से पदमावती के कक्ष में देखते हुए उदयन कह उठता है 'वही अद्धग्रथित पुष्पहार उसके हाथ में है। उसको गूँथना छोड़कर वह किसी गहरी एकाग्रता में लीन है। मुखाकृति से विचार स्थिर प्रतीत होता है। प्राचीर में एक छिद्र हो गया है। उसी से बाहर कुछ देख रही है।'[1] प्रस्तुत अवतरण में उद्देश्यपूर्ण आख्यान की प्रतीति आती है। तत्पश्चात मागधिनी को पदमावती के बारे में उदयन के मन में द्वेष उत्पन्न करने में सफलता मिलती है। तब उदयन मागधिनी से कहता है मैं फिर देखता हूँ। (छिद्र से पदमावती के कक्ष में देखता है।) मागधिनी ! तुम इसी पदमावती को कलंक लगा रही हो ? देखो, देखो, तुम भी देखो, वह किसी प्रेम भरी दृष्टि से मेरे चित्र की ओर देख रही है। उसके मुख मण्डल पर कैसा विशुद्ध प्रेम झलक रहा है।'[2] यहाँ उदयन में फ्रायड प्रणीत ओडिपस की झाँकी परिलक्षित होती है। इस अंक के अन्त में उदयन वीणा झंकरित करने और मागधिनी कोकिला कण्ठ से सुधा बरसाने प्रस्थान करती है।

तीसरा अंक

राजभवन के निकटवर्ती उद्यान में मागधिनी अपने षडयन्त्र के बारे में सोच रही है। इतने में मालिन आती है। वह उसके द्वारा एक जहरीला सर्प मंगवाती है जिसके बदले अपने गले का हार निकाल कर देती है। ऐंद्र जालिक के मन्त्र-शक्ति द्वारा मूर्च्छित सर्प वह उदयन की वीणा में रख देती है। दूसरी ओर पदमावती विमनस्क अवस्था में है। वह अपने आत्मनिवेदन में कह उठती है, किसी ने निश्चय महाराज से कुछ कह दिया है तभी मेरे प्रति उनके भाव ठीक विरुद्ध दिशा को बदल गए। एक परिवर्तन और भी देख रही हूँ। वत्सराज की प्रसिद्ध वीणा सुप्त हो गई उन्होंने गीत खो दिया। जिस दिन उन्हें वीणा में गीत नहीं मिला, उसी दिन से मैंने उनके पास अपना

---

१ अन्तःपुर का छिद्र, पृ० ३७।
२ वही, पृ० ३८।
३ वही, पृ० ४१।

प्रेम नही पाया।' यहाँ पद्मावती के अचेतन मन का द्वन्द्व लक्षित होता है। इतने मे उदयन वहाँ आ जाता है। दोनो के सम्भाषण से बोधिसत्व पर लगाये गए अभियोग की जानकारी मिलती है। तदुपरान्त उदयन अधिक स्थिर होकर अपनी उदास भावना को छिपाने के लिए वीणा के तार छेड़ने लगता है। बीच मे ही वीणा मे एक जहरीला सर्प बाहर निकलता है। मागधिनी पद्मावती पर इल्जाम लगाती है पर मालिन से पद्मावती की सच्चाई और मागधिनी का कपट स्पष्ट होता है जिसके फलस्वरूप मागधिनी उस सर्प के काटने से चल बसती है। बोधिसत्व पर अभियोग लगाने मे मागधिनी की ही कूटनीति है। बल्कि अन्त मे बोधिसत्व की विजय होती है। वह निर्दोष साबित होता है। उदयन को सत्य स्थिति का ज्ञान होने पर वह पद्मावती से कह उठता है 'यही सौभाग्य है! मेघ जान पड़ता है हट गए। शुद्ध ज्योति मे स्पष्ट देख रहा हूँ कोई भी अपराधी नही। बोधिसत्व निर्दोष है, तुम भी कलङ्क-हीन हो।'[1] यहाँ उदयन मे उदात्तीकरण की प्रक्रिया प्रस्फुटित हुई है। अन्ततोगत्वा अमृत प्राप्त अमिताभ के दर्शन से उदयन कृतार्थ हो जाता है। पद्मावती की चिर सचित आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं। दोनो बुद्ध के संघ मे प्रविष्ट होते हैं।

इस नाटक का नायक उदयन है जो कलासक्त यायी वीराग्रगण्य राजा होते हुए भी मागधिनी के प्रभाव से मनोग्रस्त हो जाता है पर अन्ततोगत्वा अपने उदात्त व्यक्तित्व का परिचय दिलाता है। पद्मावती संयमी एव विवेक शक्ति महारानी है तो मागधिनी द्वेषी एव ईर्षालु। अमिताभ का नैतिकाह (सुपर इगो) सराहनीय है।

इस नाटक के संवाद अधिक सफल, संक्षिप्त गतिप्रेरक एव कलात्मक बन पड़े हैं। विषय और भाव के अनुसार उनकी धारावाहिकता तीव्र हो गई है। उदाहरणतया—

पदमावती—सत्य नवीन का पर्याय नही।

उदयन—(रुष्ट होकर) यदि तुम यहाँ से नहीं जाना चाहती तो चुप रहो पद्मावती![2]

पद्मावती—क्या मागधिनी भी आपसे यही उत्तर पाती है?

उदयन—मुझे मत सताओ पद्मा! मेरे मन मे चैन नहीं है। न बोलो।'[3]

---

१ अन्त पुर का छिद्र, पृ० ५१।

२ वही, प० ७९।

३ वही, पृ० ६२।

प्रस्तुत कथोपकथनो से उदयन की मनोग्रस्तता पर प्रकाश पडता है।

'अन्त पुर का छिद्र' की भाषा भावानुरूप परिवर्तित होती रही है। इसम प्रसाद और माधुय का यथाथ परिष्कार हुआ है। कुछ स्थलो पर काव्यात्मकता का परिवेश दृष्टव्य है।

(१) क्या तू पुष्पों के बदले तारिकाएँ भी चुनकर ला सकती है? इस बार वसन्तोत्सव के अवसर पर मैं उन्ही के हार गूथना चाहती हूँ।

(२) ग्रीष्म और शिशिर का कोप उसके पथ मे खडा नहीं होता, वसत और शरद का हास उसे उत्तेजना नही देता।

(३) मन में जो पहले अनन्त गीत मालाएँ थी व सब की सब टूट गई हैं। छिन्न हार की मोतियो की भाँति अब यहाँ मरा विचार बिखर गया है।[1]

आवश्यकतानुसार कतिपय स्थलो पर सस्कृत गर्भित शब्दो का यथोचित प्रयोग हुआ है। जस--प्रस्तर खण्ड, अश्रु सिक्त, शरद-यामिनी, इन्दलद स्मृति-मदिर, अद्धग्रथित, मुग्धाकृति, दुभाव, छमच्छाया, पुष्प-चयन, पल्लव-पुन्ज, ममौषधि, पर्याप्त रज्जुवत[2] इत्यादि। सूक्तियो द्वारा मनोभावो की यथाथ अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के तौर पर--

(१) हम दूसरे के स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करन के लिए अपने अभ्यास को भूल ही जाना चाहिए।

(२) कई सुन्दर पुष्प तो काटो में ही खिलते हैं।

(३) गीत वीणा म नही मन म रहता है।

(४) प्रेम ही ससार का आधार और वही उसकी सबस बडा विभूति है।

(५) शत्रु को मित्र समझकर क्षमा करो।[3]

अतएव निष्कष निकाला जा सकता है कि इस नाटयकृति म अचेतन मन के द्वन्द्व को मुखरित करन का स्तुत्य प्रयास किया है।

ययाति

गोविन्दवल्लभ पन्त न पौराणिक कथावस्तु क आधार पर ययाति की रचना की है।

पहला अक

महाराज ययाति के प्रासाद म बडा जटा और शर्मिष्ठा क बीच वार्तालाप

---

१ अन्त पुर का छिद्र पृ० क्रमश २३ २६, ५३।

२ वही पृ० क्रमश १३ १६, २१ २७ २९ ३८, ३८ ४२, ४६, ४६, ४५, ४८, ६०, ६४।

३ वही, पृ० क्रमश ३०, ४७, ५३, ६२, ६९।

चल रहा है। उनके सम्भाषण से ज्ञात होता है कि शर्मिष्ठा राजपुत्री होकर भी दासी के रूप में विचरण कर रही है। शर्मिष्ठा इसे भाग्य का खेल मानती है। इससे उसकी भाग्यवादिता पर होने वाला विश्वास स्पष्ट हो जाता है। बालकों के खिलखिलाने में बड़ा दुःख शर्मिष्ठा ने देखा है कि महारानी देवयानी के बेटे राजकुमार जब तक या खेल-कूद में हम जीत नहीं सकते तो अन्त में वे हमारे पिता का नाम पूछते हैं हम न बता सकने पर ताली बजा कर कहते हैं—अज्ञात पिता के पुत्र में माता का कलंक छिपा है। इससे शर्मिष्ठा का स्वाभिमान प्रज्वलित हो जाता है और वह चौकी से नीचे गिर पड़ती है। इतने में ही ययाति वहाँ आ जाता है। वास्तव में शर्मिष्ठा ययाति की छोटी रानी है। परन्तु देवयानी के कारण वह अपने आत्मसम्मान को खो जाती है। तदुपरान्त ययाति शर्मिष्ठा के पुत्रों को राजकुमारों की पंक्ति में बिठाना चाहता है। ययाति यह मर्यादा को अधिक दिन छिपा नहीं सकता है। इसी बीच मँझला बेटा ययाति से अपने पिता का नाम पूछता है। ययाति कह देता है कि समय आने पर जान लोगे। तभी शर्मिष्ठा का बड़ा बेटा और मँझला बेटा इन दोनों से पूछता है कि अपनी जवानी का एक वर्ष भी क्या मुझे दे सकते हो? दोनों इससे इन्कार कर देते हैं। थोड़ी देर में देवयानी वहाँ आ जाती है। ययाति उससे कहता है—शर्मिष्ठा को जब मैंने प्यार किया था तब वह तुम्हारी दासी नहीं थी उसके बाद तुम दोनों का झगड़ा हुआ। मैं नहीं जानता तुम कहती हो उसने तुम्हें कुएँ में डाल दिया और वह कहती है तुम स्वयं गिर पड़ी। इस बात को समझ लो अगर तुम कुएँ में न पड़ती तो न मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर बाहर निकालता और न तुम हाथ पकड़ लेने के लिए मुझे पाणिग्रहण कर लेने को विवश करती। इसलिए हमारे विवाह की जड़ में तुम्हारा प्रेम नहीं शर्मिष्ठा है। उसकी सौम्यता देखो वह सिर नीचा कर तुम्हारी दासी बनी हुई है और मेरा न्याय देखो मैंने तुम्हें ही महारानी बनाया है।'[1] प्रस्तुत अवतरण से ययाति की लिबिडो वृत्ति एवं उसकी हीनता ग्रंथि पर प्रकाश पड़ता है। तदनन्तर देवयानी ययाति से कह उठती है—उसके पुत्रों को राजमुकुट दिलाकर तुम राजभवन के भीतर आग लगा देना चाहते हो क्या? सबसे बड़े पुत्र को मैंने दूध पिलाया है। उस ब्रह्मघातिनी के बेटे राजमुकुट पहनेंगे और मेरे कुमार उनकी टहल करेंगे क्या? (पैर पटकती है।) नहीं यह नहीं हो सकता! मैं शुक्राचार्य की लाड़-प्यार में पली पुत्री इस तरह ठोकरें खाने के लिए आई हूँ क्या यहाँ?'[2] यहाँ देवयानी का आत्म

---

१ गोविन्दवल्लभ पंत : ययाति, द्वितीय संस्करण १९६५ पृ० १९।

२ वही पृ० २०।

सम्मान जागत होकर उसके इड एव अहम (इगो) के बीच सघष शुरू हो जाता है। इसके अनन्तर बडा राजकुमार एव छोटा राजकुमार भी ययाति को यौवन देने से इकार कर देते हैं। अन्ततोगत्वा आयु मे सबसे छोटे पुत्र ने ययाति से कहा, 'मैंने सोच लिया, मैं समझ गया—मैं तैयार हूँ ! पिता पुत्र के इस सौदे मे क्यो घाटा हो सकता है ? पुत्र क्या है ? पिता का विचार पिता की कामना, पिता की ही कल्पना। जब मेरे जीवन के तमाम वर्षों मे पिता का ही दान है तो इस एक वय की गिनती ही क्या है ? पुत्र जब पिता की इच्छा की ही मूर्ति है तो क्या दाता ही ग्राहक नही है ? मैं तैयार हूँ पिता जसे भी चाहे मरे यौवन को ले सकते हैं।'[1] यहाँ पुरु म फ्रायड प्रणीत अवरोध सिद्धात दष्टिगोचर होता है। थोडी ही देर म राजसी वेश मे राज मुकुट पहने पुरु प्रविष्ट होता है। दपण के पास आकर अपने प्रतिबिम्ब को देखते हुए वह देवयानी से कहता है बिल्कुल पुरु सा दिखाई दे रहा हूँ इसी से क्या न तुम्हारे मन म भ्रम पदा हुआ हो ? अरे इस बाहरी वतन को क्या देखती हो, जो उसमे प्यास भरी हुई है उसे पहचानो। उसकी ओट म जो आवेश और प्रेम है वह तुम्हारे ही ययाति का है। तुम्हारे सहयोग से, योग की साधना के लिए मैं फिर यौवन मे लौट आया हूँ।'[2] यहा पुरु म रहस्य ग्रथि दृष्टिगोचर हुई है। इस अक के अन्त मे शर्मिष्ठा और देवयानी पुराने भवनों मे रहने के लिए जाती हैं और ययाति राजभवन के विलासभवन में स्वय खो जाता है।

द्वितीय अक

चत्ररथ वन की गुफा मे गुरुदेव और दो खडगधारी प्रहरियो के बीच वार्तालाप चल रहा है। इतने म ही पुरु आ जाता है। वह गुरुदेव से कहता है 'इस गुफा को देखकर मैं आश्चय म पड गया हू। आप कहते हैं इसमे पाँच द्वार हैं पाँच इन्द्रियाँ मेरी भी हैं। गुरुदेव ! गुरुदेव ! मैं कहता हू मेरा यह भीतरी मन खुलकर बाहर प्रकट हो गया है। मेरा यह देश निकाला धन्य है जिसमें पहले अपनी देह स निकल जाना पडा है और अन्त में अपना मन ही बाहर निकल आ गया।'[3] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि पुरु के विचार भारतीय मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। थोडी देर में मालती-नामक

१ गोविन्दवल्लभ पन्त, ययाति द्वितीय सस्करण, १९६ पृ० ३३।
२ वही प० ४१।
३ ययाति प० ५७।

विलास में या वहाँ आ जाती है। पुरु उससे पूछता है कि तुम मेरे आश्रम में क्यों घुस आई ? तब मालती उससे कहती है यह आश्रम है तुम्हारा ? यह तो विलास का डेरा है। वहाँ एक से एक बढ़कर सुन्दरियाँ नाच रही हैं। बड़ी दास दासियों की चहल पहल मची हुई है। वहाँ बढ़िया भोजन पक रहे हैं। वहाँ आसव ढाला जा रहा है वहाँ द्यूत क्रीडा हो रही है। आश्रम इसी को कहते हैं।[1] प्रस्तुत अवतरण में कार्यारिमवादी मनोविज्ञान की दमित रीति पर प्रकाश पड़ता है। इसके अनन्तर मालती पुरु के सामने प्रेम का प्रस्ताव रखती है। तब पुरु उससे कहता है सुन्दरी ? प्रेम क्या बाहरी चमक की कहानी है। वह आत्मा की डोरी है। आत्मा से आत्मा का सम्बन्ध। इसलिए राजधानी में है तुम्हारे प्रेम की आत्मा भक्ति ही उसकी डोर गी माया कमर मनुष की टकी हो गई है।[2] यहाँ पुरु की जीवन नाश दृष्टिगोचर होता है। कुछ देर बाद नाच भ्रष्ट अप्सरा विचित्रा वहाँ आ पहुँचती है। पुरु और विचित्रा के बीच हुआ कथोपकथन मनोविज्ञान की दृष्टि से द्रष्टव्य है।

विचित्रा—क्या करती हैं ये काम वालाएँ ?

पुरु—ये मेरे मन में कामना उपजाती हैं।

विचित्रा—और तुम क्या करते हो ?

पुरु—मैं उन कामनाओं को मिटाता हूँ।

विचित्रा—(ओठ से) यह भी कोई बात हुई ? मिटाना ही जब हुआ, तो फिर उपजाते ही क्या हो ?[3]

इस सम्भाषण से ज्ञात होता है कि पुरु पर लिबिडो वृत्ति का गहरा असर है। तत्पश्चात विचित्रा पुरु के साथ नाचने करने की इच्छा प्रदर्शित करती है। उसका इड पुरु के इर्द गिर्द चक्कर काटने लगता है। आखिर पुरु विचित्रा की शरण में जाता है। दोनों के इड में सामंजस्य प्रस्थापित होता है। पुरु गुरुदेव से कह उठता है कि गुरुदेव ! गुरुदेव ! कहाँ हो ? विवाह का मन्त्र रटो, बाजे बजाओ हमारा विवाह हो रहा है।

तृतीय अंक

मालती राजभवन पर ययाति से मिलती है। वह उसके सामने पुरु के बारे में शिकायत करती है। वह ययाति से कहता है कि उन्होंने मुझे लूट

---

१ ययाति, पृ० ६५।

२ वही, पृ० ६९।

३ वही, पृ० ७२।

लिया । तब ययाति कह उठता है कि असंभव ! विद्या, विनय और विवेक से भरा हुआ । वह पुरु, नहीं वह स्वप्न में भी किसी को नहीं लूट सकता । उसने क्या लूट लिया तुम्हारा ? इसके बाद मालती ययाति से कहती है, द्रव्य ? परिश्रम का तुच्छ मल नहीं, उससे अधिक मूल्यवान वस्तु मेरे मन की शांति है उन्होंने मेरे मन की शांति लूट ली ।"[1] यहां मालती में युग प्रणीत स्व रक्षा तत्त्व दृष्टिगोचर होता है । पर मालती किसान कन्या होने से उसकी हीनता ग्रंथि उमड़ पड़ती है और वह वहाँ से तेजी से भाग जाती है । इतने में कोटपाल हथकड़ियों में दो विद्रोहियों को पकड़ कर वहाँ लाता है । ययाति अपराधियों को कड़ा से कड़ी सजा फमाता है । तत्पश्चात् ययाति की दोनों रानियाँ हँसती हुई पधारती है । तदनन्तर कोटपाल द्वारा फिर चार अपराधियों को ययाति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । राज्य भर में अशांति फैल जाती है । कोई किसी का पूछता नहीं है । आखिर राजभवन को आग लग जाती है ।

चतुर्थ अंक

पुरु चैत्ररथ के वन की गुफा में कामदेव की मूर्ति के पास पद्मासन से बैठा हुआ ध्यान कर रहा है । इतने में विचित्रा वहाँ आ जाती है । उसे देख कर पुरु आसन छोड़कर उठ जाता है । वह उससे कह उठता है विचित्रे ! मैं समझता हूँ, जिस तरह पृथ्वी पर जल, जल में वायु वायु में और तत्व ठहरे हुए हैं इसी प्रकार वायु की इंद्रिय में और इंद्रियाँ ठहरी हुई हैं । जीभ की कामना स्वाद है । यदि हम स्वाद को जीत लें तो और इन्द्रियों की कामनाओं को सहज ही जीत सकते हैं ।"[2] प्रस्तुत अवतरण से भारतीय अध्यात्म एवं भारतीय मनोविज्ञान पर गहरा प्रकाश पड़ता है । थोड़ी देर में मालती वहाँ आ जाती है । मालती उससे पूछती है कि क्यों ससार भोजन करता है ? तब पुरु कह उठता है सुनो, एक भेद की बात कहता हूँ भोजन शरीर का भोजन नहीं है—वह भोजन है कामनाओं का, वह भोजन है रोग का ।"[3] पुरु के इस कथन से भोजन और कामना का अन्योन्य सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है । तात्पर्य मनुष्य जब तक अन्न के दाने को हजम करता है तब तक उसमें कामवासना का प्रभाव बना रहता है । अन्ततोगत्वा भारतीय भावमनो मीमांसा के बल पर ययाति की सभी स्पृहाएँ विगत हो जाती हैं ।

१ ययाति, पृ० ९१,
२ वही, पृ० ११४ ।
३ वही, पृ० ११८ ।

निहित समय म पुरु राजमुकुट वापस ले आता है। देवयानी और शर्मिष्ठा एक हो जाती हैं। वह राजकुमार के सिर पर राजमुकुट विराजमान होता है। पुरु मतान्य म तात-ययाति के आज्ञानुसार वर्षो को गाढ करने के लिए किसान बन जाता है। मालती उसकी सहचारिणी बन जाती है। विश्व शान्ति एव मानव कल्याण का एक स्वण पृष्ठ लिखा जाता है।

इस नाटक का नायक ययाति फायड द्वारा वर्णित लिबिडो या कामवत्ति का प्रतीक है। उसकी काम क्षुधा शान्त होने की अपेक्षा दिन व दिन तीव्रतर होती जाती है। इसी कारण वह पुरु से एक वष के लिए यौवन की मांग कर लेता है। अ ततोगत्वा उसका मन परिवर्तित हो जाता है जो भारतीय आध्यात्म एव मनोविज्ञान के ही अनुकूल है। पुरु की पितृभक्ति ध्यान देने लायक है। देवयानी और शर्मिष्ठा के बीच का सघष नारी मनोविज्ञान के अनुसार चित्रित हुआ है। विचित्रा चचल वत्ति की अप्सरा है तो मालती भोली भाली किन्तु व्यवहारकुशल कृषक कन्या। बडा राजकुमार चातुय एव प्रौढ़ता का परिचायक है।

ययाति के कथोपकथन सजीव स्वाभाविक एव सुरुचिपूर्ण बन गये हैं। यत्र तत्र मनोवैज्ञानिक शैली का प्रयोग हुआ है। यथा–

ययाति—*राज्य के तो नही मर मन क भीतर एक शत्रु है उसी को मिटाना* चाहता हूँ।

बडा राजकुमार—कौन है वह ?

ययाति—कामना अब भी नही समझे।

बडा राजकुमार—वराग्य स उस जीत सकते हैं।

ययाति—कम क युद्ध क्षत्र म पीठ दिखाने का नाम ही वराग्य है।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनो म फायड प्रणीत लिबिडो वत्ति का यथाथ परिष्कार हुआ है।

इस नाटक की भाषा सरल स्वाभाविक पात्रानुकूल और वातावरण के अनुसार है। इसकी शैली म पात्रो की भावाभिव्यक्ति यथाथ प्रभावोत्पादक, प्रौढ एव प्राजल बन चुकी है। इसम मुहावरो-कहावतो का यथोचित प्रयोग हो चुका है जिनकी उपस्थिति स भाषा का सौंदय बढ गया है। जसे ढढी खीर हो जाना सारा गुड गोबर कर देना आख मे धूल झोकना पाला पड जाना त्राहि त्राहि मच जाना चूर चूर करना मुँह म दूध और मुटठी मे हवा बाँधना सौ बात की एक बात बाल बाका न होना।[2] इत्यादि।

१ ययाति, पृ० २१।

२ वही, पृ० क्रमश ३५ ,७ ४०, ६२, ८६ ९४ १०६, १०८, ११३।

इस नाटक की सूक्तियों में मनोभावों का सुस्पष्ट चित्र खींचा गया है। उदाहरण के तौर पर—

(१) मनुष्य बाहर से नहीं बनता उसकी परिपूर्णता भीतर से है। यह काया की सजावट और जिह्वा के रस, मनुष्य इन पर खड़ा नहीं है विचार की ऊँचाई पर उसका स्थय है।[1]

(२) मन जिसकी मुट्ठी में है वह विश्व का विजेता है।

(३) बाहर के कम से नहीं, भीतर की भावना से मनुष्य अपने सुख दुख बनाता है।

(४) क्षत्रिय का वटा पीठ पर नहीं छाती पर तार को सहन करता है।

(५) जवानी एक आंधी और झंझा है।

(६) कम कोई नीच नहीं है। नीच विचार से आदमी नीच बनता है।

(७) पुत्र का जन्म, जीवन और जगत सब पिता का ही प्रसाद है।

(८) अभ्यास से सब कुछ हो जाता है।

(९) राजनीति बड़ी भयानक वस्तु है।

(१०) भीतरी सत्य को कोई नहीं समझ पाता सब बाहरी बनावट पर रीझते हैं।

(११) न्याय की आँखों में पिता पुत्र का कोई सम्बन्ध नहीं ठहरता।

(१२) कामनाओं को मिटाकर ही इन्द्रियाँ मन को प्राप्त होती हैं।

(१३) भुख तो सबसे छोटी कामना है।

(१४) मनुष्य की भावना से ही वह चाहे जो बन जाता है।

(१५) कामनायें मनुष्य को अधा बना देती हैं।

(१६) कामना और कम के बीच की दीवार का नाम लज्जा है।

(१७) जीवन भी झूठा नश्वर है।

(१८) कामनाएँ सब सपने ही तो हैं।

(१९) सेवा विश्व का आधार है उसी के त्याग पर धरती स्थिर है।

(२०) जब शास्त्र का कहना कोई नहीं मानता तो शास्त्र से सब मन जाते हैं।

(२१) प्रजा की भलाई ही राजा का सबसे बड़ा इष्ट है।

(२२) हम विधान के विधायक हैं हम उसकी पकड़ में नहीं आ सकते।

(२३) कामना ही शरीर को चलाती है।

(२४) कामनाएँ ही मनुष्य के बन्धन हैं उनको मन से मिटा डालना ही मुक्ति है।[2]

---

१ ययाति पृ० ८

२ वही, पृ० क्रमश ८ ९, १३ २५, २८, ३२, ३४, ३८, ४७, ५४, ५, ६१, ६३, ६४, ७६, ८१, ८३, ८६, ८८, ९६, ९८, १२०, १२८।

अ त म निष्कर्ष कहा जा सकता है कि इस नाटक म फायड प्रणीत लिबिडो वृत्ति का मनोज्ञ चित्रण हुआ है।

सुजाता

गोविन्दवल्लभ प त न सुजाता नाटक क द्वारा मानसिक भावना ग्रथि का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम अक

सुजाता का पति उस घर म ब द कर रखता है। उसे आजन्म जल म अपने भाग्य का रोष भुगतना पडा है। इसी कारण सुजाता मानसिक बीमारी का शिकार बन गई है। सामाजिक ब धन रूढिया अ य नियम परम्पराओ तथा नतिक सिद्धा तो क कारण उसकी मन प्रवृत्ति को अपने स्वाभाविक और पूर्ण रूप म तुष्टि का अवसर नही मिलता है। सुजाता अपने मन की व्यथा पडोसिन क सम्मुख रखते हुए कहती है मरे अविश्वास के सिवा और क्या मतलब हो सकता है? नारी मैं इस जन्म को धिक्कारती हूँ। व (पति) दिन रात अधेरा उजाला चाहे जो भी कर सकते है। हम उनसे कुछ पूछ सकन का अधिकार नही। कठपुतली सी उनक स देह की डोरियो म बधी नारी कस कहन उनकी मुक्ति होगी?[1] प्रस्तुत अवतरण से सुजाता के अ तद्व द्व पर प्रकाश पडता है। सुजाता का पति विजय एक स्कूल मास्टर होते हुए भी पुराने विचारो एव सामावस्था का भूत उस पर सवार है। स्कूल जाते वक्त सुजाता को वह ताले म ब द कर जाता है। सुजाता का बचपन का साथी डा० बिसन पर उसका शक होता है जो उसी मुहल्ले म रहा करता है। एक दिन डा० बिसन एसा बहाना कर कि सुजाता क पिता बीमार है। उसे वन पथ की ओर ले जाता है। दूसरी ओर सुजाता को ब द घर म न देखकर विजय अवाक रह जाता है। वह अपने प्रतिबिम्ब क साथ बोलते हुए कहता है कि क्या बिगाडा है मैंने किसी का? तब प्रतिबिम्ब कह उठता है आदिकाल की गुफाओ का निवासी। आखेट की बबरता नही गई है अभी तक तेरी। तू बहुविवाह म प्रीति रखने वाला तू एक पति पर प्राणो को निछावर करने वाली नारी का मूल्य नही जान सकता। तूने उस पर राज रोज स देह जमा किए, व ही आज घनीभूत होकर उसे उडा ले गये।[2] यहा प्रतिबिम्ब क रूप म विजय के अचेतन मन का द्व द्व मुखरित हो उठा है। तत्पश्चात वन पथ म सुजाता को ले जाने वाली मोटर एक्सीडेंट

१ गोविन्दवल्लभ प त सुजाता, तीसरा सस्करण, पृ० १।
२ वही, पृ० ४।

म फँस जाती है । डॉ० बिसन को चोट लगती है । वह मदद के लिए चिल्लाता है । तब सुजाता उससे कहती है 'बच गए ? तुम्हे अपने इस पाप के लिए किसी अग से दाम नही चुकाने पडे ? मैं इस मोटर के नीच दबकर मर गई होती तो अच्छा था । अपने पति का मगल चाहने वाली एक नारी का नाम और मान गौरव नष्ट हो गया ! बिसन यह क्या कर दिया तुमने ? क्या बिगाडा था मैंने तुम्हारा ?[1] यहा सुजाता का प्रक्षेपण भाव उमड पडा है । इससे सुजाता के जीवन को एक अनिष्ट मोड मिलता है । वह अपने पति को मुँह दिखाना अपराध मानती है । इसक अन तर विजय क घर मे सुजाता स्टोव के एक्सीडेंट मे चल बसने की वार्ता प्रस्तुत की जाती है । विजय दूसरी शादी के बारे म सोचने लगता है ।

द्वितीय अक

सुजाता पति का मगल चाहन वाली एक आदश नारी है । नारी का नाम और मान गौरव को बचाने के लिए वह सजल्द अपन शौहर के घर जाने की अपेक्षा अपने पीहर जाना अधिक पसन्द करती है । ऐसी कल्पना कर कि सुजाता चल बसी है विजय रेखा के साथ दूसरी शादी कर बठता है । सुजाता की त्रिशकु जगी अवस्था हो जाती है । उसक अस्तित्व पर न उसके पिता जी विश्वास रखते हैं । न उसके पति । सुजाता मे अचेतन की जटिलता और क्लिष्टता क फलस्वरूप मानसिक सघष बना रहता है । और मनद्विधा के कारण अनिश्चय की स्थिति मे रहता है । मन विकृतियाँ न स्वस्थ तक शक्ति देती हैं न धैय । मले फटे कपडे और दीन मलिन मुखी सुजाता एक दिन विजय के परा मे गिरकर कह उठती है मैं तुम्हारे चरणो की दासी हू । एक मास के प्रवास से निश्चय ही मेरा बाहरी ढांचा नि शक्त और मलिन हुआ है पर भीतरी आत्मा उतनी ही स्वच्छ है । निश्चल जल की तरह उसम तुम्हारा प्रतिबिम्ब स्पष्ट और पवित्र है । मैं जगत का जो अनुभव लेकर लौटी हूँ, उसमे तुम्हारा प्रेम कई गुना सत्य और सुन्दर हो उठा है ।[2] यहा सुजाता म रैक प्रणीत औसत प्रकार का व्यक्तित्व दष्टिगोचर होता है । क्योकि सुजाता सदव सघर्षों से दूर रहकर समझौते का कोशिश करती है । तदपरान्त विजय कहता है कि मैं अपनी स्त्री को श्मशान म फूँक आया तेरी कोई चालाकी इन पर न चलगी । सुजाता पर मानो पहाड टूट जाता है । विमनस्क अवस्था म वह रेखा से मिलती है । वह सन्दूक मे रखे फोटो एव लोक गीत की कापी से अपना सही परिचय करा देती है । वह रेखा से कहती है 'मैं सबकी

१ सुजाता, पृ० ९
२ वही, पृ० ३८

नजरो में भरी हुई ही रहना चाहती हूँ। फिर न किसी को धोखा और न किसी को आना। मैं केवल एक तुम्हारे ही विश्वास म जीना चाहती हूँ। जो फेंक दोगी उसी से प्राण और जो उतार दोगी उसी म लाज रख लूँगी। मुझे ससार की इन विषैली नजरो स छिपा लो।"[1] प्रस्तत उद्धरण से ज्ञात होता है कि सुजाता एडलर प्रणीत जीवन शैली की परिचायक है। तत्पश्चात वह रेखा से कहती है कि नीचे लकड़ी कोयले का गोदाम है। उसकी चाबी तुम्हारे पास ही होगी। खोल दो उसी म छिपी रहूँगी।

तीसरा अक

रेखा अपने पीहर के गाँव की स्त्री मानकर सुजाता को सरक्षण दती है। इसी बीच विजय उस स्त्री का घूघट हटाने को आगे बढ़ता है पर रेखा उसे रोकती है। तत्पश्चात उस स्त्री की ठीक ठीक डाक्टरी जाँच कराने की सलाह देकर विजय रेखा स कह उठता है इनकी यह सामाजिक बीमारी। डाक्टर साहब कहते हैं घूघट ओट म किए गये सारे जगत को बेईमान समझने की बीमारी है। मानसिक रोग शारीरिक रोग से अधिक भयकर होता है। देर करने स क्या लाभ ? मैं अभी बुला लाता हूँ उन्हें।[2] प्रस्तुत अवतरण से अपराधियो को व्यवहार चिकित्सा (Behaviour Theraphy) विधि पर प्रकाश पडता है। इसके अनन्तर डा० विसन के द्वारा उस स्त्री की डॉक्टरी जाँच की जाती है और यह स्पष्ट हो जाता है कि वह स्त्री पराई स्त्री न होकर विजय की पहली पत्नी सुजाता ही है। तत्पश्चात डॉ० बिसन के वक्तव्य से विजय को विदित होता है कि उसी ने ताला खोलकर पवित्र उद्देश्य से सुजाता को कद स मुक्ति की थी। तब विजय की आँखें खुल जाती हैं। वह रेखा के सम्मुख अपने अपराध की क्षमा माँगता है। इतने मे अँधेरी कोठरी मे सुजाता एक जहरीले सप के पजे म फस जाती है। डा० विसन दाँतो की जड उखाडने स बीमार होते हुए भी उसका जहरीला खून चूस कर निकालता है जिससे उसकी मौत होती है और सुजाता को मिलता है प्राणदान ! सुजाता की जीवित रहने की स्पृहा दृष्टव्य है। युग के अनुसार व्यक्ति म अपने स्वत्व को स्थिर रखने की कामना प्रबल होती है। इसका हृदय रूप है– सुजाता।

इस नाटक का प्रमुख पात्र सुजाता है। वह सच्चरित्र एव भोली भाली नारी है जो एकात म भी अपने प्रण स टस स मस नहीं होती। मनुष्य के मन म तनिक सन्देह निर्माण होने के बाद उसके जीवन म होने वाली उथल पुथल

१ सुजाता, पृ० ४५।
२ वही, पृ० ५२।

के अप्रतिम मनोवैज्ञानिक दर्शन विजय में हो जाते हैं । डॉ० बिसन एक बुद्धिमान एवं वासना परिचालित पात्र है । वह प्रगतिवादी विचारों का समर्थक है। और संवेग प्रधान भी । रेखा कर्त्तव्यशाली तथा व्यवहारकुशल नारी है ।

सुजाता के कथोपकथन ओजस्वी प्रवाहमय और मनोवैज्ञानिक शैली के परिचायक है । प्रायः सभी संवाद सजीव स्वाभाविक और संक्षिप्त है। उदाहरण के तौर पर—

सुजाता— और भी तो इसी से ट्रंक में मेरी एक कापी है । उसमें मैंने स्त्रियों के कुछ लोक गीत लिखे हुए हैं ।

रेखा— वह भी है । (कापी निकालती है)

सुजाता— मैं फिर लिख देती हूँ इस पर । मेरे अक्षरों की एकता से भी मेरी वाणी का सत्य प्रकट हो जायगा । (मेज की दवात कलम से कापी पर लिखती है) लो देख लो ।

रेखा— हाँ, बिल्कुल एक ही से तो हैं ।[1]

उपर्युक्त संवादों से अक्षर मनोविज्ञान की यथार्थ अवतारणा हुयी है ।

इस नाटक की भाषा सरल रोचक कौतूहलपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है । कुछ स्थानों पर भावों के प्रवाह में मुहावरों का यथार्थ प्रयोग हुआ है । जैसे— हृदय का घाव भरना अक्ल जाग उठना मुँह काला करना दम घुट जाना, चूर चूर करना आँखें फोड़ना, खिल्ली उड़ाना फाँस चुभ जाना सिर चकराना इत्यादि ।[2] इस नाटक की सूक्तियों में हृदय के अन्तःस्थल के भाव उद्भावित हो गये हैं । यथा—

(१) सच्चे कारणों से विश्वास बनता है ।

(२) अविश्वास आसुरी सम्पत्ति है ।

(३) नारी की सम्पत्ति है उसके पतिदेव ।[3]

(४) जब तक नारी के प्राण पति के प्रेम में प्रतिष्ठित हैं पापी की कोई चेष्टा उस अपवित्र नहीं कर सकती ।

(५) नारी की सबसे बड़ी शोभा उसका शील है ।[4]

इस प्रकार उपरिलिखित विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सुजाता में अचेतन मन के द्वन्द्व का यथार्थ निरूपण हो गया है ।

---

१ सुजाता पृ० ४३ ।
२ वही, पृ० क्रमशः १३ २२, २५ ३०, ६७, ७२, ८२ ९०, ९४ ।
३ वही, पृ० क्रमशः १४ ३३ ४४ ।
४ वही पृ० क्रमशः ६२ ८६ ।

अधूरी मूर्ति

गोविन्द वल्लभ पन्त का 'अधूरी मूर्ति' नामक नाटक राष्ट्रीय एकात्मकता की दृष्टि से मौलिक प्रयास है। इस नाटक की विशेषता यह है कि कोहिनूर का स्वामी शहंशाह मुहम्मदशाह और उसका लुटेरा सुल्तान नादिरशाह को नेपथ्य में रख दिया है।

प्रथम अंक

रफीउद्दीन नामक बड़े कलाकार के मार्गदर्शन में गोपीनाथ तथा मनजीत दो मूर्तिकार एक मूर्ति को तैयार करते हैं जो अधूरी रहती है। इसी बीच मनजीत दिल के दौरे से बीमार होता है। रफीउद्दीन सभी तरह के इलाज करके उसे बचाना चाहता है। मनजीत की पत्नी जानकी उसकी जी-जान से सेवा करती है। मनजीत के जीवन में रफीउद्दीन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण गोपीनाथ के मन में द्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता है। वह मनजीत से पूछता है क्या तुम मुसलमान हो जाओगे? तब मनजीत कह उठता है "क्या कहते हो भाई हिन्दू और मुसलमानों का रहन-सहन अलग हो सकता है लेकिन इन दोनों मजहबों की जो रीढ़ है वह एक ही तत्त्व की बनी है—ईमानदारी वह हरगिज नहीं गँवाई जाएगी।"[1] यहाँ मनजीत में उदात्तीकरण की भावना परिलक्षित होती है। इसीलिए किसी धर्म के बंधन उसे किसी सीमित दायरे में बाँध नहीं सकते हैं। तदुपरान्त रफीउद्दीन मनजीत से कहता है "तुमने न किसी को हिन्दू पैदा किया है न मुसलमान। कला अपने आप में एक मजहब है। और सबसे बड़ी कला है तन मन धन की साधना और सच्चाई।"[2] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि रफीउद्दीन में एडलर प्रणीत श्रेष्ठता ग्रंथि उद्भासित हुआ है। तदनंतर रफीउद्दीन अपनी कला के भार मनजीत पर छाप देना चाहता है। इसी वास्ते गोपीनाथ रफीउद्दीन को इसा उत्तर हुए कहता है कि क्या आपने मनजीत से कलमा पढ़वाया? उसकी इस वृत्ति में दोषारोपण भाव दिखाई देता है। इसके उत्तर में रफीउद्दीन गोपीनाथ से कहता है "हैं हैं! क्या तुम समझते हो कि उसे मुसलमान बना लेना चाहता हूँ? देखो सुन किसी मजहब से नफरत नहीं है। तुम्हें भी नहीं होना चाहिए। मैं तो उसे अपनी कला के भेद सौंप देना चाहता हूँ।"[3] यहाँ रफी

1. गोविन्दवल्लभ पन्त : अधूरी मूर्ति, प्रथम संस्करण, १९६८ पृ० ९।
2. वही पृ० २०।
3. वही पृ० ३।

उद्दीन का नतिकाह (सुपर इगो) परिलक्षित होता है। तत्पश्चात मनजीत रफीउद्दीन के मार्गदर्शन मे अधूरी मूर्ति पूरी करने लगता है, इतने मे रतलबूक और चुन्नी के द्वारा ऐसी घोषणा की जाती है कि ईरान से नादिरशाह आ रहे हैं। मनजीत एकाएक छेनी हथौडी फेंक देता है। देश को खतरे म रखकर अपने काम मे जुटे रहना उसे पसन्द नही है। वह रफीउद्दीन से कह उठता है, "आपने नही सुना ? मुल्क के दरवाजे पर जब दुश्मन आकर खडा होता है तो कलाकार अपनी कला को, पडित अपनी पूजा को नमाजी अपनी इबादत को भूलकर, किसान व्यापारी बेइमानी को साहूकार लालच को छोडकर प्रेमी अपनी प्रेयसी को त्यागकर एक हो जाते है अपने देश की रक्षा करने म ऐसा करना ही पडता है।'[1] यहाँ मनजीत म एडलर प्रणीत जीवन शैली परिलक्षित होता है इसके बाद रफीउद्दीन उससे कहता है मनजीत हमारा दुश्मन कोई नही, हम खुद ही हैं। हमारे भीतर की कमजोरी ही उसकी शक्ल म हमारे सिर पर चढकर बोलती है। शहशाह अकबर न जिस हिन्दुस्तान को बनाया था उसकी एकता क्या मुहम्मदशाह कायम रख सकते है ? प्रस्तुत अवतरण मे विदित होता है कि रफीउद्दीन के विचारो म अन्तर्दर्शन रीति (The Method of Introspections) की अवतारणा हुई है। मनजीत केवल बाबा वीर नही है। मुल्क का ऋण चुकाने के लिए अपनी मूर्ति की कल्पना को अधूरी छोडकर वह सेना म भर्ती हो जाता है।

द्वितीय अक

गोपीनाथ मूर्ति पर छेनी चलाकर चले जाने के बाद अब्दुल गफूर जानकी से कहता है "एक बेवकूफ तुझ इस उम्र म अकेली घर पर छोड गया, दूसरी तू जो ऐसे अवसर से लाभ उठाने म हिचकिचाती है। देख ये दोनो वापस नही आ सकते। मरान-जग से तुम्हारा शौहर और काल की दाढ़ म से तुम्हारा रूप।'' यहाँ अब्दुल गफूर की लिबिडो वृत्ति दृष्टिगोचर होता है तदनन्तर जानकी उससे कहती है, 'खबरदार ! अगर तुमने इससे आगे कुछ भी कहा तो मैं अपनी चीख-पुकार से भगवान का भय रखने वालो की यहाँ पर भीड लगा दूँगी।" प्रस्तुत उद्धरण से जानकी के प्रबल अहम् (स्ट्रांग इगो) पर प्रकाश पडता है। तत्पश्चात् रतलबूक की पगली स्त्री चुन्नी बड़बड़ाते हुए मूर्ति

१ अधूरी मूर्ति, पृ० ४०।
२ वही, पृ० ४१।
३ वही, पृ० ५०।
४ वही, पृ० ५१।

करने रहा। वह उससे कहता है "खबरदार जानकी मत भूलो तुम एक शहीद की बीबी हो जिस फर्ज पर इसने जान दे दी उसी फर्ज के लिये तुम्हें जिन्दा रहना है। इसके बच्चे को जन्म देकर उसके दिल में एकता का वह जज्बा पैदा करना है जिससे मुल्क में यह तबाही और बर्बादी फिर से नाजिल न हो। नये हिन्दुस्तान तक यह पैगाम पहुँचाया जाएगा कि एकता ही हमारे मुल्क की जिन्दगी है और फूट हम सब की मौत।" प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि रफीउद्दीन लालसा या स्पृहा-धरातल (Level of Aspiration) का यथार्थ परिचायक है।

रफीउद्दीन इस नाटक का प्रमुख पात्र है जो महान कलाकार होते हुए महान देशभक्त भी है। वह किसी भी हालत में अपने नैतिकाहं (सुपर इगो) से विचलित नहीं होता। मनजीत जितना एकनिष्ठ कलाकार है उतना ही देशप्रेमी। वह दिल के दौरे से बीमार होते हुए भी देश की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाता है। जानकी एक आदर्श सहचारिणी है जो आपत्तियों में भी अपने पति को पूरा सहयोग देती है। सआदतखाँ अब्दुल गफूर, कोवी, चुन्नी आदि पात्र स्वार्थी एवं बेईमान हैं।

इस नाटक के कथोपकथन स्वाभाविक, संक्षिप्त एवं गतिशील बन पड़े हैं। इनमें देशप्रेम दार्शनिकता तथा वैचारिकता परिलक्षित होती है। उदाहरणतया-

गोपीनाथ- शाह जी आप यह क्या कह रहे हैं? आप जैसे सेठ साहूकारों के धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिये अपनी जान हथेली पर रख कर वह मुल्क की सरहद पर अत्याचारी को रोकने गया है।

अब्दुल गफूर- अरे वह छेनी चलाने वाला तलवार के हाथ क्या जाने?

गोपीनाथ- लड़ाई तलवार से नहीं होती बाहुबल से भी नहीं, सिपाही विजय पाता है गरीब देशवासियों की रक्षा के उत्साह से और मातभूमि के लिये अपनी श्रद्धा और सच्चे प्रेम से।[२]

प्रस्तुत सभाषणों से ज्ञात होता है कि नाटककार ने गोपीनाथ के द्वारा देशभक्ति की भावना प्रदर्शित की है।

इस नाटक की भाषा अत्यंत संयत शुद्ध एवं सरल है। मुसलमान पात्र उर्दू शब्दों का प्रयोग करते हुये भी उनमें क्लिष्टता नहीं है। जैसे- इख्तियार खुद ब खुद एहसान, नजम, खौफ हौलदिली, शौहर, नापाक, इस्तकबाल, हिफाजत, खुशकिस्मती, मोहताज, सिफारिश तख्त-ताज, अलफाज, खुदा-

१ अधूरी मूर्ति, पृ० १०५।
२. वही, पृ० ४९।

हाफिज नास, तजरबकार, नाइत्तफाकी हागाहवास, साजिश परवरदिगार''' इत्यादि। कुछ समा न द दा न्दा म मिलकर भी बन हैं। यथा– दगा फरेब गली कूचे बकवाद खुशामद नाच कूद, दाँव पेंच हाक न्टेर टूट फट, चौख पुकार गोला बारूद अमीर उमराव सेठ साहूकार ट्म न्द बच्चे बड आदि।' भाषा को सजीव बनाने के लिये महावरा कहावता का यथाय प्रयोग हुआ है, उदाहरणतया– मुह लटक जाना छाट मह बडी बात सिर धड स जुदा करना हवा म घुल जाना मुह तावना हवा हो जाना ढिंढोरा पीटना ऊँट के मुह म जीरा, हवा म पर जमाकर चलना पाल खोलना बोटी बोटी काटना मौत के घाट उतारना इत्यादि।'' सूक्तिया द्वारा पात्रा के मनोभावा की यथाथ अवतारणा हुई है। उदाहरण के तौर पर–

(१) लालच ईमानदारी का बहुत बडा शत्रु है।

(२) एक दरवाजा बन्द हो जाने पर दूसरा अपने आप खल जाता है। यह प्रकृति का अटूट नियम है।

(३) लालची का दिल कभी नहीं भरता।

(४) बइज्जती स जीना भी क्या कोई जिन्दगी है?

(५) एकता ही हमारे मुल्क की जिन्दगी है और फट हम सब की मौत।

अतएव निष्कष के रूप म कहा जा सकता है कि इस नाटक म मतिदाह एव सहबोधावस्था की यथाथ अभिव्यक्ति हुयी है।

निष्कर्ष

गोविन्दवल्लभ पन्त के नाटका से ज्ञात होता है कि उन्होने पौराणिक ऐतिहासिक एव सामाजिक विषया को लेकर नाटक लिखे हैं जिनम कतिपय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की यथाथ उद्भावना हुयी है। उनके नाटका के प्रमुख पात्रों म प्रारम्भ मे अन्तमन का सघष एव भ्रमात्मक भाव दष्टिगोचर होता है और अन्ततोगत्वा उनम विवेक तथा सहबोधावस्था की अवतारणा होती है।

---

१ अधूरी मूर्ति पृ० क्रमश २६ ३० ३२, ३३ ३४ ३५ ३८ ३९, ४१ ५६ ५७ ५९, ५९ ६० ६०, ६३ ६९ ७९, ८२ ८३, ९०, ९१।

२ वही, पृ० क्रमश ३१ ३३, ४० ४० ४१ ४३ ४८ ५१ ५६ ६५ ७१, ७५ ९१।

३ वही पृ० क्रमश २७ ३२ ३९ ७३, ७५ ७५, ७७ ८२, ८५, ८८, ९०, ९५।

४ वही, पृ० क्रमश २७, ३१, ६५, ८०, १०५।

उनके पात्र प्रतिस्पर्धात्मक इच्छा, अपराध ग्रंथि, ओडिपस कम्प्लेक्स तथा प्रबल नतिवाह आदि मनोवैज्ञानिक उपपत्तिया द्वारा अनुशासित हैं। पन्त के सभी नाटका मे मानव कल्याण सहिष्णुता एव राष्ट्रीय एकात्मकता का उन्मुक्त प्रवाह है। उनके नाटका के कथोपकथन ओजस्वी प्रवाहमय स्वाभाविक गति शील, पात्रानुकूल एव कलात्मक बन पडे हैं। पन्त की भाषा सरल, मधुर, सयत, सुबोध, बोधगम्य कौतूहलपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। भावो के प्रवाह म मुहावरो का यथार्थ प्रयोग हुआ है। सूक्तियो मे हृदय के अन्तःस्थल क भाव उद्भाषित हो गये है।

द्वितीय अंक

चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा काम-कुंज में बैठकर आपस में बातचीत कर रही हैं। चन्द्रलेखा अनंगमुद्रा से कहती है अरी पगली अतृप्ति एक नशा है जिसका उमका साधन प्रेम उसका परिणाम है प्रेम की अंतिम गति ही तो अभिलाषा है। जिस प्रकार अस्पष्ट प्रकाश में छाया छिपी है अनन्त सागर में एक एक कण की सत्ता है उसी प्रकार जीवन की अनन्त सूक्ष्म गतियों में अभिलाषा है।[1] यहाँ मनोदगत प्रणीत मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त परिलक्षित होता है। कुछ समय के बाद चन्द्रलेखा को दासी के द्वारा सभी घटनाओं की जानकारी मिलती है। हाय! सामन्तवर के राज्य में विक्रमादित्य का नाम लेना भी गुनाह बन चुका है। यहाँ विक्रमादित्य की भान व धर्म की रक्षा और वहाँ सामन्त वर का हीन नीति ? इससे स्पष्ट हो जाता है कि सोमेश्वर अपने अहम (Ego) के आधीन हो चुका है जिसके कारण उसे कल्याण अकल्याण का विस्मरण हो गया है। अपने भाई चोलराज को गुप्त षडयन्त्र द्वारा मरवाने की वार्ता सुनकर चन्द्रलेखा सुन्न सी हो जाता है। फिर भी विपत्ति में अपना धीरज नहीं खोता। वह विक्रम के साथ युद्ध में जाने की तयारी दर्शाती है। पर विक्रम उसे मना करता है। इधर करहाट के नागरिक चन्द्रलेखा को अपनी स्वामिनी बनाने के पक्ष में हैं। प्रधान मंत्री एवं अन्य मंत्री लड़कर देश की रक्षा करना चाहते हैं।

तृतीय अंक

तुंगभद्रा के तट पर युद्ध की तयारी हो रही है। विक्रमादित्य का सेनापति सुवेग कुछ योजनाएँ बना रहा है। इतने में एक आगन्तुक व्यक्ति सुवेग से मिलने आता है जिसका नाम है नसिंह। उसका परिचय प्राप्त कराने के बाद विक्रमादित्य सुवेग से कहता है मनुष्य का आकार ही उसका परिचय है! इसकी इच्छा में आघात क्या हो ? इसको नियुक्त कर दने में हर्ज ही क्या है क्या सेनापति।[2] यहाँ विक्रमादित्य के इच्छित द्रुत चक्कर काटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि आवश्यकताओं की शीघ्रातिशीघ्र पूर्ति करना मानो खतरा मोल लेना है। वावी के राजा सगी सामन्तवर की सहायता से छलकपट कर युद्ध जीतना चाहता है। नसिंह का विक्रमादित्य का अंगरक्षक बनाने में उसी का हाथ है। इसलिए वह कहता है कि आज मैं विक्रमादित्य से पहली विजय

---

१ विक्रमादित्य, पृ० २९
२ वही, पृ० ४७

का बदला भी लूँगा और उसे उसके ही बल से हराकर आत्मतृप्ति करूँगा। तदुपरान्त चन्द्रलेखा एवं अनंगमुद्रा छद्मरूप में चेंगी के सम्मुख उपस्थित होती हैं। दोनो चतुराई से चेंगी पर प्रभुत्व जमाती हैं। दूसरी ओर करहाट से दो कोस की दूरी पर चन्द्रकेतु संन्यासी के वेश में दिखाई देता है। वह अपने आत्मनिवेदन मे कह रहा है, 'महाराज विक्रमादित्य, तुमने चन्द्रकेतु सर्प को छेड कर अच्छा नही किया। अब उसका दंशन सहन करने को तयार हो जाओ। मेरे स्थान पर सुवेग को नियुक्त करके तुमने कर्तव्य की प्रेरणा से मुझे पदच्युत कर तो दिया है परन्तु तुम्हे क्या मालूम कि मैं तुम्हारा कितना अपकार कर सकता हूँ? संसार देखे कि एक तुच्छ व्यक्ति क्या कुछ कर सकता है। मैं तुच्छ हूँ नही मेरे जीवन ध्येय है राज्याभिलाषा और तुम्हारा नाश![1]' इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि चन्द्रकेतु मे अपराध ग्रंथि एवं हीनता ग्रंथि की एक साथ अवतारणा हुई है। इतने मे ही राजकुमारो के वेश मे चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा का वहाँ आगमन होता है। उनके सम्मुख चडाशुक तथा नृसिंह के षडयन्त्र का पोल खुल जाता है। चन्द्रकेतु इन दोनो को सिंहल के वीर मानकर एकान्त में कह उठता है मेरा हृदय साक्षी देता है इस बार अवश्य इस देश का राजा बनूँगा। अहा, कैसा सुन्दर प्रदेश है। मनुष्य भी तो यहाँ के भोले भाले हैं। इस जीवन में राजा बनकर प्रजा पर शासन करूँ, बस यही एक साध है।[2] यहाँ चन्द्रकेतु के व्यक्तित्व मे युग प्रणीत अपृथकीकृत जीवन शक्ति (Undifferented Life Energy) परिष्कृत हुई है। तदुपरान्त चन्द्रलेखा एवं अनंगमुद्रा काली मंदिर के आगे एक शिला पर बैठकर अपनी विगत स्मृतियो का स्मरण करती हैं। आखिर चलते चलते घने जंगल में मार्ग भूल जाती हैं। दूसरी ओर करहाट के चारो ओर शत्रु सैन्य घेर रहा है। चन्द्रकेतु उचित समय पर नृसिंह को सावधान करता है। इतने में जय सिंह के मूर्च्छित होने की वार्ता विक्रमादित्य के कानों तक आ जाती है। इसी हालत मे शत्रु चारो ओर से विक्रम पर आक्रमण करते हैं।

चतुर्थ अंक

करहाट का प्रधानमंत्री उधेडबुन में पड़ा है। विक्रमादित्य अपने पराक्रम से चेंगी को पराभूत करता है। तदुपरान्त निराश होकर सोमेश्वर चेंगी से कहता है विचार, विचार तो बहुत कुछ हैं। हर एक विचार हर समय प्रकट नहीं किया जा सकता समय आने पर उन विचारो को सफल होते

१ विक्रमादित्य पृ० ५४
२ वही, पृ० ५६

नेगन के लिए आप मस्त रहिए और कह नहीं ।"[1] प्रस्तुत उद्धरण से सोमेश्वर के पतन अचेतन मन के मधप पर प्रकाश पड़ता है। थोड़ी देर बाद चन्द्रकेत सोमेश्वर की भेंट होता है। सोमेश्वर आखिरी दम तक प्राप्त स्थिति में कोई रास्ता ढूँढ निकालने की कोशिश करता रहता है।

पंचम अंक

विक्रमादित्य के पराक्रम से करहाट की चिंता दूर हो गई है। परन्तु सोमेश्वर के भ्रातृ विद्रोह का विक्रमादित्य को अतीव दुःख होता है। इतने में ही एक दुखिया आदमी अपना दुखड़ा रोकर विक्रमादित्य को घने वन ले जाने का उद्यत करता है। इस समय विक्रमादित्य क्षत्रिय का कर्तव्य निभाता है पर इसके उपलक्ष्य में उसे षड्यन्त्र में जंगल में फँसना पड़ता है। वह दुखिया अन्य कोई न होकर चन्द्रकेतु ही था। विक्रमादित्य घने जंगल में आते ही पूर्व योजनानुसार सोमेश्वर उस पर बाण फेंकता है। परन्तु उसी क्षण दूसरी ओर से चन्द्रलेखा सोमेश्वर पर शरसंधान करती है। अपने भाई की हत्या से क्रुद्ध होकर विक्रमादित्य अज्ञानवश चन्द्रलेखा को भूशायी कर देता है। तदुपरान्त अनंगमुद्रा चन्द्रकेतु को बाण से मारती है। उस युद्ध में सिर्फ विक्रमादित्य ही जीवित बचा। विक्रमादित्य ने करहाट का राज्य प्रधान मंत्री साम्ब को दिया और स्वयं इच्छा न होते हुए भी कर्तव्य पालन के लिए कल्याण का सिंहासन सँभालने लगा। अन्त में वह कहता है "भाई छूटा स्त्री छूटी। राज्य मिला। पर राज्य की मुझे इच्छा ही कब थी। चाहता तो कई देश जीत के चक्रवर्ती सम्राट बन गया होता ? इस राजतन्त्र से तो मुझे घृणा है।"[2] इस उद्धरण से विक्रमादित्य के अन्तर्मुखी सहजबोध प्रकार (Introverted Intuition Type) के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

इस नाटक का नायक विक्रमादित्य वीर, निःस्पृह क्षमाशील भ्रातृ स्नेही एवं उदासीन वृत्ति का है। कर्तव्यनिष्ठा एवं दार्शनिकता उसके व्यक्तित्व के स्थायी भाव हैं। सोमेश्वर कर्तव्य विमुख तथा षड्यन्त्र में रस लेने वाला हीनता ग्रंथि से लबालब भरा हुआ पात्र है। चन्द्रलेखा आदर्श भारतीय नारी है जो आखिरी दम तक अपने पति की रक्षा करती रहती है। चन्द्रकेतु महत्त्वाकांक्षी एवं विवेकशून्य सेनापति है जिसे षड्यन्त्र में हरदम असफलता मिलती रहती है।

---

१ विक्रमादित्य पृ० ६९
२ वही, पृ० ८८

'विक्रमादित्य' के कथोपकथन कहीं कहीं अधिक विस्तृत है। उदाहरण के तौर पर विक्रमादित्य के संवादों को निर्देशित किया जा सकता है। साथ ही इस नाटक के संवादों में भावुकता, कवित्व एवं मनोवैज्ञानिकता परिलक्षित होती है। यथा–

अनग––दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो चुकी हैं प्रातःकाल होते न होते युद्ध छिड जायगा। हमारा यह पहला कर्तव्य है कि सेनापति सुवेग को शत्रु के षड्यन्त्र से सावधान कर दिया जाय।

चन्द्र––परन्तु ऐसा करने से वह हमें पहचान जायगा। फिर संभव है महाराज को हमारे वेश-परिवर्तन की बात मालूम हो जाय।

अनग––(कुछ सोचकर) ऐसा होना संभव है।

चन्द्र––अच्छा हो, अब हम काली मंदिर में जा कर शत्रु की गतिविधि देखें। फिर उचित समय पर उस दैवज्ञ के द्वारा सुवेग को समाचार पहुँचा देंगे।[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों से चन्द्रलेखा के व्यक्तित्व की सहजबोध अर्थात् सम्बोधों की निकटवर्ती सजगता (Immediate awareness of relationship) दृष्टिगोचर होती है।

'विक्रमादित्य' की भाषा संस्कृत-गर्भित है। इसके प्रयोग से भाषा का सौंदर्य बल्कर भावाभिव्यक्ति में प्रभावोत्पादकता निर्माण हुई है। कुछ विशिष्ट स्थानों पर पाये गये कुछ संस्कृत शब्द–विपर्यय विषमोपषम आत्मलिप्सा, आत्म–कामना, स्वार्थ–तोय, नीलशिखा–कण वाग्दीक्षा स्वास्ति श्रीमच्चरण–संक्रम–प्राप्त–विक्रम–त्रिजय–विभूति–परिसेवित पादारविंद–शोभिता खण्ड–भूमण्डल महाराज विक्रमादित्य, देदीप्यमान, सधांशु निष्पक्षपातिता कपट–प्रवचना, हविष्य, मधुप, अभीष्ट, जीवनोत्सर्ग[2] इत्यादि। इस नाटक में कई स्थलों पर काव्यमयी भाषा में बड़े कलात्मक चित्र प्राप्त होते हैं। ऐसे स्थलों पर नाटककार का सौंदर्यशील कवि हृदय अभिव्यक्त हुआ है। प्रमाण स्वरूप निम्नलिखित अवतरण प्रस्तुत हैं।

(१) बीन बजा कर जिस प्रकार सपेरा साँपों को पकडता है, नाद सुना कर व्याघ्र जिस तरह मृग पर हमला करता है, इसी तरह कूटनीति के चक्रों से वंचना के वचनों से हमें विक्रम का नाश करना

---

१ विक्रमादित्य, पृ० ५९

२ वही पृ० क्रमशः १३ १६, १८ १९ १९ २१ २३, २८, २९, ४९, ४९, ५०, ५८ ७३ ८७।

है। मेरी प्रतिहिंसा की अग्नि म जब तक उसका विजय और प्रयोजनरूप समस्त भस्म नही हो जाता तब तक हृदय म शान्ति की रमणी अपना गायन न सुना सकेगी।

(२) पूर्णमासी के चन्द्रमा की चादनी के समान स्वच्छ स्फटिक के समान श्वेत, मानस हस के समान निमल कमल के समान कोमल नव नीत के समान मदुल हृदया को वज्र के समान कठोर पाप के समान काला परनिन्दा के समान कुत्सित तून कब नही बनाया ?

(३) यह चकोरी उस शरद्-धवल निमल हिमाशु को देखकर कितनी शान्ति लाभ करती है यह वे ही जानें जिन्होंने विरह-विदग्ध हृदय में प्रियतम का आलिंगन किया है।

(४) क्षोभ के ताण्डवनृत्य से शरीर की प्रत्येक नाडी समुद्र के ज्वार के समान विद्रोह की उर्मि उठाकर लालमा रूपी चन्द्र को छूना चाहता है।[1]

भावो के प्रवाह मे सहजता के साथ कुछ मुहावरा का प्रयोग हुआ है। यथा—आटे दाल का भाव मालूम होना पल्ले पडना उतारू हो जाना दाँत पीसना दाल म काला होना डींग हाँकना गुड-गोबर हो जाना[2] इत्यादि। निम्नलिखित सूक्तियो म प्राय जीवन के चिरतन सत्य का चित्रीकरण हुआ है।

(१) ससार में कूटनीति ही सबसे बडी नीति है।

(२) तृष्णा के अन्तस्तल म बठी हुई इच्छा से ससार की उत्पत्ति है।

(३) विवेकहीन स्वातन्त्र्य मनुष्य को क्या कुछ नही बना देता।

(४) अतृप्ति एक नशा है।

(५) नीति कहती है एक अपरिचित व्यक्ति को भेद बताना मूर्खता है।

(६) क्षमा से शत्रु भी ठीक हो जाते हैं।

इस नाटक के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि इसमे कार्यात्मवादी मनोविज्ञान के सिद्धान्त का यथार्थ निरूपण हुआ है।[3]

दाहर अथवा सिंध पतन

उदयशकर भट्ट ने दाहर अथवा सिंध पतन नामक नाटक में भारत

---

१ विक्रमादित्य पृ० क्रमश १६ ३३ ३४ ५२

२ वही, पृ० क्रमश १० २५ २५ ३१ ४३ ४६ ६७

३ वही पृ० क्रमश १५ २१ २७ ३०, ५१, ७५

की धार्मिक प्रवृत्तियो एव अधविश्वासो द्वारा हुए विध्वस का यथार्थ निरूपण किया है ।

प्रथम अक

देवल के राजपथ पर मानू एव सिलबन नामक दो डाकुओ म वार्तालाप चल रहा है । सिलबन मानू से कहता है कि मेरा जी अब इस काम से उचट सा गया है । मैं कहने को तो सब कुछ करता ही हू, पर जसे कोई मुझे भीतर ही भीतर टोच रहा हो । इतन म ही एक सरदार आ जाता है जो मानू के सम्मुख महाराज दाहर की प्रशसा करता है । उसके द्वारा अरबियो की लूट की जानकारी मिलती है । दूसरी ओर दाहर एकान्त म अपन आत्मनिवेदन म कहता है । 'दुर्भाग्य ने बौद्धो को अपनाकर ही शाति लाभ नहीं की, उसने हिंदुओ के चमकते हुए भाग्याकाश मे ऊचनीच के वर्ण भेद का काला मेघ उत्पन्न करके अविवेक का अधकार भी भर दिया है । स्वर्गीय पिता, तुम्हारे इस प्रमाद का फल मुझे भोगना पडेगा । सिन्ध मे जो वीर जातियाँ थी, उन्हे तुम्हारे ऊच नीच के भावो न मसलकर विनष्ट कर डाला । हाय, व लोहान, जाट और गूजर जो हमारे राज्य की शोभा, वीरता की मूर्ति थे, आज ऊँच नीच क विचारो स पददलित हो रहे हैं । वीरता शूरता, दृढता, धीरज का अब उनम नाम ही रह गया है ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण स विदित होता है कि दाहर अपने आदर्शों तथा मान्यता के अनुसार काम करने की कोशिश कर रहा है जिसम रैक प्रगति विधायक (Positive will) दष्टिगोचर होता है । एक दृश्य मे हैजाज की सभा म बगदाद के खलीफा वलीद बठा है । हैजाज खलीफा से कहता है कि मैं इस्लाम क विपरीत किसी चीज को ससार मे नहीं देखना चाहता । खलीफा युद्ध के सब सूत्र हैजाज के हाथो म सौंप देता है । दूसरे एक दृश्य मे अलार के वन म भिखारी क वेश मे सूय और परमाल जीवक क साथ बातचीत कर रही है । एक सभाषण मे जीवक सूय स कहता है 'जानने का ज्ञान जिसे हो वही जानता है । मनुष्य है वह पशु नही । ज्ञान गुण है वह द्रव्य म रहता है द्रव्य ससार की सभी वस्तुओ को कहते हैं, इसीलिए सभी सब कुछ जानत हैं ।'[2] यहां जीवक मे गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की झाँकी दृष्टिगोचर होती है । इतन म आगन्तुक द्वारा हैजाज का एक पत्र आता है, जिसमे अरबो क आक्रमण के समय अलाफी स सहायता माँगी गई है । इसी बीच खलीफा के दूत द्वारा भावी युद्ध की जानकारी

१ उदयशकर भटट दाहर अथवा सिंध पतन दूसरा सस्करण, पृ० १०

२ दाहर अथवा सिंध पतन, पृ० २१

मिलती है। इस अवसर पर दाहर कहता है, 'हम लोग आर्य हैं, हम म क्षत्रिय हैं एवं बगदादी राजा की तो बात ही क्या यदि समस्त संसार भी दाहर पर अनुचित दबाव डालकर उसके देश को छीनने की चेष्टा करेगा तो दाहर उसके दाँत खट्टे कर देगा। आर्य लोग स्वयं हो किसी से छेड़छाड़ नहीं करते। यदि कोई हमें इस द्वारा उग्र कोई पददलित करना चाहे तो एक बगदादी राजा क्या एक सहस्र राजा भी हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।' यहाँ दाहर में राष्ट्रीय भावना एवं महत्वपूर्ण गुण आत्मविश्वास (Self Confidence) की अवधारणा हुई है। इन के बिना होते हो दाहर को पुत्र जयशाह सभा में कहता है कि हम नगर में मिल इन अरबियों को नाश कर दें। तत्पश्चात् दाहर चलचलना की हिमारा में क्रमागती हुई रवत नदी की नौका को बनाने के लिए योग्य कार्य कर रहा था । शान्ति करना है। इस बात पर जयशाह में कहता है अपने वीर लोहाना जाट गुजरों को उनके पूर्वाधिकार प्रदान करो। बलराम को मेरा सन्देश दे दो आओ।' इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि दाहर में कुछ नव विचार हैं जो पूर्वधारणा एवं सामाजिक द्वंद्व (Prejudices and Social Conflicts) की अभिव्यंजना देते हैं।

द्वितीय अंक

हैजाज के द्वारा उसकी लड़ाई के लिए बनायी योजनाएँ विदित होती हैं। दूसरे दृश्य में परमाल प्रासादोद्यान में बीणा लिए गा रही है। उसके संभाषण से उसकी काव्यात्मक प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है। कुछ देर बाद ज्ञानबुद्ध महापद्म से कहता है नहीं हम लोगों के विचार से युद्ध करना अधम है। और महाराज तुम जानते हो मैं अधर्म का पालन नहीं कर सकता भगवान के आदेश के विरुद्ध नहीं चल सकता।' यहाँ धर्म के नाम पर ज्ञान बुद्धि अपनी कायरता छिपाना चाहता है। फ्रायड की दृष्टि में यह मानसिक दुर्बलता ही है। अन्य एक दृश्य में अल्हला अपने सेना नायक से बातचीत कर रहा है। उसके संभाषण से ज्ञात होता है कि उसका प्रत्येक सैनिक आत्मविश्वास के साथ युद्ध के लिए उद्यत है। तदुपरान्त दाहर अपने लोगों के सम्मुख कुछ मौलिक विचार प्रदर्शित करता है। इतने में एक पुरोहित की वाणी गूँज उठती है पृथ्वीनाथ धर्मशास्त्र इन लोगों के साथ कोई ऐसा

१ दाहर अथवा सिंध पतन पृ० २५

२ वही पृ० २८

३ वही, पृ० ४०

यवहार करने की आना नही देता जिससे ये लोग उच्च जाति के लोगो से मिल सकें। स्वर्गीय महाराज चचने जो विधान बनाये थे उनमे ...'[1] यहाँ पुरोहित म धम पर आधारित पूवधारणाएँ (Prejudices based on Religion) उमड पडी हैं। परन्तु दाहर पुरोगामी विचार का राजा है। वह सभी के सम्मुख कहता है 'स्मृतियाँ भी ऋषियो न बनाई हैं। क्या समय की आवश्यकता के अनुसार ऋषियो ने उनमे परिवतन नही किए है ? यदि सब स्मतियाँ एक सी ह तो इतनी स्मतियो के निर्माण का क्या प्रयोजन ? इससे स्पष्ट है कि वे स्मतियाँ समय के अनुसार लिखी गई हैं।"[2] इस उद्धरण से विदित होता है कि दाहर को धम के सच्चे रूप का परिचय है। क्योकि वण जातियो के परे, सुख दुखो के परे जो है वह सब आनन्दमय है। धम का अतिम सार यही है।"[3]

तृतीय अक

हैजाज अपने दरबार मे बठा है। वह अपने आत्मनिवेदन मे कहता है कि देश के इतिहास म हैजाज का नाम पराजय मे नही लिखा जा सकेगा। इसीलिये वह मुहम्मद बिनकासिम को अपने सैन्य का सेनापति नियुक्त करता है। दूसरी ओर देवल के राजपथ म कुछ ब्राह्मण तथा बौद्ध श्रमणो की परस्पर बातचीत हो रही है। उस बातचीत से उनके प्रतिगामी विचारो पर प्रकाश पडता है। तदुपरान्त सूय और पारमल के बीच हुए वार्तालाप से विदित होता है कि भावी युद्ध म बुद्ध और ब्राह्मण लडने वाले नही हैं। दाहर लोहान जाटो और गूजरो का पक्ष लेने के कारण मोक्षवासव उच्च जातियो को उसके विरुद्ध बतरह भडका देता है। नागबुद्ध भी आग म घी डालने का काम करता है। इसके बाद कासिम अपने सहायक हारून स कहता है हारून बहादुरी और विलास ये दोनो एक-दूसरे के विपरीत है। विलास करने वालो ने कभी राज्य नही किया। जिस फौज म अय्याशी घुस गई वह कभी अपनी हुकूमत ठीक ठीक नही रख सकता। तुम्हे मालूम है पहले अरबो लोग शराब, औरत और आपस की लडाई म तबाह हो गए। नहीं भाई अब हम लोगो का निशाना दूसरा है। हारून, कासिम अब भारत को खलीफा का राज्य बना कर ही लौटेगा या वहीं उसकी कब्र बनेगी। यहाँ कासिम म नेता के दो

१ दाहर अथवा सिंध पतन, प० ४५

२ वही, पृ० ४६

३ स० अ० डाग हिंदू धम आणि तत्त्वज्ञान, आवृत्ति पहिली, पृ० ५०५

४ दाहर अथवा सिंध पतन, पृ० ६८

प्रमुख गुण परिलक्षित होते हैं। एक है विशेषज्ञ के रूप में नेता (The Leader as Expert) दूसरा है नीति निश्चय करने वाले रूप में नेता। (The Leader as Policy Maker) दूसरी ओर दाहर युवराज जयशाह, मंत्री क्षणाकर वीर मानु प्रभृति के साथ मंत्रणा कर रहा है। इतने में एक ज्योतिषी द्वारा दाहर के कार्य में विघ्न उपस्थित किया जाता है। ज्ञानबुद्ध की ही यह कुटिल नीति होती है। ऐसी हालत में भी दाहर अपना धैर्य खोता नहीं। वह युवराज से कहता है कि बेटा तुम्हारे बल बूते पर ही युद्ध का भविष्य है। तदुपरान्त सूर्य पुरुषों एवं स्त्रियों से सेना में भर्ती होने का अनुरोध करती है।

चतुर्थ अंक

दाहर युद्ध की तैयारी में व्यस्त है। इतने में दूत के द्वारा युद्ध का समाचार मिलता है। दाहर स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। हाय ! कुछ क्षणों के बाद ही सिन्धु के तट पर युद्ध में वह मारा जाता है। युवराज जयशाह भी क्षतविक्षत हो जाता है। उसके द्वारा विदित होता है कि आपसी भेद एवं धर्म पर अधश्रद्धा ही देश के विनाश का मूल कारण है। इसी कारण मुहम्मद बिनकासिम को जय मिलती है। इस जय के भागीदार ज्ञानबुद्ध तथा मोक्षवासव को उचित प्रायश्चित्त मिलता है। लोगों द्वारा उन दोनों की हत्या हो जाती है। देश की विकट अवस्था में भी सूर्य और परमाल अपने प्रण से विचलित नहीं होतीं। अरब की यात्रा का संकेत कर सूर्य परमाल से कहती है विकट परिस्थितियाँ भी संसार की यात्रा का एक अंग हैं ? धैर्य से देखो क्या होता है। अब हम लोग खलीफा के पास ले जाई जा रही हैं। वहाँ क्या होगा यह भी देखना होगा जिस दिन विलास का पात्र बनने की घड़ी आएगी उस दिन हम लोग स्वर्ग में विहार करेंगी। परमाल, बहनी मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की आग धधक रही है। मैं पिता का बदला लूंगी, अपने देश का बदला लूंगी।''[१] इस उद्धरण से सूर्य के देश प्रेम पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ सूर्य में मक्डूगल प्रणीत सवेग–सम्बोध दृग्गोचर हुआ है। यह सवेग एक ऐसी मानसिक शक्ति है जो सूर्य के व्यवहार को चरम सीमा पर ले जाती है।

पंचम अंक

बगदाद के राजदरबार में हैजाज एवं खलीफा में उपहार को लेकर

---

१ दाहर अथवा सिंध पतन पृ० ९८

बातचीत हो रही है । इतने म परमाल तथा सूय को महल म लाया जाता है । तब सूय खलीफा स कहता है कि कासिम न छल स हमारा घर उजाड डाला। इससे खलीफा क्रोधायमान हो उठता है । वह कासिम का ला'न खाल मे भरवा लान की आना करता है । सूय के सम्भाषण से विदित हाता है कि उस शत्रु का प्रतिशोध लने म सफलता मिली है । अन्त मे सूय और परमाल एक दूसरे को खजर भोककर मरते हुए कहती हैं "मत्यु हमार लिए खेल है । प्रतिहिंसा पूण हुई । इस बीभत्स काण्ड मे, स्वर्णाक्षरो म सिंध का बदला लिखा रहेगा । [1] यहाँ सूय और परमाल के नतिकाह (Super Ego) की प्रबलता परिलक्षित होती है, जो भारतीय नारी की महत्ता सिद्ध करती है ।

इस नाटक के नायक दाहर मे देशनिष्ठा मानवता, पुरोगामी विचार, धम आदि कई गुणो का समन्वय हुआ है । देश की जाति प्रवति को धूल मे मिलाने का उसका प्रयास उसके व्यक्तित्व का बिलोभनीय विशेष है । जयशाह देशभक्ति एव निभयता का आदश प्रतीक है । यदि ब्राह्मण एव बौद्ध देश के प्रति विश्वासघात न करात तो जयशाह देश का सिरमौर बन जाता । अब्दुल बिनकासिम आपसी भेद से लाभ उठान वाला एक धूत सनापति है । सूय और परमाल जीवन के अतिम क्षण तक कायावाचा मनसा भारतीय गौरव को अक्षुण्ण रखन का प्रयास करती रहती है । इन वीरागनाओ का बलिदान भारतीय नारी की श्रेष्ठता का परिचायक है ।

दाहर अथवा सिंध पतन के कथोपकथन दाशनिक कवित्वमय एव मनोवैज्ञानिक शली से युक्त है । सक्षिप्तता एव गतिशीलता उनका विशिष्ट गुण है । उदाहरण के तौर पर—

ज्ञान—बुड्ढा बडा अनुभवी निकला । इससे काम बनन की आशा नही है । हमने सोचा था इसका आदश लकर प्रान्त के समस्त बौद्धो को युद्ध के विरुद्ध उत्तजित किया जाय ।

मोक्ष—पर उसन अन्त मे जो कुछ कहा वह बात मरे हृदय मे जस बार बार चोट करती है । परन्तु स्मरण रहे कि दश विद्रोह सबस बडा विघातक शत्रु है ।

ज्ञान—अरे भोले भाई, य बातें राजनीतिज्ञ के लिए नही हैं । साधारण गहस्थ ही इन बातो पर विश्वास कर सकत हैं, हम नहा ।

मोक्ष—हाँ और क्या ? राज्यप्राप्ति की आशा म य चोट उतनी उत्तेजक नहा है ।[2]

---

१ दाहर अथवा सिंध पतन, पृ० १०७ ।

२ वही, पृ० ६५ ।

उपयु क्त कथोपकथना म नानबुद्ध एव मोग्गवासव की जीवन 'ली (Style of Lif) पर प्रका पडता है। इन दोना म एड र प्रणीत हीनता ग्रथि (Inferiority Complex) का भी परिचय मिलता है।

"स नाटक की भाषा सरल सीधा एव प्रभावोत्पादक है। भावोचित "ब्द निमाण एव "ब्द चयन क कारण सक्ष्म भावो की अभि यक्ति सरलता से हुई है। इसम नाटकत्व एव कवित्व का सामजस्य सु दर रूप स हुआ है। उदाहरणतया--

(१) कही सत्य के मामान स्पष्ट कहा असत्य रूप स अस्थिर कहा कामलागिनी वीरागना क समान छलमयी समय के उलट फर म हिंसा की उग्रता म दयालुता क आँचल म स्वाथ की गोद म उदारता की ओट म धन रत्न क प्रलोभन म राजनीति सदा अपनी साधना म जुटी रहती है।

(२) हारिल प ी लकडी पर बठकर जसे उस छोडना नही चाहता उसी तरह ससार म सौन्य कभी कभी देख पडता है। सगीत चित्र और का य मनुष्य और प्रकृति की किरणें हैं। जिनम मनुष्य का विषाद खो जाता है। न जान मनुष्य अपने भीतर के सौन्य और गा ति को खोकर क्यो दु खी रहता है? आह यह ससार कितना मधुर है कितना स्पृहणीय?

(३) उत्कट प्रभजन क भाक स स्वतन्त्रता का कमल टूटकर मिट्टी म मिल गया। विद्रोह क स्फुलिंगो म परतन्त्रता का चित्र दिखाई पड़ने लगा। विलास क साधना म उत्तजना जिस प्रकार विनाश का ओर अग्रसर होती है ठीक इसी तरह विभाषणो की विलास कामना म सिन्धु का ना" हो गया आह ?[१]

'दाहर अथवा सि ध पतन' म मुहावरो एव कहावतो का यथोचित प्रयोग हुआ है, जिनका उपस्थिति स पात्रा की मनादशा परखी जाती है। यथा--जल म रहकर मगर स बर करना रोब जमाना चकमा देकर भागना दाँत गडाय बठना मु ह की खाना पाला पडना दात खट्टे कर देना दाँत पीसना, नाक म दम भरना मक्खिया उडाना गुड गोबर हो जाना, धावा बोल देना, पानी फिर जाना बाडा उठाना, हाथ धो बठना आटे दाल का भाव मालूम होना, मुँह काला करना छक्क छूट जाना, आँखें फाडकर देखना कुत्ता का मौत मर जाना[२] इत्यादि। इस नाटक म यत्र तत्र कुछ सु दर सूक्तिया सीप

१ दाहर अथवा सि ध पतन, क्रमश पृ० ६, ३१ ६७।
२ वही, पृ क्रमश २ ४ ५ ९, ९ १६ २५ २९, १५, ३६, ३६, ४४, ४९, ६३, ६४, ६७, ७०, ८८ ९५ १०५।

मे मुक्ता के समान प्रतिष्ठित हुई हैं । उदाहरणतया—

(१) न्याय कठोरता मे झुलसकर कुछ लोग अपने आप ही राज्य के विरुद्ध हो जाते है ।

(२) काँटा उपेक्षा की दृष्टि से बाहर फेंक देने पर भी अवसर आते ही पर मे चुभकर पीडा पहुँचाता है ।

(३) भय एक निबलता है ।

(४) विश्वास और कम दो पथक वस्तुएँ हैं ।

(५) मनुष्यता से गिरे हुए व्यक्ति छलछिद्र से काय सिद्धि की आशा करते हैं ।

(६) कम की श्रेष्ठता प्रत्येक व्यक्ति के अपने दनिक व्यवहार पर निभर है ।

(७) ससार मे केवल ठीक राज्य-व्यवस्था रखने से ही काम नही चलता, उसकी नीव दढ करने के लिए वीरता देश प्रेम और विवेक की आवश्यकता है ।

(८) विद्रोह सबसे बडा विघातक शत्रु है ।

(९) झूठ भ्रम और अनथकारी धारणाएँ व्यक्तित्व के विकास म बाधक शक्तियाँ हैं ।

(१०) धीरज सबसे बडा भूषण है ।

(११) विलास करने वालों ने कभी राज्य नही किया ।

(१२) ससार म विश्वासघात के भाव इतने दुरूह और गुप्त हैं कि उनको जानना मानव शक्ति से बाहर है ।

(१३) परिस्थितियाँ ही विचारो मे तारतम्य और उनकी उत्पत्ति और विनाश का कारण हैं ।

(१४) सब कुछ नाश होने पर निज शुभ की आशा करना मूखता है ।

(१५) मत्यु शत्रुता, मित्रता उदासीनता के नाटक की जवनिका है ।

(१६) उत्पत्ति और नाश इस ससार रूपी पात्र के किनारे है ।[१]

इस नाटक के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसम एडलर प्रणीत उपपत्तियो को स्पष्ट करने का अभिनव प्रयास हुआ है ।

विद्रोहिणी अम्बा

विद्रोहिणी अम्बा यह उदयशंकर भट्ट का लिखा हुआ पौराणिक नाटक

---

१ दाहर अथवा सिंध पतन पृ० क्रमश ६ ७ २१, २४, २७, ४६, ४८, ६४, ६४, ६६, ६८ ७२ ७३, ८५ ९१, ९७ ।

है जिसमे तत्कालीन एव आधुनिक नारी का यथायोग्य चित्र प्रस्तुत हुआ है।

प्रथम अक

काशिराज प्रातकाल के समय अकेला घूमते हुए अपने आत्मनिवेदन म कहता है, 'अशुभ महा अशुभ ऐसा स्वप्न क्या कभी देखा था ! वह तो जस मरी आँखो के आगे अभी तक घूम रहा है। एक गोरे रग का विकट आदमी मरी कन्याओ को जबरदस्ती उठाये लिए जा रहा है। इस्पात की तरह कठोर शरीर, आँखो म एक अपूव तेज मुह पर विलक्षण चमक शरीर मे राक्षसा जसा अथक बल ओह बडा विलक्षण स्वप्न '[1] यहाँ काशिराज फ्रायड प्रणीत आत्मगतात्मक स्वप्न देखता है। इसम उसकी दमित इच्छाओ की प्रतीकात्मक और भ्रमात्मक रूप की जानकारी मिलती है। तदुपरान्त अम्बा गगा तट पर दिखाई देती है। वह अपने पिताजी न जो स्वप्न देखा वह अपनी सखियो स कह रही है। इतने मे ही शाल्व वहाँ आ जाता है। शाल्व और अम्बा एक दूसरे को देखते हैं और परस्पर अनुरक्त हो जाते है। इसके बाद शाल्व एकान्त म अम्बा का चिंतन करते हुए अपने आत्मनिवदन म कहता है 'अम्बा कितना सुदर नाम है ! मैं मयादावश उस एक बार दष्टि भरकर देख भी न पाया। उस कुलीना ने भी मुझे देखकर दष्टि फर ली। मैं इसी हेतु आया था कि चित्रस्थ काशिराज की कन्या को प्रत्यक्ष रूप स एक बार किसी तरह देख पाऊ। सम्पूण साहस एकत्र करना होगा। करूँगा यही मरा स्वप्न है।[2] यहाँ शाल्व की वत्ति म विस्थापन (Displacement) परिलक्षित होता है। दूसरी ओर सत्यवती के दो पुत्र चित्रागद एव विचित्रवीय आपस म बातचीत कर रहे हैं। थोडी दर प्रतिहारी दौडकर आता है और कहता है कि चित्रसेन नामक गधव ने हस्तिनापुर पर चढाई कर दी है। चित्रागद तुरन्त लडने के लिए जाता है। विचित्रवीय डरपोक होने के कारण जाता नही। अन्य एक दृश्य म अम्बिका अम्बालिका एव अम्बा म उनके पिताजी के स्वप्न पर बहस हो रही है। इसके बाद भीष्म एव व्यास क बीच हुआ वार्तालाप मनोविज्ञान की दृष्टि स दष्टव्य है। भीष्म व्यास से कहता है, कतव्य, क्या अब भी वह कतव्य है जिसने मरे मानसविवक म कुहलिका भर दी है ? मैं जल रहा हू। क्या वह मरा प्रमाद था। '[3] यहाँ भीष्म क चेतन-अचेतन मन

---

१ उदयशकर भटट विद्रोहिणी अम्बा द्वितीय सस्करण प० १७।
२ वही, प० ३०।
३ विद्रोहिणी अम्बा, प० ४४।

के द्वन्द्व का यथार्थ निरूण हुआ है। आखिर भीष्म चित्रसेन से लड़ने के लिए आता है। इसके अनन्तर युद्ध के क्षेत्र मे चित्रांगद बेहोशी में कुछ बडबडा रहा है, जिसमें उसकी हीनता ग्रंथि उमड पड़ी है। थोडी देर मे ही उसकी मृत्यु होती है। तदुपरान्त भीष्म एवं चित्रसेन मे युद्ध होता है जिसम चित्रसेन की हार हो जाती है।

द्वितीय अंक

काशिराज के प्रमाद उद्यान में बैठकर अम्बा अपने आत्मनिवेदन म कह रही है 'पिता स्वयम्वर की तैयारी कर रहे हैं। यदि वह न आये न आ सकें, ओह् ध्यान आते ही हृदय चूर चूर हो जाता है। नहीं वह जरूर आएँगे। क्यों न आएँगे ? उनके हृदय म भी तो वैसी ही उथल पुथल है। शाल्वराज ? आओ, यह हृदय तुम्हारे ही स्मति कणो म बना है तुम्हारी आकाक्षाओ की धड़कन से ही गतिमान है, प्रिय ! एक बार फिर ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि अम्बा पुनस्मरण म व्यस्त है। यहाँ तीव्रता या सजीवता का नियम (The Law of Vividness of the Intensity of Interest) परिलक्षित होता है। इतने म काशिराज वहाँ आ जाता है। उन दोनो मे विवाह के बारे म बातचीत होती है। अम्बा नारी स्वातन्त्र्य को लेकर कुछ विभोर प्रदर्शित करती है। दूसरी ओर कुछ नवयुवक और वद्धश्रवा मे स्वयम्वर को लेकर वार्तालाप हो रहा है। इतने म ही वहाँ भीष्म का आगमन होता है। इस समय वद्धश्रवा भीष्म से कहता है 'ये लोग मुझे बूढ़ा समझ रहे हैं। मैं कहता हू मैं युवा हूँ। आप कहेंगे कैसे ? मैं कहता हू मेरा मन अभी जवान है। (अकडकर) डील डौल सब दुरस्त।'[2] यहाँ वद्धश्रवा म फ्रायड प्रणीत लिबिडो प्रवृत्ति का परिष्कार हुआ है। इसके बाद के एक दृश्य म सत्यवती उद्विग्न अवस्था मे सोचते हुए अपने आत्मनिवेदन म कहती है न जाने मैंने किस अशुभ घडी म मुनि से यह वरदान माँगा था ! पर अब क्या हो सकता है, तीर छूट गया। मुझे जीवन म केवल एक सहारा मिला और वह भी टूटा हुआ। एक हृदय मिला वह भी क्षुब्ध और व्यग्र।'[3] यहा सत्यवती म प्रक्षेपण (Projection) भाव दिखाई देता है। इतने मे ही विचित्रवीर्य वहाँ आ जाता है। सत्यवती उसे शादी के लिए उद्यत करती है। उसी के एक समापण स विदित होता है कि भीष्म को काशिराज की कन्याओं का हरण करने के लिए

१ विद्रोहिणी अम्बा पृ० ४९।
२ वही पृ० ५९।
३ वही, पृ० ६०

भेजा गया है। इसके बाद स्वयम्वर का दृश्य दिखाई देता है। स्वयम्वर मण्डप में कुछ युवकों में परस्पर वार्तालाप और बाद में झगड़ा होता हुआ परिलक्षित होता है। अन्त में भीष्म कन्याओं का हरण करने के लिए वहाँ आता है। सब लोग उसका विरोध करते हैं परन्तु विरोध होने पर भी भीष्म अम्बा अम्बिका एवं अम्बालिका को लेकर चला जाता है। इससे काशिराज के स्वप्न की सचाई सिद्ध होती है। इसके अनन्तर सत्यवती अपने महल में विचित्रवीर्य के सम्मुख अपनी सुन्दर बहुओं की प्रशंसा करती है। इतने में वहाँ अम्बा का प्रवेश होता है। वह रोष के साथ सत्यवती से कहती है — सत्यवती यदि मेरी अवस्था में तुम होती तो जानती कि मेरा कितना अपमान ... (होंठ फड़कने लगते हैं।) तुम्हारे अविवेकी पुत्र ने मेरा और मेरे भावी पति ... ।[1] यहाँ सत्यवती में स्वाभिमान प्रत्याक्रमण परिलक्षित होता है। इसके बाद सत्यवती को अम्बा और शाल्व का प्रेम मालूम होता है और वह उसे शाल्व के यहाँ जाने के लिए इजाजत देती है।

तृतीय अंक

सौभ नरेश शाल्व अपने निजी स्थान पर दुःखी दिखाई दे रहा है। इतने में ही अम्बा आ जाती है। उसको देखते ही शाल्व उससे कहता है — हैं यह क्या? अम्बा तुम यहाँ? कहीं मेरे कान धोखा तो नहीं दे रहे? आँखों की पुतलियों की चपलता ने कहीं चौंधिया तो नहीं दिया? तुम आ गई, प्रिय! तुम भीष्म के वज्र के समान कठोर पंजों में मत होकर कैसे आ गई? मेरे हृदय की गति बोलो। (आलिंगन को हाथ बढ़ाता है) नहीं ठहरो (कुछ सोचकर) तुम उच्छिष्ट हो। आकाश से भरे यतन में गिरी हुई अमृत की बूँदें भी पीने योग्य नहीं होतीं। स्त्री ही संसार में एक ऐसा पदार्थ है जो एक बार केवल एक बार स्पर्श किया जाता है।[2] यहाँ शाल्व में कल्पनाप्रियता (Phantasy) का तीव्र आवेग दिखाई देता है। इसके बाद अम्बा शाल्व से शादी की प्रार्थना करती है परन्तु उसका भीष्म के द्वारा अपहरण होने से वह तैयार नहीं होता। अम्बा को वहाँ से विवश होकर जाना पड़ता है। तदुपरान्त अम्बा एकान्त में अपने आत्मनिवेदन में कहती है — शाल्व! नीच शाल्व! सौन्दर्य के दीपक पर जल मरने वाले पतंगे! रूढ़ियों के दास! जाने दो इसमें उसका दोष ही क्या है? सब दोष मेरा है, मेरा। मेरा दोष है। पर मैंने क्या किया? इसमें मेरा क्या वश था? जाने दो इन बातों को।[3]

---

१ विद्रोहिणी अम्बा पृ० ७३ ।
२ वही, पृ० ७४-७५ ।
३ वही, पृ० ७९ ।

यहाँ अम्बा के अहम (Ego) को ठेस लगी हुई प्रतीत होती है। वह बचन हो उठती है। भीष्म का प्रतिशोध लेने के लिए परशुराम का आश्रय लेती है। इसके बाद के एक दृश्य में अम्बालिका एवं अम्बिका विचित्रवीर्य की बीमारी के बारे में गम्भीरता के साथ सोच रही हैं। विचित्रवीर्य असहाय अवस्था में है। इसके बाद के एक दृश्य में भीष्म और परशुराम के बीच वार्तालाप होता है। परशुराम भीष्म से कहता है कि तुम अम्बा से विवाह करो और शान्तनु के वंश को चलाओ। परन्तु भीष्म अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नहीं होता। परिणाम स्वरूप दोनों में युद्ध होता है और उसमें परशुराम की हार होती है। आखिर अम्बा सभी ओर से निराश हो जाती है। शिवजी की बड़ी उपासना करती है और वरदान के रूप में भीष्म के नाश का कारण बनने की याचना करती है। शिवजी का वरदान मिलते ही उसका कमजोर अहम् (Weak Ego) प्रतिशोध की भावना में परिणत होता है। अन्त में वह गंगा में कूदकर आत्महत्या कर लेती है और शिखंडी के रूप में पुनर्जन्म लेकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है।

इस नाटक की नायिका अम्बा अहम से परिचालित पात्र है, जिसमें नारी जाति की विवशता यथार्थ रूप में परिणत हुई है। वह शाल्व से तिरस्कृत होते ही भीष्म का प्रतिशोध लेने के लिए उद्यत होती है। भीष्म (देवव्रत) जटिल प्रकृति वाला पात्र है और वृद्धश्रवा वासना परिचालित। चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य की हीनता ग्रस्तता द्रष्टव्य है। अम्बिका, अम्बालिका एवं सत्यवती में भारतीय नारी की मर्यादा परिलक्षित होती है। इस सन्दर्भ में डा० नगेन्द्र ने कहा है "अम्बा और भीष्म नाटक के प्रधान पात्र हैं, परन्तु इनका व्यक्तिगत विरोध नहीं है भीष्म के हृदय में अम्बा के प्रति अनुकम्पा है। ये दोनों तो प्रतीक पात्र है--भीष्म प्रतीक हैं अभिमानी पुरुषत्व के, अम्बा प्रतिकृति है पीडित किन्तु जाग्रत नारीत्व की। इस संघर्ष को लेखक निष्पक्ष अथवा तटस्थ होकर नहीं देख सका--वह अम्बा की सहायता के लिए परशुराम की भाँति अपना सम्पूर्ण प्रतिभा बल लेकर आ खड़ा हुआ है। परशुराम तो भीष्म से हार गये पर तु लेखक अम्बा को पूर्ण विजय कराकर ही मानता है--शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की।'[१]

इस नाटक के कथोपकथनों के द्वारा कथानक स्वाभाविक रूप में विकसित हुआ है। इस नाटक के संवाद दार्शनिक, कवित्वमय, हृदयग्राही, चुटील एवं मनोवैज्ञानिक बन पड़े हैं। यथा--

---

१ डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक, नवीन संस्करण, पृ० ८७

अम्बा भला अम्बिका तू कैसा पति चाहती है ?
अम्बिका (हँसकर) अम्बालिका-जैसा ।
अम्बा और अम्बालिका तू ?
अम्बालिका तेरे जैसा ।[1]

प्रस्तुत कथनोपकथन में अम्बा एवं अम्बिका में आत्म प्रेमवाद की अवतारणा हुई है ।

विद्रोहिणी अम्बा की भाषा सुगठित प्रवाहयुक्त स्वाभाविक एवं मर्म स्पर्शी है । कई स्थलों पर नाटककार का सौंदर्यशील कवि हृदय प्रस्फुटित हुआ है । भाषा का काव्यात्मक परिवेश दृष्टव्य है । जैसे—

(१) सौंदर्य के आँगन में तन्वी की तरंग में मोती चीनों पवन के प्रकम्पन से अनभिज्ञ । समाए रमता है पर इतनी कमी में मुसकराहट में विलास में अपनापन है और मादकी उन्मुक्त चमक है ।

(२) मेरे हृदय में गुदगुदी उठ रही है । ऐसा लगता है इन फलों की *सुगंधि से मदमाते पवन में लिपटकर आकाश में उड़ जाऊं और टिमटिमाते* तारों का मुँह चूम लूँ चन्द्रमा को छाती से चिपका लूँ ।[2]

इस नाटक में अलंकारों का प्रयोग भावों को रमणीय सुंदर, रोचक और आकर्षक बनाने के लिए किया है । उदाहरणतया—

(१) जिस तरह कोयले से कोहनूर काले बादलों से बिजली और कीड़े से रेशम निकलता है उसी तरह काशी राज से उषा जैसी सुंदरी का जन्म हुआ है ।

(२) काँटा फूल में काँटे की तरह तुम अम्बा के साथ फिरती हो ।

(३) प्यासी और मादक आँखों की कोर से उस नवयुवक ने मेरे हृदय में बिजली सी लरजा दी है ।

(४) अम्बा को देखकर ऐसा मालूम होता है मानो हवा पर झूमते हुए बादलों की तरह मुँह लटकाए अशोक वाटिका में सीता बैठी हो ।

(५) मैं कहती थी न इन दिनों बहन धूप में मुरझाई हुई कली के समान कुम्हला रही है ।[3]

इस नाटक में मुहावरों का प्रयोग भाव धारा में सहजता के साथ हुआ है । यथा—घिग्घी बँध जाना हाथ पर पीटना चूर चूर हो जाना, कचूमर

---

१ विद्रोहिणी अम्बा पृ० ५३
२ वही पृ० क्रमश ३९ ४२
३ वही पृ० क्रमश २० २९ ३१ ५० ५२

निकाल ग्ना' आदि । इसम यत्र तत्र कुछ सुन्दर सूक्तियाँ मुक्ता-सम प्रकाशित होकर हृदय के अन्तस्तल का उदभासित करती हैं । इनके प्रयोग मे मनो विज्ञान क साथ अथगाम्भीय भी दृष्टव्य है । उदाहरण के तौर पर—

(१) विषाद स प्रेम का दूसरा नाम है मत्यु से प्रेम ।

(२) भक्ति और श्रद्धा के आवरण मे सत्य और यथाथता की आग दबाई नहा जा सकती ।

(३) निबल पुरुष वट वक्ष को नही उखाड सकता ।

(४) मनुष्य स्वाथ से प्रेम करता है ।

(५) ससार म स्त्री भी एक विचित्र वस्तु है ।

(६) धम क अगा म कतव्य सबसे बडा है ।

(७) होनहार की गाडी के दो पहिए हैं-साधन और प्ररणा ।

(८) जिनकी नमित्तिक आवश्यकताएँ नित्य की आवश्यकता बन जाती हैं, वे व्यक्ति कतव्यहीन हो जात हैं ।

(९) पुरुष और स्त्री तो ससार की गाडी के दो पहिए हैं ।

(१०) जीवन की गहराई की थाह ढूँढन का नाम चिन्ता है, झझट है ।

(११) आशा और निराशा क सघष से उत्पन्न होन वाली अग्नि से ससार गतिमान है ।

(१२) पराक्रम ही क्षत्रिय का सबसे बडा मूल्य है ।

(१३) दासता जीवन म सबसे बडा अभिशाप है ।

(१४) समाज ससार की उन्नति का साधन है विनाश का नही ।

(१५) अज्ञान ही अनय दुश्चिता का कारण है ।

(१६) प्रतिज्ञा एक बार ही की जाती है ।

(१७) असफलता से मत्यु हजार बार अच्छी है ।

(१८) डूबत को बचाना हमारा धम है ।[2]

निष्कषत यह कहा जा सकता है कि इस नाटक पर अहम का प्राबल्य परिलक्षित होता है ।

सगर-विजय

उदयशंकर भट्ट न 'सगर विजय' नामक नाटयकृति मे पौराणिक आख्यान का लकर मानवो मन के अ न सघष पर गहरा प्रकाश डाला है ।

---

१ विद्रोहिणी अम्बा, पृ० क्रमश ४७, ४८ ४९ ५२

२ वही, पृ० क्रमश २६ ३४, ३५, ४१ ४२, ४३, ४४, ५० ५३, ५५, ६१, ६९, ७० ८३, ८५, ८६, ९४ ९५

इसी कारण त्रिपुर के मन में उसके प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। बाहु एवं विशालाक्षी को वन प्रदेश में बहुत पीडा होती है। दोनों मूर्च्छित हो जाते हैं। इतने में बाहु की दूसरी रानी यहि वहाँ आ जाती है। उसके मन में विशालाक्षी के प्रति घृणा है।

थोड़ी देर में त्रिपुर और कुन्त की यहि से मुलाकात होती है। वे दोनों उसको राक्षसी कहते हैं। बाहु और विशालाक्षी को बेहोश देखकर वे दोनों वैद्य की खोज में चले जाते हैं। अवसर पाकर यहि बाहु एवं विशालाक्षी को विष दे देती है। दूसरी ओर अयोध्या के सिंहासन पर विजयी दुदम बैठ जाता है। वहाँ के प्रमुख लोगों एवं मन्त्री त्रिपुण्डक को बन्दी बनाया जाता है। कुछ समय के बाद कुन्त और त्रिपुर वैद्य को ढूँढकर अपने साथ ले आते हैं। परन्तु वे आने के पहले ही विष प्रयोग के कारण बाहु की मृत्यु हो जाती है। विशालाक्षी को उचित समय पर दवा मिलने से उसकी जान बच जाती है। वह होश में आकर कुन्त से कहती है महाराज महाराज कहाँ है कुन्त ? मैं महाराज को देखना चाहती हूँ। अभी मैंने एक स्वप्न देखा था वह भयंकर स्वप्न। मैं महाराज को देखना चाहती हूँ ? देखा था ?[1] यहाँ विशालाक्षी ने मृत्यु के स्वप्न (Dreams of the Death) को देखा है। अन्त में उस यहि का पाप विदित होता है।

द्वितीय अंक

बाहु का शव देखकर विशालाक्षी विलाप कर रही है। इतने में और्व ऋषि का अनेक शिष्यों के साथ वहाँ आगमन होता है। विशालाक्षी सती होना चाहती है परन्तु और्व ऋषि के आग्रह के कारण सूर्य वंश का दीपक जलाने के लिए वह जीवित रहती है। इसके बाद उसे ऋषि के आश्रम में लाया जाता है। दूसरी ओर हैहयवंशी दुदम अपने महल में सो रहा है। इतने में ही यहि छाया के रूप में वहाँ पधारती है। तत्पश्चात दुदम अपनी रानी से कहता है हाँ, एक जागृत स्वप्न था जिसमें विष भरा सौन्दर्य था। जिसके यौवन में अपमान, भर्त्सना प्रतिहिंसा झलकती थी। वह एक पहेली था।[2] इस

---

1 उदयशंकर भट्ट सगर विजय पाँचवा संस्करण पृ० ३१।
2 वही पृ० ४१

उद्धरण से ज्ञात होता है कि दुदम चिन्ता स्वप्न (Anxiety Dreams) से ग्रसित हो गया है। इसके बाद के दृश्य में और ऋषि के आश्रम के बाहर एक कुटिया में एक खाट पर प्रसूता विशालाक्षी और उसका बालक सोते हुए रहे दिखाई देते हैं। इतने में ही वहि वहाँ आ जाती है और चुपचाप बालक को उठाकर बाहर चला जाती है। तदुपरान्त वहाँ और ऋषि आ जाता है। विशालाक्षी को महसूस होता है कि अपना बालक खो गया है। वह ऋषि के प्रति कृतघ्नता प्रदर्शित करती है। ऋषि चले जाते हैं। बाद अपने बच्चे को न पाकर एकदम मूक रह जाती है। दूसरी ओर वहि नदी के किनारे सगर को लेकर बैठी है। वह उस बालक को मारना चाहती है, परन्तु कुछ सोचकर वह अपने आत्मनिवेदन में कहती है "पर इसमें इस नन्हे भोले मनुष्य शिशु का क्या अपराध है? कैसे सुन्दर होठ हैं। पतले पतले कोमल मानो विधाता ने बिना हाथ लगाये ही ये हैं बनाया हो। आँखें कैसी बड़ी बड़ी कैसी चमकती हुई मानो चाँदी के प्याले में दो हीरे और बीच में नीलम कूटकर भर दिया गया हो। न, इसका कोई अपराध नहीं मैं इसे न मारूंगा।"[१] यहाँ वहि के इड पर अहम (Ego) की विजय परिलक्षित होती है। इसी समय त्रिपुर उस बालक को छीनकर अँधेरे में भाग जाता है।

तृतीय अंक

अपने पुत्र के वियोग से विशालाक्षी पागल सी हो गई है। वह सरयू के किनारे एक वृक्ष के नीचे अपने आत्मगत भाषण में कहती है "अब क्या बाकी बचा है। कौन सी आशा है कौन सा सुख है चारों ओर अँधेरा था। ऋषिवर ने कहा था—तेरा पुत्र विश्व विजयी होगा। क्या यही विजय है? हाय ! (नीचे देखकर) तू भी बह रही है। छाती पर बोझ सा लिए एक ही चाल से, गरज गरज कर सटमती हुई। आहा कैसी है तेरी थिरकन ! छप छप। मैं भूल गई। मैं पागल हूँ। मैं अब जी नहीं सकती। (जोर से) मैं जी नहीं सकती।"[२] (जोर से नदी में छलाँग मार देती है।) यहाँ विशालाक्षी का दुर्बल अहम (Weak Ego) परिलक्षित होता है। इसी कारण वह आत्महत्या के लिए उद्यत हो गई है। इतने में ही दो आदमी उस आवाज को सुनकर पानी में कूद पड़ते हैं और विशालाक्षी की रक्षा करते हैं। दूसरी ओर अयोध्या नगर की वीथी में कुछ नागरिक राजा दुदम के अन्याय के बारे

१ सगर विजय, पृ० ४९।
२ वही, पृ० ५२, ५३ ५४।

म बातचीत कर रह हैं। दश्य म ऋषि वशिष्ठ अयोध्या के कुछ नागरिको क साथ विचार विमश कर रहा है। इतने मे ही त्रिपुर और कुत वहाँ सगर का ले आते हैं। वे उस बालक को आश्रम म रखते हैं और विशालाक्षी की खोज के लिए चल जाते हैं। वशिष्ठ सगर को अरुधती के पास छोड़ देता है। उधर दुदम अयोध्या को अपने वश म लाने का सोच रहा है परन्तु जनता उसके अत्याचार के कारण ऊब गई है। दुदम की इच्छा है कि भारत भर हैहयवश का एकच्छत्र राज्य हो। इसीलिए वह अपने सनिको का विरोधका को खत्म करने का आदेश देता है । लोग मरने के लिए तयार हैं किन्तु राजा की आधीनता स्वीकार करन के लिए राजी नही हैं।

चतुथ अक

सगर वशिष्ठ के आश्रम के बाहर मदान म कुछ बालको के साथ खेल रहा है। सभी बच्चो म सगर का व्यक्तित्व खुलकर दीखता है। दूसरी ओर वशिष्ठ कुछ शिष्यो और धमपत्नी अरुधती के साथ धम चचा कर रहा है। वशिष्ठ अरुधता स कहता है दुखी तो सब ही होते है। सुख दुख तो जीवन का लक्षण है। मानसिक जगत के दो पहलू हैं-एक सुख दूसरा दुख । जो मनुष्य दुख उठाता है वह स्वच्छ होता जाता है और वास्तविक सुख की ओर बढता है। सुख म मनुष्य के धम और दुख म पापो का क्षय होता है। मनुष्य का जीवन पाप और पुण्य के योग स बना है ।[1] यहाँ वशिष्ठ के द्वारा भारतीय धम कल्पना पर प्रकाश पडता है। इतने म ही वहाँ वह्नि का आगमन होता है। वह गुरुदेव को प्रणाम करती है। उसने आपको पहचान लिया है। इसी कारण गुरुदेव उस क्षमा कर देता है। वह उस आश्रम म रहने लगती है। परन्तु उसकी प्रतिशोध ग्रथि उस चुपचाप बिठाती नही । वह पुन विशालाक्षी एव सगर का बदला लेन के लिए उद्यत होती है। वह एकदम वेग स आश्रम के भीतर घुस जाती है और सगर को गोद म लेकर वक्ष के नीचे आ जाती है। विशालाक्षी पर पुन दुख का पहाड गिरता है। दूसरी ओर महर्षि वशिष्ठ आश्रम म प्रजाजन क साथ दुदम स होन वाले अत्याचार पर बहस हो रही है। तदुपरान्त त्रिपुर स विदित होता है कि रानी वह्नि यहाँ क कुछ दूर तक वन म सगर को लेकर मारना चाहती थी कि दुदम स्वय सगर को उसस छीन कर ले गया। ऐसी स्थिति म भी वशिष्ठ निराश नही होता। वह त्रिपुर स कहता है मैं केवल सूयवश क लिए रखे हुए अस्त्र शस्त्र देकर युवराज सगर द्वारा शत्रु का सम्पूण नाश कराऊँगा। वह

[1] सगर विजय, पृ० ७२।

वीर है, प्रतापी है वह परम तेजस्वी और शुद्ध सूयवशी है । मैंने उसको दीक्षित कर दिया है।[1] यहाँ वशिष्ठ मे गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की झाँकी परिलक्षित होती है।

पचम अक

अयोध्या म युवराज सगर को छुडान के लिए लोग इकटठे हो रहे है। महर्षि वशिष्ठ उन लोगो को पथ प्रदर्शन कराता है । राजा दुदम विमनस्क अवस्था म महल मे टहल रहा है। वह सेनापति को सारे नगर को जला दने की आज्ञा करता है। प्रजा भी क्रोधायमान हो उठती है । उनके द्वारा महल को जलाया जाना है। नगर म भारी हुल्लड मच जाता है। उन लोगो मे भीड की निम्नलिखित तीन मानसिक विशषताएँ परिलक्षित होती हैं।

(१) बुद्धि का निम्नस्तर (Low Degree of Intelligence)

(२) शक्ति का अनुभव (Sense of Power)

(३) पारस्परिक उत्तजना (Internal Stimulation)

अ ततोगत्वा दुदम की सेना भी प्रजा स मिल जाती है। युवराज सगर दुदम के ब दीगृह से लोह की जजीर तोडकर मुक्त हाता है। बहि अपने दड को भूल जाती है। शत्रु पक्ष से वह सगर की रक्षा कराती है । तदुपरात दुदम एव सगर मे भयकर युद्ध होता है। सगर के एक बाण से दुदम गिर जाता है।दुदम सगर का ब दी बन जाता है। इसके अन तर सगर वशिष्ठ से कहता है, 'मैंने प्रतिज्ञा की है जब तक सम्पूण देश के शत्रुओ, अत्याचारियो को पराजित न कर लूगा तब तक अयो या म पर न रखूँगा । मैं दिग्विजय करके ही अपने को राज्य का अधिकारी समझता हू । राजा विलास की वस्तु नही है, वह साधारण मनुष्यो म स ही एक समझदार प्राणी है।[2] यहाँ सगर म निरकुश नेतत्व (Authoritarian Leadership) के गुण दिखाई देत हैं। सगर की विजय पर अयोध्या प्रजाजन बडे प्रसन्न ह। दूसरी ओर दुबल अहम एव स्वाक्रमण प्रेरणावेग क प्रभाव स बहि नदी मे शरीर त्याग दती है। इसके बाद आ तरिक पीडा के वेग के कारण विशालाक्षी भी चल बसती है। मानभक्त सगर शोक सागर म डूब जाता है। आखिर सगर को दिग्विजय प्राप्त होती है। वशिष्ठ और अरुधती तीथ यात्रा के लिए चल जाते ह। सगर माँ (ओ्याय) की धूल मस्तक पर चढ़ाकर प्रतिज्ञा करता है कि मरा

१ सगर विजय पृ० ८३ ८४।

२ वही, पृ० ९९ ।

रोम रोम उसकी सेवा के लिए होगा । नेतृत्व की विधियों में सगर की जनता की सेवा (Service for the People) ध्यान देने लायक है ।

इस नाटक का नायक सगर सृजनात्मक व्यक्तित्व (creative Personality) का जीता जागता नमूना है । बाहु कर्तव्य तत्पर राजा होते हुए भी दुष्ट रानी वह्नि के चंगुल में फंस जाता है । दुर्दम मनस्तापी व्यक्तित्व (Neurotic Personality) से परिचालित पात्र है । वह्नि में प्रतिशोध ग्रंथि ठूँस ठूँस कर भरी हुई है । विराग्यशी दुःख को पीने वाली नारी है । औव ऋषि एवं विशिष्ट ऋषि गाम्भीर्य प्रेम का नैतिकता के मानदण्ड के रूप में उपस्थित हैं ।

सगर विजय के कथोपकथनों में सबसे प्रमुख विशेषता स्वाभाविकता तथा नाटकीयता का गुण है । इस नाटक के प्रत्येक पात्र के कथन की भाषा मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण है । पात्रों के मनोवेगों एवं चित्तवृत्तियों के आरोह अवरोह में मनोवैज्ञानिकता परिलक्षित होती है । यथा—

अरुन्धती—प्रिय सगर कहाँ जा रहे हो ?

सगर—अयोध्या जा रहा हूँ माँ !

अरुन्धती—अयोध्या ! अयोध्या क्या ?

सगर—मैं उसकी रक्षा करूँगा ।[1]

प्रस्तुत कथोपकथन से ज्ञात होता है कि सगर बालमनोविज्ञान का अनूठा नमूना है । जर्मन दार्शनिक शिलर के अनुसार सगर में बच्चों के अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त (Surplus Energy Theory) परिलक्षित होता है ।

सगर विजय की भाषा सुन्दर सरस सरल संयत आकर्षक एवं प्रवाहमयी है । कई स्थलों पर सुन्दर वाग्मय एवं मार्मिक संवाद दृष्टिगोचर होते हैं । जैसे—

(१) इधर उधर फैली हुई इच्छाओं को बटोर एक धीमा दीपक जलाया था जिसमें प्राणों का स्नेह था कल्पनाओं का कम्पन, श्वास सी लम्बी निराशा सी क्षीण एक बत्ती थी ।

(२) नदी टेढ़ी मेढ़ी होने पर भी पीछे नहीं लौट सकती । सूर्य पश्चिम में पहुँचकर मुड़ नहीं सकता । वे बूँदें पृथ्वी पर गिरकर बादल नहीं बन सकती । मैं ही फिर क्यों पीछे हटूँ ?

(३) चन्द्रमा अमावस्या की रात में अंधेरी के कलंक में अपने को छिपा लेता है किन्तु पूर्णिमा आते ही वह अमिताभ विलास करने में तनिक भी संकोच नहीं करता ।

---

१ सगर विजय, पृ० ७१ ।

(४) वह घना की एक घटा है जो प्रकृति रूप प्रजा का प्रसन्न करने और उसे जीवन दन के लिए आकाश से भूतल पर उतरी है इतने पर भी वह प्रकृति से भिन्न है।[1]

इस नाटक की सूक्तियों म मानवी जीवन के सत्य अनुभवा की मनोवैज्ञानिक अवतारणा हुई है। उदाहरणतया—

(१) मनुष्य सबसे बडा है। साहस मत हारो।

(२) दया मनुष्य का गुण है क्रूरता नही।

(३) युद्ध ही तो जीवन है।

(४) समृद्धि का अन्त विपत्ति है।

(५) मनुष्य होना तो सबसे कठिन है।

(६) मानवता का सबसे बडा लक्षण है, दुखी के ऊपर दया।

(७) क्रूरता सौन्दय के अक मे सोता है।

(८) अभिमान पाप का सबसे प्रिय मित्र है।[2]

(९) कपट से विजय पाने वाले कभी उसकी रक्षा नहीं कर सकते।

(१०) असफलता मनुष्य की कमजोरी है।

(११) सैनिक का जीवन मृत्यु की भूमिका है।

(१२) व्यक्ति समाज के हित के लिए राजा की सत्ता है राजा के लिए समाज की नहीं।

(१३) विवेक मनुष्य के दुख का जलाने वाला अमोघ बाण है।

(१४) सुख और दुख को छोडने का नाम समाधि है और मान अमान से निस्पृह रहने का नाम विवेक।

(१५) दुष्ट पुरुष से सब कुछ सम्भव है।

(१६) ससार म विवेक ही एक ऐसा है जो शत्रु को भी मित्र बना सकता है।

(१७) दूसरे के तन को जीतना सहज है किन्तु उसके हृदय को जीतना कठिन।

(१८) राजनीति के नाटक म हार और जीत ये दो ही दृश्य हैं।

(१९) जो लोग स्वय दौडकर नही चल सकते व दूसरो को दौडते देख दौडने की घोर हानियों का उपदेश करते हैं।

(२०) तपस्वियो का जीवन केवल आत्म साधना ही नहीं, समाज की रक्षा भी है।

---

१ सगर विजय पृ० क्रमश ५१ ७६ ९७ ९९।

२ वही, पृ० क्रमश ८, ९ १०, १४ १७, १८, १९, २१।

(२१) राजा विलास की वस्तु नहीं है वह साधारण मनुष्यों में से ही एक समझदार प्राणी है।

(२२) राजा का अस्तित्व कुछ भी नहीं है वह प्रजा की इच्छा और राष्ट्र की थाती है।[1]

इस नाटक के अध्ययन से निष्कर्षित है कि नाटककार ने इस नाटक के विवेचन में अपराध ग्रंथि एवं अहम का सशक्त परिचय दिया है।

मुक्तिदूत

उदयशंकर भट्ट ने 'मुक्तिदूत' नामक नाटक में बुद्ध के जीवन एवं उसके तत्वचिंतन का यथार्थ रूप में निरूपण किया है।

प्रथम अंक

सिद्धार्थ अपने साथियों से मृगया के बारे में कुछ पूछ रहा है। मृगया के बारे में वाग्विवाद चल ही रहा था कि कुछ लोगों ने बहुत से मारे हुए पशु लाकर सिद्धार्थ के सम्मुख पटक दिये। देवदत्त द्वारा हरिणी के पेट फाड़कर निकाले अवमर बच्चे को ध्यान से देखकर सिद्धार्थ कहता है कितना निरीह पशु है! तुमने बुरा किया देवदत्त! इसे थोड़ा जल दो। ऐसे पशु को मारने में कोई वीरता नहीं है।[2] यहाँ सिद्धार्थ में वास्मन प्रणीत अनुभूति तथा संवेग (Feeling and Emotions) सिद्धान्त परिलक्षित होता है। यहीं सम्य रूप से प्रेम संवेग की अवधारणा हुई है। तदुपरान्त सिद्धार्थ सुजाता के साथ प्रासाद के निकट की वाटिका में घूमता है। वाटिका में हर तरह के फूल देखकर सिद्धार्थ सुजाता से पूछता है कि इन फूलों में इतना अन्तर क्या है? वह कहती है कि यह तो प्रकृति का चरम विकास है। प्रकृति मनुष्य के ज्ञान के का अन्धकार है थोड़ी ही देर में सिद्धार्थ ध्यानस्थ होने हुए एकदम जागकर कहता है हाँ! पिता कहते हैं संसार सुख से पूर्ण है! गुरु कहते हैं संसार कर्तव्य भूमि है। मौसी कहती है तुम राज्य करने के लिए पैदा हुए हो। पर मैं क्या हूँ यह कोई नहीं बताता। तुम बता सकती हो। सुजाता मैं क्या हूँ—किसलिए हूँ।[3] यहाँ सिद्धार्थ के विचारों में ड्यूवी (Dewey) प्रणीत समस्या हल के विभिन्न स्तर (steps involved in Problem Solving) सिद्धान्त का प्रभाव दिखाई देता है इतने में ही सिद्धार्थ के

१ सगर विजय पृ० क्रमशः २९ ४५ ६८ ५५ ७६, ७५, ८० ८१, ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ ११०।

२ उदयशंकर भट्ट मुक्तिदूत, १९६० पृ० ६।

३ वही, पृ० १४।

सामने शरविद्ध हंस आ टपकता है । सिद्धार्थ उसकी जख्म साफ कर उसे पानी पिलाता है । हंस जिंदा हो जाता है । इतने में ही देवदत्त शिकार की माग करता है । सिद्धार्थ इसका इनकार कर कहता है कि सब जीवों पर दया दिखाना मनुष्य का कर्तव्य है । देवदत्त कहता है कि मैंने हंस को मारा है इस पर मेरा ही अधिकार है । सिद्धार्थ के उपदेश से देवदत्त का मन पलट जाता है । इसके बाद विद्युतमाला चारुहासिनी आदि सहेलियों के साथ गोपा उद्यान में घूम रही है । इतने में सिद्धार्थ उस बगीचे में घूमते घूमते आ जाता है । गोपा की सहेलियों ने उसे रोका उसकी हँसी उड़ाई । क्योंकि पुरुष को वहाँ आना सख्त मना था । परन्तु वह आदमी सिद्धार्थ है । यह विदित होते ही सब सहेलियाँ भाग जाती हैं । यहाँ प्रेम के मनोवैज्ञानिक पक्ष का यथार्थ परिष्कार हुआ है । तदुपरान्त गोपा की सिद्धार्थ के साथ शादी हो जाती है । गोपा को पाकर सिद्धार्थ धन्य हो जाता है । पर गोपा के मन में एक आशंका आ जाती है । इसीलिए वह उससे कहती है, प्राणनाथ को कोई आन्तरिक पीड़ा है क्या ? गोपा सर्वस्व देकर भी यदि प्रियतम की चिन्ता दूर कर सके । कहिए चुप क्यों हैं । पत्नी का कर्तव्य है कि पति को हर प्रकार से सुखी रखे मेरा यह सब कुछ आपके चरणों पर अर्पित है पतिदेव ? इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि गोपा समझौते की कोशिश कर रही है । यहाँ रैंक के अनुसार औसत प्रकार का व्यक्तित्व दृष्टिगोचर हुआ है । कुछ देर बाद वहाँ शुद्धोदन आ जाता है । वह सुकेशी से सिद्धार्थ एवं गोपा का ख्याल पूँछ लेता है । इस समय उसे अचानक एक स्वप्न याद आता है और वह मूच्छित होकर गिर जाता है ।

द्वितीय अंक

सिद्धार्थ सावुक नामक मित्र के साथ नगर यात्रा करता है । युवराज के सामने बूढ़े रोगी एवं दरिद्र लोगों को जाने के लिए शुद्धोदन ने मना किया था । फिर भी सिद्धार्थ इस लोगों के दर्शन कर स्वयं को खो बैठता है । छुआ-छूत के एक मामले में वह शूद्रक को साथ दिखाता है । कुछ दिनों बाद सिद्धार्थ के द्वारा गोपा की गोद भर जाती है । बच्चे के जन्म दिन के अवसर पर राजधानी में खुशियाँ मनाई जाती हैं । शुद्धोदन को प्रसन्नता होती है कि अब सिद्धार्थ संसार का त्याग नहीं करेगा । परन्तु दो आदमियों के सम्भाषण सुनकर सिद्धार्थ के मन में जीवन के प्रति घृणा पैदा होती है । तदुपरान्त वह गोपा के महल में जाता है । गोपा नवजात शिशु के साथ सो रही थी ।

१ मुक्तिदूत, पृ० ३८ ।

इस अवसर पर वह अपने आत्मनिवेदन में कहता है 'यही अवसर है। यौवन सो रहा है माता व निद्रित है। मानव जीवन के प्रथम प्रभात की वारुणी पीकर अस्त है। यही अवसर है। गोपा तुम कितनी सुन्दर हो, किन्तु तुम्हारी यह सुन्दरता मुझे प्रेरित कर रही है कि मैं प्राणीमात्र के जीवन सौंदर्य के अक्षर पथ की खोज करूँ। अमृत में विष की गाँठ की तरह फली हुई जरा व्याधि मृत्यु का उपाय ढूँढू। जस मेरे हृदय में बार-बार कोई कह रहा है कि यही अवसर है। गोपा से तुमने विवाह किया उसका फल उसे प्राप्त हो गया यही अवसर है। नहीं एक गोपा के लिए संसार के दुःख व्याधि के मूल कारण की खोज से विरत रहना प्रमाद है। सिद्धार्थ का जीवन साधारण गृहस्थ का जीवन नहीं है। नहीं यही अवसर है।'[1] इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ में युग प्रगति निजी या वैयक्तिक अचेतन मन (Personal or individaul Unconsciou) एवं सामूहिक या जातिगत अचेतन मन (Collective or Racial Unconscious) में तीव्र संघर्ष चल रहा है। आखिर सिद्धार्थ सभी के दर्शन कर रात के अंधेरे में वन चला जाता है। गोपा एवं शुद्धोदन मूर्च्छित हो जाते हैं। सारे नगर में निराशा की छाया छा जाती है।

तृतीय अंक

सिर के बाल काटकर सिद्धार्थ वन में घूम रहा है। वहाँ उसे कई साधु लोग तप करते हुए नजर आये। तप के बारे में कोई भी साधु उसका समाधान न कर सका। आखिर आलारकालाम नामक तपस्वी को उसने गुरुत्व के रूप में स्वीकार किया। नरंजना और महाफल्गु नदी के संगम पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ ध्यानमग्न बैठता है। वहाँ वन के सब पशु-सर्प भी सिर तक इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें से कोई किसी का शत्रु नहीं है। इस दृश्य को देखकर सभी आश्चर्य में डूब जाते हैं। अश्वारोही कट ब्राह्मण एवं राजा बिम्बसार पशुओं तथा महात्मा के दर्शन करते हैं। इतने में सिद्धार्थ की समाधि टूट जाती है। सब दृश्य देखकर वह प्रसन्नता के साथ कह उठता है कितना सुन्दर दृश्य है। धर्म ही सत्य है धर्म ही पवित्र निधि है। धर्म पर ही जगत प्रतिष्ठित है। और एकमात्र धर्म से ही मनुष्य शान्ति पाता और दुःखों से मुक्ति पा सकता है। जन्म में दुःख है अप्रिय के साथ मिलन में दुःख है, तृष्णा में ही दुःख की उत्पत्ति होती है। तृष्णा की निवृत्ति होने में दुःख का निरोध होता है। हे मनुष्यगण जिस क्षुद्र अहं बुद्धि ने तुमको संसार की एकता से

---

१ मुक्तिदूत, पृ० ५८, ५९

पृथक कर रखा है, उस भेद बुद्धि को तुम छोड दो । बुद्धि को स्थिर करके तुम शील ग्रहण करो । शुभ व्रत के साधन द्वारा विमल आनंद प्राप्त हो जाने पर श्रमण तुम्हारे सब दुःखों का नाश होगा हे मानवगण सब संशयों का नाश करके तुम परम सत्य की खोज में प्रवृत्त हो । इस सत्य का बीज तुम्हारे अंतःकरण में छिपा है । जरा और व्याधि तुम्हारा स्वास्थ्य नष्ट करने के लिए दिन रात प्रयत्न करते रहते हैं । जब तक मन में शांति लाभ नहीं कर सकोगे तब तक धन, सम्पत्ति भोग, सुख प्रतिष्ठा आदि कुछ भी तुमको वास्तविक आनन्द नहीं दे सकेंगे । हे निर्वाण के अभिलाषी मानवगण, तुम्हें अपने चित्त रूपी घोड़े को संयत करना होगा तुम आप ही अपने प्रकाश होकर आत्मशक्ति के द्वारा कल्याण लाभ कर सकते हो और विश्व के दुःखी दीनों को उठा सकते हो ।"[1] यहाँ सिद्धार्थ के उपदेश में भारतीय योगदर्शन या भारतीय मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है । पतंजलि नामक महामुनि ने इस योगदर्शन को सिद्ध किया है । मन स्थिर करके अन्तःसृष्टि का अद्भुत दर्शन प्राप्त करने के लिए एक राजमार्ग के रूप में भारतीय योगदर्शन का विचार होता है । इसी राजयोग को भारतीय मनोविज्ञान कहना ही इष्ट है । भारतीयों के इस मनोविज्ञान में जागृत मन की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं । ये हैं— सुषुप्ति, स्वप्न जागृति और तुर्या ।[2] ६ वर्षों की कठोर तपस्या के बाद सिद्धार्थ को महत् सत्य की प्राप्ति हो जाती है । वे बुद्ध हो जाते हैं । दूसरी ओर राहुल गोपा को हर तरह के प्रश्न पूछता है, परन्तु वियोग में गोपा चुप बैठती है । अन्ततोगत्वा शुद्धोदन महाराज गौतमी, गोपा राहुल, नगर के बहुत से नर-नारी एक साथ कह उठते हैं—भगवान बुद्ध की जय, धर्मनाथ की जय, नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय ।

'मुक्तिदूत' का नायक सिद्धार्थ आपत्तियों में भी अपने ध्येय से विचलित नहीं होता । वह सहिष्णु एवं स्नेहशील वृत्ति का है । उसके चेतन अचेतन मन के संघर्ष ने आखिर उसे महान योगी के रूप में परिवर्तित किया । शुद्धोदन वात्सल्य भाव से परिचालित पात्र है । सिद्धार्थ ही उसके जीवन का एकमात्र केन्द्र बिन्दु है । वह स्वप्न में भी उसी को देखता है । गोपा की पतिनिष्ठा, उसके सहे हुए कष्ट एवं उसकी मर्यादाशील नारी वृत्ति भूलने से भूली नहीं जाती । वह एक आदर्श गृहिणी भी है । गोपा यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

१ मुक्तिदूत, पृ० ७५, ७६, ७७

२ डॉ० प्र० न० जोशी मराठी साहित्यातील मधुराभक्ति, प्रथमावृत्ति, पृ० १११

की याद दिलाने वाली आदर्श भारतीय नारी है।

इस नाटक के कथोपकथनों में भावोचित शब्द चयन का प्रयोग हुआ है जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति बड़ी स्पष्टता से की गई है। यथा—

शुद्धोदन—(उसी अवस्था में) कितना सुन्दर सुखद स्निग्ध प्रभात होगा आज। क्या कहते हो कल्याण। हां, कल्याण हो तो। कल्याण। पिता का कल्याण पुत्र का कल्याण स्त्री का कल्याण। मन्त्री अन्नकोष खुलवा दो। मेरे राज्य में कोई भूखा न रहे। हा हा हा हा! रत्नहार वाला स्वर्णहार वितीर्ण करो। यज्ञ दान तप पूजा पाठ की व्यवस्था करो। मैं बड़ा प्रसन्न हूं (एकदम प्रसन्नता के मारे आंखें मल जाती हैं) प्रभात हो गया। यह सब चुपचाप क्यों? वन्दीजन क्या नहीं गा रहे हैं? (ताली बजाकर) कोई है। (परिचारिका आती है) क्या बात है?

परिचारिका—महाराज

शुद्धोदन—यह क्या बात है?

परिचारिका—युवराज प्रासाद में नहीं हैं।

शुद्धोदन—(उछलकर) कहां हैं कहां गए?[1]

प्रस्तुत कथोपकथन में शुद्धोदन में फ्रायड के अनुसार इच्छापूर्ति (Wish Fulfilment) अनुमान (Hypothesis) परिलक्षित होता है। शुद्धोदन के अचेतन मन में दमन की हुई भावनाएं उपनिविष्ट स्वप्न द्वारा उमड़ पड़ी हैं।

इस नाटक की भाषा में संयम, गाम्भीर्य एवं सरसता का परिष्कार हुआ है। कई स्थलों पर वार्तालाप मकता के भीतर भारतीय आदर्शों एवं सिद्धान्त स्थापनाओं का निरूपण प्रभावी रूप में हो गया है। इसमें कई स्थलों पर वाङ्मय साहित्यिक भाषा के कलात्मक चित्र अंकित हुए हैं। उदाहरणतया—

(१) कलियों के कुसुम बनने में भ्रमर का गुंजन ही अधिक रहता है, समुद्र की तरंगों में शशि के हास की तरह तुम्हारी दशा है।

(२) जिसके भी हृदय में आग हो जिसकी आंखों में फूलों की मधुरिमा वाणी की उत्तेजना और सांसों में सुगन्धि हो।

(३) जीवन की सन्ध्या में तुम पुत्र की तरह उत्पन्न हुए। किन्तु भविष्य के मेघों ने तुम्हें आच्छन्न कर लिया। अमावस है घोर अमावस। इसका प्रातःकाल नहीं है। अनन्त रात्रि। गाथा बड़ी गाथा? घबराओ मत, युवराज लौटेंगे।[2]

---

१ मुक्तिदूत, पृ० ६३
२ वही, पृ० क्रमशः १०, ३२, ६७

पहाड टूट पडना, आखों का तारा, प्राण मुँह को आना[1] आदि मुहावरों से भाषा का सौन्दर्य बढा है। इस नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा मनोभावों का यथार्थ परिष्कार हुआ है। जैसे—

(१) दार्शनिक होते ही मनुष्य सब कुछ जान जाता है।
(२) सब जीवों पर दया दिखाना ही मनुष्य का कर्तव्य है।
(३) स्त्री संसार में सबसे मोहक वस्तु है।[2]
(४) रस ही जीवन है और रस ही काव्य।
(५) कला जीवन की अभिव्यक्ति का साधन है साध्य नहीं।
(६) धर्म जीवन है मृत्यु नहीं।
(७) हिंसाहीन धर्म ही सत्य धर्म है।
(८) सुन्दरता की सीमा नहीं की जा सकती।
(९) यह जीवन द्वन्द्व समास के समान है परन्तु एक शेष होने में ही साधकता है।
(१०) अज्ञान ही दुखों का कारण है।
(११) प्राणरक्षा सब धर्मों से बढकर है।
(१२) न्याय बडा कठोर है। उसके आखें नहीं हैं, हृदय नहीं है। वह यन्त्र है।
(१३) विवाह मनुष्य को बाँधकर रखने की सबसे मुख्य शृंखला है।
(१४) भौंरा कुसुम की सुगन्ध को छोड नहीं सकता।
(१५) आत्मा को, मन को जीतना ही तप है।
(१६) साधुओं के लिए राजा और प्रजा समान हैं।[3]

निष्कर्ष यह है कि इस नाटक में भारतीय योग दर्शन या भारतीय मनोविज्ञान का अवतारणा हुई है।

क्रान्तिकारी

क्रान्तिकारी उदयशंकर भट्ट का राजनीतिक नाटक है जिसके चार दृश्य चार ही अंक हैं। इस नाटक में भारतीय क्रान्तिकारियों का उज्ज्वल ध्येय का यथार्थ रूप में परिष्कृत हुआ है।

---

१ मुक्तिदूत पृ० क्रमश ८ १९ ६६
२ वही पृ० क्रमश ५, १८ १९
३ वही, पृ० क्रमश २३ २४, २७, २८ ३१ ४७ ४६ ४८ ५१, ६०, ६० ७० ७६

प्रथम दृश्य

दिवाकर क्रान्तिकारी युवक है। मनोहर उसका पुराना मित्र है जो अब सी० आई० डी० अफसर है। वह बाहर से मौन परन्तु अन्दर से सजग मालूम होता है। दिवाकर मनोहर के घर में छिपा हुआ रहता है। मसीबत के कारण बीमारी का बहाना बनाकर वह उसके घर मेहमान के रूप में रहता है। मनोहर की पत्नी वीणा पहले उसके वास्ते य के प्रति नापसन्दगी प्रदर्शित करती है, परन्तु बाद में उसके साथ घुल मिलकर रहती है। दिवाकर मरते दम तक अपना कर्तव्य निभाना चाहता है। दूसरी ओर मनोहर के मन में संघर्ष चल रहा है। वह वीणा से कहता है "तुमसे क्या छिपाव है वीणा ! मेरे भीतर एक संघर्ष उठ रहा है। एक तरफ स्वर्ग है दूसरी तरफ मौत। (कुछ सोचकर) लेकिन उस मौत में भी मन गुनी की एक चमक दिखाई देती है। वही चमक मैं दिवाकर के चेहरे पर देखता हूँ। इसके साथ ही कर्म जारी मुझ बार बार नाचती है। मैं नायक जीवन की इतनी गहराई में कभी नहीं गया। मैं इतना बड़ा त्याग नहीं कर सकता। तुम्हें दर बदर भिखारिन की तरह भीख माँगने नहीं देख सकता। नहीं वह हमारा रास्ता नहीं है। कुछ सिरफिरे ही यह काम कर सकते हैं। मेरे मन में तूफान उठ रहा है। मैं सोच नहीं पाता कि क्या करूँ।'[1] यहाँ मनोहर में इड और अहम का संघर्ष परिलक्षित होता है। क्योंकि दिवाकर को पकड़ने के लिए सरकार ने पाँच हजार रुपया का पारितोषिक जाहिर किया है। इसके बाद टयूटर नामक सी० आई० डी० अफसर एवं दिवाकर की मुलाकात हो जाती है। इस समय दिवाकर उसके साथ सावधानी से बातचीत करता है। तदुपरान्त वीणा और दिवाकर में वार्तालाप होता है। दिवाकर वीणा से कहता है "क्रान्तिकारी पत्थर होता है उसके दिल नहीं होता। कोई भी भावुकता कला सौंदर्य, प्रेम उसके लिए नहीं है। उसके सामने मनुष्य के दो रूप हैं-अपना या जन्मभूमि का। एक ओर माँ की स्वतन्त्रता और दूसरी ओर उसमें विघ्न डालने वाले व्यक्तियों का समूह (तेज होकर) क्रान्तिकारी अपने उद्देश्य के लिए माता पिता भाई बहन पत्नी सभी की हत्या कर सकता है।[2] यहाँ दिवाकर में हानिं प्रवीन अग्रधर्मी (Agressive) व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि वह ध्येय सिद्धि के लिए किसी भी तरह का अपमान में संकोच नहीं करता। इतने में ही मनोहर रिवाल्वर तान प्रवेश करता है। वीणा और दिवाकर घबरा

---

१ उदयशंकर भट्ट : क्रान्तिकारी तृतीय संस्करण पृ० ४२

२ क्रान्तिकारी, पृ० ४८

जाते हैं । वीणा आखें बन्द करके बैठ जाती है । दिवाकर फुर्ती से रिवाल्वर निकाल लेता है ।

द्वितीय अक

दिवाकर सरकार के खिलाफ रहा है, जिससे उसके घर पर विकट प्रसग आ गया है । मास्टर साहब ने उसके बेटे जीवन को स्कूल से निकाल दिया है । दिवाकर की पत्नी रेणु का भी काम छूट जाता है । कुछ लोग दिवाकर की माँ, पत्नी एव बेटे के चरणो की धूल मस्तक पर लगाते हैं तो कुछ लोग दमन तक टालते हैं । जीवन अपने पिता के समान क्रातिकारी होने की उम्मीद रखता है । वह दयामयी से कहता है, 'कैसे लडते हैं तीर कमान लेकर तलवार लेकर ? बाबूजी के पास तो मैंने एक भी तलवार नही देखी । उस दिन रात को आये थे न । मै भी एक तीर कमान बनाऊँगा । (कुछ सोचकर) अग्रज, ये टोप वाले ये तो मुझे भी बुरे लगते हैं । मैं भी इनको निकालूगा ।'[1] यहाँ मक्डूगल एव ड्रेवर के सिद्धातानुसार जीवन मे सजनात्मक कल्पना (Creative Imaginaton) परिलक्षित होती है । रेणु प्राप्त स्थिति से ऊब गई है । वह अपने आत्मकथन मे कहती है, (दरवाजा बन्द करके तुलसी के घरौदे के पास अपनी चोली मे से चित्र निकाल कर देखती हुयी प्रणाम करती है फिर चूमती है) प्राणनाथ, क्या हम लोग एक दूसरे से अलग होने के लिये ही मिले थे ? तुम देश प्रेम की आग मे जल रहे हो मैं प्रतीक्षा की अबूझ आग मे । क्या इसका कभी अन्त होगा ? मेरे प्राण तुम्हारी याद मे उबल उबल कर छटपटाते रहते हैं और तुम इतने निठुर हो कि स्वप्न मे भी आकर चले जाते हो । तुम्हारा लाडला जीवन आज स्कूल से निकाल दिया गया । वह शोक वाचित अज्ञान मे अपनी इच्छा को दबाये अब भी हँसता है और उसे देखकर मेरा हृदय भीतर ही भीतर फूट फूट कर रोता है । मा के अथाह अतल हृदय सागर मे उसे देखकर तूफान आ गया है । पर वह मा नही साक्षात शक्ति है । सचमुच मैं ऐसी सास पाकर धन्य हो गयी और धन्य हो तुम जिसको ऐसी मा मिली (रुककर) प्रियतम, क्या अब कोई उपाय नही है ? आओ और एक बार मुझे आलिगन-पाश मे बाँध लो । (चित्र को छाती से लगाकर ध्यानस्थ हो जाती है ।)[2] यहा रेणु मे पिगमलियनवादी विकृति दिखायी देती है । क्योंकि यौन विच्युति के कारण वह अपने पति के चित्र पर आसक्त हो गया है । तदुपरान्त मुरली नामक क्रातिकारक स्त्री वेश मे वहाँ आता है और

१ क्रान्तिकारी, पृ० ५३ ।
२ वही, पृ० ६०-६१

दिवाकर का सारा हाल हवालदार रेणु से विदित करवाता है। रेणु का दिल बैठ उठता है। दयामया उसे समझाते हुए कहता है कि अब भगवान ही हमारा एकमात्र सहारा है। मरती चुपचाप ऊपर की सीढ़ियों में चला जाता है। इतने में ही दिवाकर के घर में थानेदार सिपाही मुखबिर आदि लोग आ जाते हैं। वे घर का कोना कोना छानकर यहाँ आये हुए आत्मा की खोज करते हैं। दयामया रेणु तथा जीवन कुछ भी जवाब नहीं देते हुए देखकर वे उनको हण्टर से मारने लगते हैं। नारगान सुनते ही पड़ोस के लोग इकट्ठे हो जाते हैं, परन्तु पुलिस को आते देखकर खिसक जाते हैं। आखिर बालक जीवन ही उस क्रांति कारी परिवार का एकमात्र सहारा रह जाता है।

तृतीय अंक

इस दृश्य का आरम्भ ऊबड़ खाबड़ जंगल के एक भाग में होता है। यहाँ ग्रामीण नाटकीय स्वामी राजेन्द्र आदि क्रांतिकारी लोग आपस में बातचीत कर रहे हैं। किस प्रकार से काम करना चाहिए किस रास्ते से चलना अच्छा कहाँ ठहरना इत्यादि बातों के बारे में वे बहस कर रहे हैं। दिवाकर का किया काम अच्छा है या बुरा यदि उसकी भूल हो तो उसे क्या सजा देनी चाहिए। इस पर भी उनमें विचार हो रहा है। दिवाकर ने अपने पुराने दोस्त मनोहर-सा० आई० डा० अफसर के यहाँ रहने की गलती की है और उसे उसकी पत्नी वीणा को अपनी पार्टी में ले लिया है। उसकी इस गलती के लिए वे उसे मृत्य दण्ड की सजा दिलाना चाहते थे। परन्तु इनमें राजेन्द्र एक ऐसा पात्र है जो सोच-समझ कर बातें करता है। उसकी दृष्टि से जल्दी-जल्दी फैसला करना गलत है दिवाकर तो ऐसा ऐरा गैरा व्यक्ति है वह क्रांतिकारियों का पथ-दर्शक है वह बुद्धिमान भी है आज तक उसके काम अच्छे ही निकले हैं वीणा को पार्टी में लेने में उसका कोई उद्देश्य हेतु रहा होगा। दूसरी ओर मुरली पकड़ा गया है। वीणा अपने पति का त्याग कर क्रांतिकारियों की पार्टी में सम्मिलित हो गयी है। वह एक पतिव्रता स्त्री होकर भी पार्टी के लोगों के सम्मुख अपनी परीक्षा देने समय अपने पति की हत्या के लिए भी तैयार हो जाती है। उसकी इस वृत्ति में राष्ट्र भक्ति की भावना ठूस-ठूस कर भरी हुई है। दिवाकर अपने लोगों का अपनी पार्टी का चाहे जो फैसला हो उसे शिरसावंद्य मानता है। उसका ध्येयवाद उच्च कोटि का है। देश-धर्म की रक्षा के लिए अपनी जान भी खतरे में डालना है।

चतुर्थ अंक

घन जंगल में नालूदा बचना से टहल रहा है। वह अपने आप कह रहा

है– क्या हुए सब लोग ? कहीं वे पकड़े तो नहीं गए ? सुना है जमकर गोलियां चली (रुककर) मां तुम स्वतंत्र हो, तुम गौरवमयी हो, यही मेरी कामना है। इतने में ही स्वामी एवं राजेन्द्र आ जाते हैं। तब नीलदा स्वामी से कहता है "हमारी क्रांति उस समय तक सफल नहीं हो सकती जब तक हम जनता का विश्वास न प्राप्त करें। खुदीराम को आखिर जनता ने ही पकड़वाया था।" यहां नीलूदा द्वारा युग प्रणीत जनमत का निर्माण (Formation of Public Opinion) सिद्धांत अभिनीत हुआ है। तदुपरांत रेणु वहां आ जाती है। उस पर कैसे अत्याचार हुए इसका विवरण करते समय वह कहती है कि उसे तीन दिन तक बिना पानी और अन्न के बंद रखा था। इतने में मनोहर को मारकर बीणा भी वहां आ जाती है। वह कहती है मैंने पति की हत्या नहीं की बल्कि देश के शत्रु की। वह दिवाकर द्वारा ट्यूडर की हुई हत्या की भी जानकारी देती है। इतने में ही यासीन के द्वारा विदित होता है कि दिवाकर के द्वारा ट्यूडर मरा, परन्तु उसने मरते मरते दिवाकर के पर में गोलियां चलायी, जिससे दिवाकर जीवित नहीं रहा। सब लोग दुःख की खाई में गिर जाते हैं। थोड़ी ही देर में पुलिस की आने की आवाज आती है। सब लोग दौड़ते हुए पहाड़ के पीछे भागते हैं। अंत में 'बोलो मां की जय ! दिवाकर दा की जय !' की ध्वनि आकाश में गूंज उठती है।

इस नाटक का नायक दिवाकर असाधारण या अबनामल पात्र है। देश की आजादी के सिवा उसके मन में दूसरा विचार नहीं है। उसका आचार-विचार, चिंतन, रहन-सहन सिर्फ देश के लिए अर्पित है। आखिर दुश्मन का बदला लेते समय ही उसका बलिदान हो जाता है। मनोहर पुरस्कार के लालच में दिवाकर का विश्वासघात करना चाहता है। उसके इड एवं अहम के बीच चला संघर्ष देखने लायक है। बीणा में असामान्य देशभक्ति परिलक्षित होती है। रेणु एक सामान्य नारी है जो नारी मनोविज्ञान से परिचालित युवती है। जीवन बाल मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में असाधारण बालक प्रतीत होता है।

'क्रांतिकारी'[1] के कथोपकथन ओजस्वी प्रवाहमय और गतिशील हैं। सरलता सरसता एवं पात्रानुकूलता इसके गुण हैं। यथा–

जीवन– (पैसे उसी के मुंह पर मारता हुआ) मुझे नहीं चाहिये।

थानेदार– नहीं बताओगे तो हम तुम्हारी दादी और मां को पकड़ कर ले जायेंगे।

जीवन– मैंने किसी को नहीं देखा।

---

१ क्रांतिकारी, पृ० ९४।

थानेदार– देखो बता दो। मिठाई दूँगा। बताओ कौन आया था ?
जीवन– मैं नहीं जानता।[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों से ज्ञात होता है कि जीवन स्प्रेंगर के श्रेणी विभाजन के अनुसार बच्चों के राजनीतिक (Political) व्यक्तित्व का परिचायक है।

इस नाटक की भाषा विषय की प्रकृति के अनुसार संयत गम्भीर एवं सरल है। भाषा में प्रौढ़ता आदि से अन्त तक है। कुछ स्थलों पर यथार्थ भावाभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी शब्दों का भी यथोचित प्रयोग हुआ है। जैसे– पोजीशन डाइनामाइट पोलिटिकल साइंस वर्कर्स कम्प्लीट रेस्ट लग्जरी क्रिमिनल्स इत्यादि।[2] मुहावरों एवं कहावतों के यथोचित प्रयोग से भाषा में सजीवता एवं जिन्दापन आ गया है। उदाहरण के तौर पर– नाकों में दम भरना, भाड़ फोड़ना चूर चूर कर देना छान मारना हवा हो जाना लातों के देवता बातों से नहीं मानते खाल उधेड़ देना मुँह धो लेना आदि।[3] इस नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा मनोभावों का यथार्थ परिष्कार हुआ है। जैसे–

(१) कुछ लोग राह बनाते हैं बाकी लोग उसपर चलते हैं।

(२) विचारों से जीवन बनता है।

(३) यदि जीवन को बनाये रखना है तो काम को महत्त्व देना ही होगा।

(४) पराधीनता मनुष्य का अभिशाप है।

(५) ईमान की बड़ी बड़ी दीवारें रुपये के हथौड़े की चोट से गिर जाती हैं।

(६) सत्य ज्वालामुखी के समान है जो असत्य के कपट के पहाड़ फोड़कर निकलता है।

(७) भगवान भी उसी की परीक्षा लेते हैं उसी को प्यार करते हैं जो कर्त्तव्य की आग में जल सकता है।[5]

इस नाटक के मनोविज्ञान सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि इसमें इड और अहम के द्वन्द्व की सुन्दर अवतारणा हुई है।

नया समाज

नया समाज उदयशंकर भट्ट द्वारा लिखित एक सामाजिक दृष्टिकोण

---

१ क्रान्तिकारी पृ० ७२।
२ वही पृ० क्रमश १५ १८ १९ २१ २६ २७ ४५।
३ वही पृ० क्रमश २२ २३ ४८ ५२ ६० ६९ ६९ ८१।
४ वही, पृ० क्रमश १९ २३ ३१, ३३।
५ वही, पृ० क्रमश ३८, ४१, ६०।

मूलक नाटक है। आज के नए समाज का मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्र इसमें अंकित हुआ है।

प्रथम अंक

मनोहरसिंह ठाकुर एक बुजुर्ग एवं जमींदारी खत्म होने पर भी उसके स्वप्नों में खोया हुआ सद्य स्थिति से अपनापा प्रस्थापित न करने से दुःखी पात्र है। उसकी संतान चन्द्रवनसिंह (चन्दू) और लड़की कामना के सम्भाषण से कथावस्तु का प्रारम्भ होता है। चन्दू अपनी सहपाठी सहेली रीटा पर अनुरक्त है। रीटा ईसाई होने से मनोहरसिंह इससे विरोध प्रदर्शित करता है। फिर भी रीटा अपने बाहिरी सौंदर्य से चन्दू को आकर्षित करके उसे लूटने की कोशिश करती है। कामना हमेशा बीमार रहने से घर के बाहर कभी नहीं जाती। वह हमेशा घर में ही अलग अलग किताबें पढ़कर अपने मन को बहलाती रहती है। धीरेन्द्र सिंह (धीरू) मनोहरसिंह के दोस्त का पुत्र, जो पढ़ा लिखा है और किसी आफिस में क्लर्क का काम करता है। वह कामना पर आसक्त है परन्तु कामना उससे प्यार नहीं करती। वह अपने दिल से चाहती है अपने घर के नौकर रूपा को। वह मीठी झिड़की के साथ रूपा से कहती है, "राजा कोई नहीं है रे। बाबा आ रहे हैं। जैसा कहा है वैसा करना, हाँ। जा (जाता है) कितना सुंदर है कितना कोमल है। लगता है जैसे इसके प्रति मेरे हृदय में कहीं कोई तन्तु जुड़ गया है।"[1] इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि कामना का इड रूपा के इर्द–गिर्द चक्कर काट रहा है। तदुपरान्त कामना परदे की प्रतिछाया से बातचीत करने लगती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इन दोनों का वार्तालाप द्रष्टव्य है।

कामना–चुप रह पर बाबा मुझे प्रिय लगते हैं, पर क्या कह गई, उनकी आँखें उनका चेहरा, क्या हा चेहरा!

छाया––यह रूपा?

कामना–रूपा भी बुरी नहीं है। सब जगह घूमने पर अगर मेरा मन कहीं अट कता है तो यहीं।

छाया––मैं समझ गई। प्यार के लिए तुझे एक विशेष आकृति चाहिए। एक खास तरह की आँखें, पितवश के रूप की चाह, यही न्यूरासिस है। इसी को एलक्ट्राकाम्प्लक्स कहते हैं।[2]

---

१ उदयशंकर भट्ट नया समाज प्रथमावृत्ति, पृ० १७

२ ग्रीस नाटका में एलेक्ट्रा नाम की लड़की ने अपने पिता पूरी पिडास के पत्नी के द्वारा मारे जाने पर माँ से बदला लिया। माँ को यह सहन न था कि लड़की अपने पिता को प्यार करे।

कामना—बाबा जैसा रूप रंग आँखें।
छाया—रूपा का नाम क्यों नहीं लेती ?
कामना—बुरा नहीं है। जब से आया है मुझे चाह रहा है। पर यह नहीं हो सकता। यह सब मैं नहीं चाह सकती। ऐसा कभी नहीं कर सकूँगी। मैं पागल हो जाऊँगी। यही वे आँखें हैं यही चेहरा (पुकार कर) रूपा मुझे दवा दे नींद की दवा मुझे नींद नहीं आ रही है मैं बहुत बेचैन हूँ।[1]

उपर्युक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि कामना पर फ्रायड प्रणीत पितृ विरोधी ग्रंथि (oedipus Complex) का विशेष प्रभाव है। इस सन्दर्भ में डा० गणेश दत्त गौड़ ने कहा है कि कामना अपने पिता और भाई की आँखों पर इतनी आसक्त है कि अपने पिता मनोहर सिंह की अवैध सन्तान रूपा नौकर की आँखें अपने पिता और भाई के अनुरूप पाकर ही उस पर विमुग्ध हो गई है। कामना की इस आसक्तता में पिता और भाई के प्रति आसक्ति के दर्शन होते हैं। यहाँ फ्राइडियन इडिपस ग्रंथि की मान्यता है कि लड़की का सर्वप्रथम पिता के प्रति प्रेमपूर्ण अनुराग होता है। तत्पश्चात अपने बड़े भ्राता को पिता के स्थानापन्न बना लेती है। कामना द्वारा भी यह मानसिक प्रक्रम हुआ है।[2] दूसरी ओर रीटा चन्दू को बार बार अपने चंगुल में फँसाने की कोशिश करती है। इसमें चन्दू का भी दोष परिलक्षित होता है। एक सम्भाषण में चन्दू रीटा से कहता है "भद्र महिला ? तुम और भद्र महिला ? खूब है तुम्हारा यह रूप, डाकू, नीच लुटेरी तुमने मुझे लूट लिया। मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे ही कहने से घर का गहना चुराकर डाइ सौ में बेचा शराब पिलाकर जुए के बहाने वह सब रुपया तुमने अपने दोस्तों के जरिये ऐंठ लिया। मेरी अगूँठी छीन ली और क्या चाहती हो ?[3] इससे चन्दू के अनुपालक (Compliant) व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। हार्नी के विचारानुसार अनुपालक व्यक्ति वे होते हैं जो दूसरों पर रहना पसन्द करते हैं।

द्वितीय अंक

मनोहर सिंह एवं कामना में बाजार जाने के बारे में बातचीत चल रही है। जमींदार की बेटी होते हुए भी कामना बाजार जाती है। तत्पश्चात् छाया

१ नया समाज, पृ० ३३-३४
२ डा० गणेश दत्त गौड़ आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० २३०
३ नया समाज, पृ० ३६

का आधार लेकर मनोहरसिंह अपने मानसिक द्वन्द्व का परिचय करा देता है। मनोहरसिंह छाया से कह रहा है 'कुछ कुछ दीख तो यही रहा है पर मैं पैदल कैसे चलूं ? क्या मुझे कपड़े अपने अपने पहनने होंगे ? अपने हाथ से काम करना होगा ? गलत बात है। यह कभी नहीं हो सकता।'[1] यहाँ मनोहर के अहम् (Ego) एवं नैतिकता है (Super Ego) में तीव्र संघर्ष परिलक्षित होता है। अन्त में मनोहर अहम से समझौता कर लेता है और बदलते हुए समाज ढंग से रहने-रहने का प्रयास करता है। इतने में रूपा चंदू द्वारा जुए में हारे हुए रुपये उसे वापस लाकर देता है। इससे चंदू अचरज में डूब जाता है साथ ही रूपा पर अनुरक्त भी हो जाता है। वह जब रूपा का हाथ अपने हाथ में लेता है तब मुलायम हाथ देखकर उसे आशंका होती है कि रूपा आदमी है या औरत ? उसके सर का फेंटा निकालते ही रूपा की पोल खुल जाती है। रूपा एक लड़की है यह जानकर इतना प्रसन्न होता है कि वह उसके साथ शादी करने का विचार प्रदर्शित करता है। इस घटना से कामना को चोट लगती है। उसका प्यारा स्वप्न चूर चूर हो जाता है। वह एकान्त में अपना मनोरथ प्रकट करते हुए कहती है, 'मेरी आशा पर पानी पड़ गया। यही अकेला मुझे अच्छा लगता था। इसकी आँखों में मुझे अपनापन दिखाई देता था। मैं ऐसा रूप चाहती थी, मैं ऐसी आँखें चाहती थी। मैं अब शादी नहीं कर सकती। मुझे बाबा जैसी आखें अच्छी लगती हैं। चंदू जैसी आखें अच्छी लगती हैं। रूपा जैसी आखें अच्छी लगती हैं। यह मुझे क्या हो गया ? मैं अपने मन से परेशान हूँ। मैं अपने से परेशान हूँ। क्या करूँ ? क्या करूँ मैं ?'[2] यहाँ कामना की पित विरोधी ग्रन्थि की बीमारी पुनः तीव्र हुई दृष्टिगोचर होती है। साथ ही उसके स्व मोह (Narcissism) पर भी प्रकाश पड़ता है अन्ततोगत्वा चन्दू के व्याह के समय सभी लोग इकट्ठे हो जाते हैं। रूपा के दादा भी पधारते हैं। रूपा एक गरीब घर की लड़की होकर आज अपने भाग्य से बड़े घर की बहू बनने जा रही है। इसी बीच दादा के द्वारा विदित होता है कि रूपा मनोहरसिंह की ही बेटी है। चंदू की सब आशायें धूल में मिल जाती हैं। मनोहरसिंह उद्वेलित हो जाता है। वह रूपा को बेटी के रूप में स्वीकार करने में हिचकिचाता है। क्योंकि रूपा एक जारज सन्तान है। आखिर मनोहरसिंह का मन परिवर्तन होता है। भीरू रूपा के साथ शादी करता है और चन्दू मनोरमा के साथ। नेपथ्य में शहनाई बजने लगती है और

---

१ नया समाज, पृ० ४८
२ वही, पृ० ६१

एक गीत गूँज उठता है--

'हम समाज बदलना होगा आगे बढ़ो बन्धु[1]

ऊँच नीच है नहीं कहो भी, मिलकर चढ़ो, चढ़ो[1]

चन्द्रवदन सिंह अर्थात चन्दू इस नाटक का प्रमुख पात्र है जो नये विचारों का परिचायक है। रीटा के प्रेम में उसके मन की कमजोरी का भी एक भाग परिलक्षित होता है। मनोहर सिंह मन के साथ संघर्ष करते करते अन्त में प्राप्त स्थिति के साथ समझौता करने में सफल होता है। कामना की मानसिक बीमारी उसे बार बार अस्वस्थ करती रहती है। रूपा अपने दोहरे व्यक्तित्व का परिचय देती है। वह नारी होकर भी पुरुष के वेश में रहकर सभी को अचरज में डालती है। रीता एक धूर्त एवं चालाक नारी है।

नाटक के कथोपकथन संक्षिप्त स्वाभाविक एवं सजीव बन पड़े हैं। छोटे छोटे वाक्यों द्वारा पात्रों की अन्तः प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ा है। संवादों में मनोवैज्ञानिकता का पूर्ण निर्वाह हुआ है। उदाहरणतया--

मनोहर--क्या जुआ, कैसा जुआ? मैं कुछ भी नहीं समझा।

कामना--शायद रीटा का काम होगा। मैं देखती हूँ बाबा मैं देखती हूँ। (तेजी से निकल जाती है।)

मनोहर--(हैरान होकर) सब गये? बिना किसी आदमी के बिना किसी सवारी के मैं कैसे जाऊँ? जमींदारी गई तो क्या मैं पैदल चलूँगा क्या करूँ कैसे करूँ? आह।'

उपर्युक्त वार्तालाप से ज्ञात होता है कि मनोहरसिंह अपने अहम् (Ego) के साथ तीव्र संघर्ष कर रहा है।

नया समाज की भाषा अत्यन्त संयत, शुद्ध सरल पात्रानुकूल और वातावरण के अनुसार है। भावात्मक चढ़ाव उतार व्यक्त करने की उसमें अपूर्व क्षमता है। सिर पर चढ़ना छाती पर मूँग दलना पहाड़ ढाना नाक भौं सिकोड़ना आँखें खुल जाना[2] आदि मुहावरों से भाषा सजीव बन गई है। एवरी थिंग इज फेयर इन लव एण्ड वार इन प्रापर ड्रेस प्लीज हैव यू लास्ट योर सेंस आर व्हाट।[1] आदि अंग्रेजी वाक्यों का उचित स्थानों पर बड़ा ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। (१) मनुष्य का रूप नहीं देखा जाता मन देखा जाता है। (२) समय की दौड़ बड़ी तेज है उनसे कोई बच नहीं सकता। (३)

---

१ नया समाज, पृ० ४५

२ वही पृ० क्रमश ७ ७ १८ २७ ३६

३ वही, पृ० क्रमश १४, २७, २७

सब मनुष्य बराबर हैं कोई छोटा बड़ा नहीं है । इन सूक्तियो द्वारा मनोभावो का यथार्थ निरूपण हुआ है ।

इस नाटक के अध्ययन विश्लेषण के अनन्तर कहा जा सकता है कि इसमें पित विरोधी ग्रंथि का यथार्थ परिष्कार हो गया है ।

निष्कर्ष

उदयशंकर भट्ट के नाटकों से पता चलता है कि यद्यपि ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों में मनोविज्ञान का भरसक प्रयोग करने का यत्न किया है, परन्तु उनकी जीवन के प्रति होने वाली ईमानदारी भी यथार्थ रूप चित्रित हुई है । उनके नाटकों के प्रधान पात्र सौम्य प्रकृति के दिखायी देते हुए भी उनमें कुछ महान कार्य करने की अदम्य मनीषा उद्भासित हो उठी है । उनके नायक निस्पृह, सहिष्णु एवं स्नेहशील वृत्ति के हैं । उनकी नारियाँ अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिये अपनी जान कुर्बान करने के लिये नहीं हिचकिचाती । उनके नाटकों में मनोविज्ञान का एक क्रमिक विकास परिलक्षित होता है । उनके नाटकों में फ्रायड के मनोविश्लेषण का अत्यधिक प्रभाव है । उनके नाटकों के कथोपकथन भावुकता काव्यात्मकता, दार्शनिकता एवं प्रवाह युक्तता से अनुप्रेरित हैं । इनमें मनोवैज्ञानिक शैली का सहजता के साथ समावेश हुआ है । भट्ट की भाषा सुगठित प्रवाह युक्त प्रभावोत्पादक एवं भावोचित है । कहीं कहीं संस्कृत का भी गहरा प्रभाव है । मुहावरों कहावतों का प्रयोग भाव धारा में सहजता के साथ हुआ है । सुन्दर सूक्तियाँ उनके नाटकों मे प्राण हैं ।

---

४ नया समाज, प० श्रमण ३२, ४९, ६१

६ | हरिकृष्ण प्रेमी के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

रक्षा-बन्धन

हरिकृष्ण प्रेमी ने रक्षा बन्धन नाटक में मुगल कालीन इतिहास पर प्रकाश डालकर हिन्दू मुस्लिम एकता का एक हृदयगम चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम अंक

चित्तौड के महाराणा विक्रमादित्य के भवन में सेठ धनदास और अन्य मुसाहिब बैठ बातचीत कर रहे हैं। इतने में ही महाराणा विक्रमादित्य का प्रवेश होता है। इस अवसर पर धनदास सभी के सम्मुख राजनीतिक महा भाष्य करता है। इससे महाराणा विक्रम ऊब उठता है और मनोरंजन के लिए *नर्तकी को बुलाने की आज्ञा करता है। नर्तकी के आने पर विक्रम कह उठते हैं* सुन्दरी बैठो। कोई सुन्दर सा गान सुनने की इच्छा है। (कुछ उत्तेजित होकर) सुनाओ न कोई मद भरा गान।[1] यहाँ विक्रम की लिबिडो वृत्ति परिलक्षित होती है। परन्तु विक्रमादित्य के चाचा दाधसिंह को यह बात अच्छी नहीं लगती है। वह सभी के सामने विक्रम की भर्त्सना कर नर्तकी को वहाँ से हटा देता है। तदुपरान्त भीलराज भी विक्रम से कहता है महाराणा! मैंने अपने अँगूठे के खून से आपका राजतिलक कर उस दिन किया था? मेवाड की प्रजा को विलासिता का नहीं त्याग का अभ्यास रहा है। जो वीर नागरिक राणाओं के सिर पर मुकुट रख सकते हैं वे उसे उतार *भी सकते हैं।[2] यहाँ भीलराज द्वारा जनमत को प्रभावित करने वाला विरोधी* दबाव (Cro s press ire) का परिचय मिलता है। तत्पश्चात विक्रमादित्य की माँ जवाहर बाई उदयसिंह की माँ कर्मवती वहाँ आ जाती है। जवाहरबाई

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा बन्धन २१ वां संस्करण पृ० ७

२ वही पृ० ९

विक्रमादित्य के सर का राजमुकुट उदयसिंह के मस्तक पर रखना चाहती है। इतने में कमवती उससे कहती है, ठहरो राजमाता तुम धन्य हो ! तुमने महाराणा संग्रामसिंह की पत्नी के योग्य बात कही है ! धन्य हो विक्रम ! तुमने पिता राणा संग्रामसिंह जी के समान ही त्याग का परिचय दिया है ! वे भी एक रोज अपने चरणों से राज मुकुट को ठुकरा कर चले गये थे। भीलों की भेड चराकर उन्होंने जीवन निर्वाह किया था। किन्तु उदयसिंह तो उन्हीं साताजी का पुत्र है। यदि वह गृह कलह की आग प्रज्ज्वलित करने वाला सिद्ध हुआ तो मैं उसका गला घोंट दूँगी। वह बच्चा है जीजा, उसे खेलने को तलवार चाहिए, राजमुकुट नहीं।"[1] प्रस्तुत उद्धरण से कमवती के सलीवन प्रणीत व्यवहार के चिरस्थायी प्रतिरूप प्रकार (Enduring pattern of Behaviour) के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। तदुपरान्त कमवती वह मुकुट पुनः विक्रम को पहना देती है। तब विक्रम घुटने टेक कर कहता है 'मैं पापी हूँ नराधम हूँ। महाराणा संग्रामसिंह आकाश के उज्ज्वल नक्षत्र थे। आप में उन्हीं की आत्मा का तेज है। आज आपने मेरे हृदय के अंधकार को परास्त करके भगा दिया है। अपनी चरण रज दीजिए, उससे मुझे बल मिलेगा। आपके पुण्य प्रताप से आपके इस कपूत विक्रम में नई प्राण प्रतिष्ठा होगी।"[2] यहाँ महाराणा विक्रम में उदात्तीकरण (Sublimation) का भाव लक्षित होता है। तत्पश्चात श्यामा एवं चारणी गीत गाती हुई प्रवेश करती है। इन गीतों में राजपूतों की एकता एवं उनकी मान की रक्षा का हृदयगम परिष्कार हुआ है। इसके बाद गुजरात के बादशाह का दूत विक्रम से मिलने के लिए आता है। उसके द्वारा बहादुरशाह के मेवाड़ पर होने वाले आक्रमण की जानकारी मिलती है। इस घटना से महाराणा विक्रम की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं। दूत के जाते ही विक्रम चाँदखाँ से कहता है, 'अच्छा, खैर अब चलिए, आगे की लड़ाई के लिए बैठकर सलाह करनी है। अत्याचारियों की चुनौती का जवाब देने में मेवाड़ कभी पीछे नहीं रहा। आज भी वह अतिथि रक्षा के महान् कर्तव्य के साथ साथ रण धर्म का पालन करेगा।"[3] यहाँ विक्रम में रेवं प्रणीत प्रतिस्पर्धात्मक इच्छा (Competitive will) परिलक्षित होती है। दूसरी ओर माडू के राजमहल में बहादुरशाह एवं मुल्लाओं में भावी युद्ध को लेकर वार्तालाप हो रहा है। बहादुरशाह यूरोपियन तोपखाने की मदद से

१ रक्षा बन्धन पृ० १० ११
२ वही, पृ० १२
३. वही, पृ० २३

चित्तौड का किला फतह करना चाहता है। इसके बाद महाराणा विक्रमादित्य मवाड के सेनापति नीलराज सामन्त आदि लोग जन्मभूमि पर छाय हुए सकट को लेकर बहस करने लगते है। इतने म ही कमवती तथा चारणी का वहाँ आगमन होता है। शत्रु के साथ सन्धि कर लेना कमवती को मान्य नहीं। वह आवेश के साथ कहती है 'लडते-लडते मर जाना या विजय प्राप्त करना राजपूत तो दो ही बातें जानते हैं। यह सन्धि शब्द आपने किससे सीख लिया ? यदि प्राणों का इतना मोह है तो चूडियाँ पहनकर घर बैठो लाओ यह तलवार मुझे दो।' यहाँ कमवती की इच्छा शक्ति (The will) दृष्टिगोचर होती है। अन्त में चित्तौड की रक्षा के लिए कमवती हुमायूं को राखी एव पत्र भेजती है।

द्वितीय अक

धनदास एव मौजीराम म धन को लेकर वार्तालाप चल रहा है। इतने म ही धनदास की पत्नी माया वहाँ आ जाती है। इस समय धनदास माया से कहता है 'तुम नहीं जानती मैंने बहादुरशाह को रसद पहुँचाने का ठेका ले लिया है। एक-एक के दस-दस होंगे देवी ! व्यापार म पाप कैसा ? जो पैसे देता है, उसे हम माल देते हैं। जो ज्यादा कीमत देगा उसी के हाथ माल बेचेंगे। हम तो अपना लाभ देखेंगे देश अपनी भुगते।' प्रस्तुत उद्धरण म धनदास के इड पर प्रकाश प्रकाश पडता है। परन्तु माया को यह बात ठीक नहीं जँचती। वह वह उठती है 'आग लगे तुम्हारे व्यापार म ! मेरे स्वामी ! लाखों मेवाडियों का अभिशाप न लो ! यह धन मरते वक्त सिर पर लाद कर न ले जाओगे। मेरे देवता ! तिजोरियों के ताले खोल दो देश के काम के लिए, उसी देश के लिए जिसकी मान रक्षा के लिए क्षत्रियों से मेवा ड़ियों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दी है जिसका अन्न जल हमारे वश की नस-नस म भिदा हुआ है। मेरे सर्वस्व ! तुम राक्षस नहीं देवता बनो ताकि मैं अपनी श्रद्धा के फूल तुम पर चढा सकूँ। बोलो प्राणेश्वर ! बोलो ! तुम्हारे कुकृत्य पर देश दिखाए हँस रही हैं। इस हँसी का तुम्हारे पास क्या उत्तर है !'[३] यहाँ माया का नतिकाह (Super Ego) ध्यान देने लायक है। इससे धनदास का इड गायब हो जाता है। वह अपनी गलती पर पछताने लगता है। दूसरी ओर गंगा के तट पर हुमायूं और उसके सेनापति हिन्दूबेग

---

१ रक्षा-बन्धन पृ० ३१
२ वही पृ० ४०–४१
३ वही, पृ० ४१

और तातारखाँ बैठे हैं। इतने में ही स्वर्गीय महाराणा संग्रामसिंह की पत्नी महारानी कर्मवती का दूत वहाँ आ जाता है। उसके द्वारा राखी एवं पत्र पाते ही हुमायूँ कह उठता है 'बहन कर्मवती से कहना, हुमायूँ तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हुआ तो क्या, वह तुम्हारे सगे भाई से बढ़कर है। वह देना-मवाड की इज्जत मेरी इज्जत है। जाओ।'[1] यहाँ हुमायूँ का प्रबल अहम् (Strong Ego) परिलक्षित होता है। तदुपरान्त हुमायूँ हिंदूवेग से कहता है कि बहन का रिश्ता दुनिया के सारे सुखों, दौलत, ताकतों और सल्तनत से बढ़कर है। मैं इस रिश्ते की इज्जत रखूँगा। सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया को यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसल्मान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। इसके बाद के एक दृश्य में श्यामा विजयसिंह को लड़ने की प्रेरणा देती है। तत्पश्चात बहादुरशाह चित्तौडगढ़ पर हमला कर देता है। कर्मवती, बाघसिंह, जवाहर बाई एवं सामंत जी-जान से लड़ते हैं। जब बहादुरशाह की सेना दुर्ग की एक दीवार तोड़कर अन्दर घुस जाती है तब राजमाता जवाहरबाई प्राणों की बाजी लगाती है। वह शत्रु सेना पर बिजली की तरह टूट पड़ती है। इतने में ही विजयसिंह भीलों सहित आकर उसकी सहायता करता है। इससे शत्रु सेना भाग जाती है। उसी समय श्यामा भी वहाँ आ जाती है। उसी क्षण जवाहरबाई विजयसिंह के माथे पर रक्त का टीका कराकर उसे युवराज बनाती है।

तृतीय अंक

घनदास की धन-तृष्णा कम न होने के कारण माया उसकी भर्त्सना करती है। तत्पश्चात् हुमायूँ अपने सेनापति के साथ बातचीत करता है। इतने में ही शाहशेख औलिया वहाँ आ जाता है। हुमायूँ अपनी इच्छा प्रदर्शित करते समय उसके सम्मुख कहता है "मेरी सारी फौज चाहे यहीं रह जाय पर मैं अकेला ही मेवाड़ की मुसीबत में शामिल होकर मेवाड़ी राजपूतों के साथ मिलकर, मामूली सिपाही की हैसियत से लड़ सकूँ। बहन कर्मवती के कदमों की पाक खाक सर पर लगाने का मौका पा सकूँ और लड़ते हुए जान देकर उनकी राखी का कर्ज चुका सकूँ।"[2] यहाँ हुमायूँ में मैक्डूगल प्रणीत मन ऊर्जा (Horme) सिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है। थोड़ी ही देर में हुमायूँ को ज्ञात होता है कि शेरखाँ ने फिर फौज इकट्ठी कर ली है, और बिहार एवं बंगाल पर कब्जा कर रहा है। हुमायूँ के सामने प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि

१ रक्षा-बन्धन पृ० ४७

२ वही, पृ० ७९

वह किस तरफ कूच करें ? बंगाल की तरफ या चित्तौड़ की तरफ ? आखिर राखी का कर्ज चुकाने के लिए वह चित्तौड़ की ओर चल पड़ता है। इधर चित्तौड़ में बहादुरशाह फिर जोर में लड़ रहा है। इस युद्ध में जवाहरबाई अन्तर्धान हो जाती है। बाघसिंह, भीमराज, विजयसिंह तथा सामन्तों का मेवाड़ की रक्षा करने में अवसान आ जाता है। हुमायूँ अभी तक नहीं आया है। आखिर विवश होकर माता कमवती और बारह हजार क्षत्राणियाँ जौहर की ज्वाला में भस्म हो जाती है। तत्पश्चात् महाराणा विक्रमादित्य मेवाड़ की एक जंगली पगडंडी में थका हुआ अस्त व्यस्त अवस्था में दिखाई देता है। मेवाड़ की हार सुनकर वह हतबुद्ध सा हो जाता है। बहादुरशाह की विजय जात हुए भी वह कहता है कि मेरी मेवाड़ की फतह मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी हार है। क्योंकि उसे यहाँ सूने खंडहरों के सिवा कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इतने में ही कमवती के राखी का ऋण चुकाने के लिए हुमायूँ आ जाता है। जौहर की कहानी सुनकर वह सुन्न हो जाता है। वह विभ्रम से कह उठता है "बहन के प्यार की कीमत इन राखी के धागों की कीमत दुनिया की बादशाहत और बहिश्त की सल्तनत से भी बढ़कर है। मेहताब! मुझे अफसोस इसी बात का है कि मैं ठीक वक्त पर आकर बहन कमवती के कदमों की खाक सर न चढ़ा सका। उसकी कमी को उनकी चिता की धूल से पूरा करता हूँ। मैंने मेवाड़ आने में जो देरी की उसकी सजा मुझे अभी भुगतनी है। ... मगर प्यारी बहन! दिल में एक कसक बेबसी की एक आह छुपाये लिये जा रहा हूँ। अफसोस! तुम्हारी राखी का कर्ज न चुका पाया।"[1] यहाँ हुमायूँ में हार्नी प्रणीत मनस्ताप सिद्धान्त (Theory of Neurosis) दृष्टिगोचर होता है।

रक्षा बंधन का नायक हुमायूँ अन्तर्मुखी संवेदन प्रकार (Introverted Sensation Type) का पात्र है। वह कमवती की राखी की लाज रखने के लिए मेवाड़ की ओर चल पड़ता है परन्तु देरी के कारण उसके सब प्रयास धूल में मिल जाते हैं। कमवती बहिर्मुखी भावना प्रकार (Extroverted Feeling Type) की नारी है। देश की रक्षा ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। महाराणा विक्रम में कुछ कमियाँ होते हुए भी उसकी शूर वीरता दृष्टव्य है। विजयसिंह एक यशस्वी युवक है। धनदास स्वार्थी भावना के कारण हीन से हीन कृत्य करने के लिए हिचकता नहीं है। जवाहरबाई एवं श्यामा वीर क्षत्राणियाँ हैं जो जन्मभूमि के लिए मर मिटती हैं।

---

१ रक्षा बन्धन पृ० १११ ११२।

रक्षा-बन्धन के कथोपकथन ओजस्वी, प्रवाहमय एवं गतिशील है। अवसर के अनुकूल वे सर्वत्र परिवर्तित होते हैं। उदाहरण के तौर पर—

माया— जिनकी हिय की गुन हो गई है उन्हें दिन और रात बराबर है। उनके लिए न वक्त आता है न जाता है। (बात बदलकर) तो अच्छा, अब मैं जाऊँ।

धनदास—और थलियाँ भर कर कहाँ ले चली? कुछ तो बचन दो दवा!

माया— कुत्ते की दुम सौ बरस नली में रखी जाने पर भी टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है। यही हाल तुम्हारी तृष्णा का भी है।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनों से ज्ञात होता है कि धनदास पर आदत के प्रभाव (Effects of Habit) अधिक होने से वह बार बार स्वार्थ के चंगुल में फँस जाता है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने इस नाटक में सरल मधुर एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। सीधी सादी भाषा में भव्य भावों का निर्माण हुआ है। भाषा का कहीं कहीं काव्यात्मक परिवेश भी दृष्टिगोचर होता है। यथा—

(१) मैं हूँ डाल में तोड़ी हुई पैरों से रौंदी हुई कलिका। मैं हूँ मूर्छित हाहाकार। मैं हूँ ऊपर से बर्फ किंतु भीतर चिर प्रज्ज्वलित ज्वालामुखी। मेरा जीवन है मरी हुई सरिता, उजड़ा हुआ उपवन, ऊसर खेत, पतझड़ का पेड़।

(२) कितना खुशनुमा है आपका देश महाराणा! आसमान से बातें करने वाले हरे भरे पहाड़ कल कल, छल छल करते हुए नाचते कूदते जाने वाले झरने समुंदर से होड़ करने वाले तालाब बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग, घने जंगल! कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है।

(३) संवाद का भाषागत भी काव्य हो गया है। किसी कोने में आना का कोई नक्षत्र दिखाई नहीं देता।[2] मुगल पात्रों की भाषा पर उर्दू शैली का प्रभाव है। इससे उनकी भाषा अधिक स्वाभाविक बन पड़ी है। यथा—फकीर सफाई, पुश्तैनी वफादार बगुनाह परवर दिगार अमन अहसान फरामोश नाकामयाब नहस, रफ्तार बेपद लफ्ज इंसाफ, बहिश्त गुल किस्मती हिफाजत हिदायत मजहब गुमराह अल्फाज इम्तहान, जहन्नुम

१ रक्षा बन्धन पृ० ७४

२ वही पृ० क्रमश ७४ ७८ ८९।

Personality) पर प्रकाश पड़ता है। इसके बाद के एक दृश्य म दादा जी कोडदेव शाहजी के बन्दी के कारण चिंताग्रस्त दिखाई देता है। इतने म ही शिवाजी वहाँ आ जाता है। प्राप्त स्थिति की जानकारी मिलते ही वह दादाजी कोंडदेव से कहता है कि वह दिन अवश्य आयेगा जब पिताजी मेरे कार्यों का समर्थन करेंगे। तत्पश्चात जीजाबाई भी आ जाती है। शिवाजी उसके सम्मुख नतमस्तक होते हैं उसका तब वह उसे चेतावनी देते हुए कहती है उठो बेटा ! मैं पिता पति बन्धु वा धन गुरु स्वार्थ कुछ नहीं जानती। मैं केवल देश को जानती हूँ और तुम्हें आदेश करती हूँ कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की चरम साधना हो।[1] यहाँ जीजाबाई म प्रकोय मनोविज्ञान के सिद्धान्त (Principles of Hormic Psychology) दृष्टिगत होते हैं। इसके बाद दादाजी दुर्बल अहम् (Weak Ego) के कारण शाहजी का पुनर्स्मरण करके नम्र हो गया है। दूसरी ओर बीजापुर का बादशाह शाहजी पर शिवाजी की सहायता का आरोप लगा रहा है। शाहजी जीवित अवस्था म ही इस म चना ना रहा है। इतने म ही वहाँ सहायता आती है और शाहजी की जान बचाती है। तत्पश्चात शाहजी को कद म रखा जाता है। तत्पश्चात राजगढ़ म शिवाजी एक वार्तालाप म मोरोपन्त पिंगले से कह उठता है किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली की बादशाहत की जड उखाड डालना चाहता हूँ वह इसलिए नहीं कि वे मुसलिम राज्य हैं बल्कि इसलिये कि वे आततायी हैं एक तन्त्र है लोकमत को कुचल कर चलने के आदी हैं।[2] यहाँ शिवाजी म रक के अनुसार विधायक इच्छा (Positive will) परिलक्षित होती है। इतने म ही आबाजी सोनदेव कल्याण की पुत्र वधू लेकर शिवाजी के सम्मुख उपस्थित होता है। आबाजी के इस कृत्य से शिवाजी की भौंह तन जाती हैं। नाटककार ने यहाँ स्पष्ट किया है जीजाबाई ने ही इस भजकर शिवाजी की परीक्षा ली है। इसके बाद के एक दृश्य म औरंगजेब का राजनीति स्पष्ट हो जाती है। भले ही यह घटना इतिहास सम्मत क्या न हो बल्कि प्रभाजी ने लोकवाणी के आधार पर इस घटना को सही माना है। शिवाजी रामदास के काय की सराहना करते हुए कहता है कि आप जैसा पथ प्रदर्शक न मिलता तो महाराष्ट्र भी और प्रान्तो की तरह बगरमी की माद ले रहा होता। इस अंक के अन्त म मोरोपन्त

---

१ शिवा साधना प० २३

२ वही प० २९

पिंगले के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए शिवाजी कहता है, 'जावली वापस हो देनी थी तो चन्द्रराव मोरे का खून बहाने से क्या लाभ था ? जावली पश्चिमी घाट के समस्त प्रदेश की कुंजी है। इसके हाथ में आ जाने से समस्त पहाड़ी प्रदेशों को अधिकार में करना सरल हो गया है। प्रतापगढ़ के बन जाने से हमारी सीमा सुरक्षित हो गई है। अब हम जावली कैसे छोड़ सकते हैं ?'[1] यहाँ अरस्तू के अनुसार शिवाजी के नेतृत्व की आतंक की नीति (Policy of Terror) स्पष्ट हो जाती है।

द्वितीय अंक

वाई के जंगल में प्रतापराव कुछ सोच रहा है। इतने में फकीर के वेश में गोपीनाथ वहाँ आकर प्रतापराव से कहता है कि तुम चन्द्रराव मोरे के भाई हो भविष्य में जावली के अवश्य राजा बनोगे। उन दोनों के प्रस्थान के बाद बड़ी साहबा और अफजलखाँ का प्रवेश होता है। बड़ी साहबा अफजलखाँ से सलाह देती है कि शिवाजी को सुलह का पैगाम भेजकर उसे अपने डेरे में बुला लो और उसे कैद करो। उसी समय कृष्णजी भास्कर वहाँ आकर खाँ के सम्मुख शिवाजी की शर्तें प्रस्तुत करता है। अफजलखाँ सब शर्तें मंजूर करता है और प्रस्थान के पूर्व अपनी तीनों बेगमों को तालाब में डुबाकर मार डालता है। उसके इस नृशंसतापूर्ण बर्ताव से उसकी अपराध ग्रंथि पर प्रकाश पड़ता है। तदुपरान्त प्रतापगढ़ की तलहटी में बनाये हुए शामियाने में शिवाजी और अफजलखाँ की भेंट होती है। खाँ क्रुद्ध होकर शिवाजी को अपने बाहुओं में कसता है। फिर दोनों हाथों से उसकी गरदन मरोड़ता है। शिवाजी उसके पेट में बघनखा घुसेड़ देता है। अफजलखाँ चिल्लाता है—धोखा धोखा ! मदद, मदद ! इतने में ही सयद बंदा आकर शिवाजी पर वार करता है शिवाजी का साफा उड़ जाता है पीछे से जीव महाल वार करके सयद बंदा की तलवार काट गिराता है। थोड़ी ही देर में अफजलखाँ की मृत्यु होती है। इस घटना से ज्ञात होता है कि शिवाजी विरोधी दलों के नेताओं का दमन (Repression of the Leader of the Opposit Groups) करने में कितना कुशल था। इसके बाद औरंगजेब शिवाजी की बगावत कुचलने के लिये शाइस्तेखाँ की नियुक्ति कर देता है। दूसरी ओर चाकन किले को मुगल सेना ने घेरा है। कुछ समय के बाद वह किला फिरंगाजी के हाथों से मुगलों के हाथों जाता है। तत्पश्चात पाँढरपाणी की घाटी में बाजी देशपांडे अपने साथियों के साथ फजल मुहम्मद के साथ

१ शिवा-साधना, पृ० ४९

लड़ता है । जब तक ि याजी विजयगढ़ न‌ा पहुंचता तब तक बाजी गनु क साथ जूझता रहता है । इसी बीच बाजी एक सनिक न कहता है नता आ का आना एक सनिक क लिए इ नराय मकत है । मग यह मरा निश्चय है कि मैं नाथ की आवाज सु ा बिना एक कदम भी पाछ नहा हटूगा ।[1] प्रस्तु अवतरण स ज्ञात होता ह कि नता एव अनुयायियो म कितना घनिष्ठ सम्ब ध होता ह । यहां बाजी म नता का प्रतिष्ठा (Prestige of the Leader) आग पड़ा है । इतन म ही एक गाली आकर बाजी को लगती है और वह गिर पड़ता है । शिवाजी क सुर्ग त गढ़ म पहुंचन की तोप चलन का आवाज आती है । बाजी इतकृत्य होकर महाशान्ति म विलीन हो जाता है । इस अक क आ तम दृश्य म शिवाजी अपन सहयोगियो क साथ भावी योजना क बार म विचार विमश कर रहा है । एक वातालाप म वह मारोप त स कहता है, जजीरा क सिद्दिया तथा फिरगियो की तोपक भी उपमा करना उचित नहा। हम अपनी जल सना को खूब सुदृढ़ बनाना चाहिए । बाजापुर और दिल्ली की सत्तनता क समाप्त हो जान पर समुद्र माग स व्यापारियो क छद्मवष म आन वाली य जातियाँ ही भारतीय स्वत त्रता का शत्रु साबित होगी । हम इनस भी निबटना है ।[2] यहां शिवाजी म योजना निर्माण करन वाल क रूप म नता (The Leader as a Planner) का रूप दृष्टिगोचर होता है । तत्पश्चात शाहजी का आगमन होता है । दश की स्वाधीनता क लिए प्रयत्न करन वाल पुत्र को दखकर वह फूला नहीं समाता है । हष म गद्गद होकर जीजाबाई माँ भवानी स प्राथना करती है कि शीघ्र ही वह दिन लाओ जब स्वात त्र्य आलोकित और स्वाधीन पृथ्वी पर हम भारतवासी तुम्हारी आरती कर सक ।

तृतीय अक

प्रबलगढ़ म मारोपत पिंगल और नता जी पालकर शम्भूजी कावजी क बार म बातचीत कर रह हैं । इतन म ही शिवाजी यसा जी कक और तानाजी मालुसुर क साथ वहाँ आ जाता है । शिवाजी शम्भूजी को दशद्रोही कहलाता है । तदुपरान्त शिवाजी प्रबलगढ़ क किलदार कसरी सिंह की माँ और पुत्री को बुला लता है । उनकी दश निष्ठा का गौरव कर उन्ह माँ एव बहन क रूप म स्वीकार कर लता है । बहन क लिए बहुमूल्य जवाहरात और आभूषण द दता है । सचमुच चारित्र्य ही शिवाजी क जीवन का क द्रबिन्दु है । तत्पश्चात शिवाजी शाइस्ताखाँ क सम्ब ध म एक योजना प्रस्तुत करत हुए मोरो

---

१ शिवा-साधना, पृ० ७२

२ वही पृ० ७६

पंत से कहता है, 'इसका भी उपाय सोच लिया है। कटराजघाट के जंगल में वृक्षों की शाखाओं में और झाड़ियों में मशाल बाँधकर कुछ आदमी वहाँ नियुक्त कर दूँगा। जैसे ही इधर हमारा काम होगा, वे लोग उन्हें जलाकर भाग जावेंगे। शाइस्ताखाँ के सिपाही हम उसी ओर जाते समझ कर पीछा करेंगे, किंतु हम सिंहगढ़ की ओर के मार्ग से भाग आवेंगे।'[1] यहाँ शिवाजी के विशेषज्ञ के रूप में नेता (The Leader as Expert) का परिचायक मिलता है। दूसरी ओर पूना के लाल महल में शाइस्ताखाँ आराम कर रहा है। वह दो गीत गा रहा है। शाइस्ताखाँ गाना सुनते सुनते ही सो जाता है। इतने में ही शिवाजी और उसके साथी महल के भीतर घुस जाते है। शाइस्ताखाँ भाग जाने की कोशिश करता है। इतने में शिवाजी की तलवार से उसका अँगूठा कट जाता है। तदुपरान्त आगरे के दीवाने-खास में दिलेरखाँ जयसिंह जसवन्त सिंह तथा अन्य सरदार शिवाजी के बारे में बातचीत कर रहे हैं। इतने में औरंगजेब भी आ जाता है। बीच में ही सूरत का एक आदमी शिवाजी द्वारा सूरत लूटने का पैगाम लेकर आता है। शिवाजी का बन्दोबस्त करने के लिए औरंगजेब जयसिंह और दिलेरखाँ को नियुक्त कर देता है। कुछ दिनों बाद सासवड में शिवाजी और जयसिंह की मुलाकात हो जाती है। दोनों में कुछ प्रस्ताव स्वीकार हो जाते है। इस अवसर पर शिवाजी जयसिंह से कहता है "आपकी आज्ञा से मैं मौत के मुँह में भी जा सकता हूँ। बात सिर्फ इतनी है कि उससे मेरा स्वप्न अधूरा ही रह जायगा। जब आपने मुझे अपना पुत्र कह कर पुकारा है तो फिर हम दोनों के बीच गोपन का आवरण क्यों हो? मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मुझे व्यक्तिगत रूप से राज्य नहीं चाहिए, धन ऐश्वर्य नहीं चाहिए, सुकीर्ति भी नहीं चाहिए। मैं तो माँ-भारत को दीन-दुखी देखकर व्यथित हूँ। मैं उसे स्वाधीन देखना चाहता हूँ। मुगलों से संधि कर लेने पर मेरा यह काम रुक जायगा?"[2] यहाँ शिवाजी में एरिक फ्रोम के अनुसार इतिहास का दर्शन (Philosophy of History) दृष्टिगोचर होता है। फ्रायड के मतानुसार इतिहास मानव निर्मित है, परन्तु इसके विपरीत फ्रोम ने कहा है कि मानव इतिहास-निर्मित है। अतः यहाँ कहना न होगा कि शिवाजी का कार्य फ्रोम के ही अनुसार है। तत्पश्चात् औरंगजेब शिवाजी को आगरा बुलाकर दरबार में उसका अपमान करता है। इस समय शिवाजी की आत्मसम्मान की भावना जाग्रत हो जाती है। वह रामसिंह से

१ शिवा-साधना, पृ० ७२

२ वही, पृ० १०७

कहता है कि मुझे नहीं मालूम था कि राजपूत भी झूठे होते हैं। छराने दा रामसिंह मैं आज औरंगजेब का गूरा कर दूंगा या आत्महत्या कर लूंगा। शभू ने आग शिवाजी का सिर कभी नहीं झुका कभी नहीं नमेगा। इसी वक्त शाहजादी जेबुन्निसा शिवाजी को देखकर बेहोश हो जाती है। आखिर शिवाजी का औरंगजेब के पिंजरे में फँसने के सिवा चारा नहीं होता।

चतुर्थ अंक

औरंगजेब के अन्तःपुर के एक भाग में शाहजादी जेबुन्निसा अकेली गा रही है। इतने में उसकी फूफी जहाँआरा वहाँ आ जाती है। दोनों में शिवाजी को लेकर बहस होती है। इनके वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है कि जेबुन्निसा शिवाजी की ओर आकृष्ट हो चुकी है। दूसरी ओर आगरा में शिवपुरी की हवेली में शिवाजी, सभाजी और हीरोजी फरजन्द परामर्श कर रहे हैं। इतने में रामसिंह वहाँ आ जाता है। तब शिवाजी उससे कहता है मैं तुम्हें से पूछता हूँ कि मैं देश के प्रति विश्वासघात कैसे करूँ। नेता मृत्यु के बाद भी देश का नेतृत्व करता है किन्तु उसका नैतिक पतन उसके आन्दोलन का सर्वनाश कर देता है। नैतिक पतन के आगे मृत्यु की कोई हस्ती नहीं।''[1] प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि शिवाजी की एक विशिष्ट नीति है। वह मूल विचार प्रदान करने वाला नेता (Group originator) है। इसके बाद के एक दृश्य में जेबुन्निसा शिवाजी के बारे में सोच सोचकर पागल सी हो गई है। तदुपरान्त शिवाजी सभाजी के साथ आगरे के लाल किले से मुक्त होकर प्रतापगढ़ आ जाता है। आते ही माँ जीजाबाई के चरण छूता है। जीजाबाई की आँख ठण्डी हो जाती है। वह सिंहगढ़ पर अपना झण्डा फहराने की इच्छा प्रदर्शित करती है। इतने में तानाजी अपने पुत्र के विवाह का निमन्त्रण देने आता है। शिवाजी द्वारा माँ जीजाबाई की इच्छा विदित होते ही अपने पुत्र का ब्याह पीछे रखकर पहले सिंहगढ़ की ओर कूच करता है। गोह के सहारे सूर्याजी मालुसुरे के साथ गढ़ पर आते ही एक सैनिक प्रश्न करता है कि किन्तु सैनिक जाग पड़े तो ? तानाजी कह देता है 'तो क्या होगा मावले कहीं मौत से डरते हैं। आज यदि हम जीत रहे तो सिंहगढ़ पर भगवा झण्डा फहराकर रहेंगे और यदि मर गये तो मावलों के साहस और शौर्य की अमिट लकीर भारतीय इतिहास के हृदय पर अंकित कर जायेंगे। चलो, अब हम अपना कार्य आरम्भ करें। यहाँ[2] तानाजी में रक्त प्रणीत प्रतिस्पर्धात्मक इच्छा

---

१ शिवा-साधना, पृ० १२१

२ वही, पृ० १४३

(Competitive Will) परिलक्षित होती है। आखिर उदयभानु के साथ लड़ते हुए तानाजी को वीर गति प्राप्त हो जाती है। इस घटना से शिवाजी शोक सागर मे डूब जाता है।

पचम अक

जजीरा द्वीप के घेरे म शिवाजी मोरोप त पिगले के साथ परामर्श कर रहा है। वह उससे कहता है 'युद्ध के साधना मे धीरे धीरे क्रान्ति होती जा रही है। इस युग मे केवल प्रबल स्थल-सेना रखने से ही हमारा राज्य सुरक्षित नही समझा जा सकता। भारत के पश्चिमी किनारे पर पुतगाल वासी, फासीसी, डच अबीसीनिया वासी तथा अग्रज लोग व्यापारियों के छद्म रूप मे आकर अपने पर जमाते जा रहे हैं और धीरे धीरे आगे बढ रहे हैं। आज उगली पकडी है तो कल पहुचा पकडेंगे। मुझे मुगलो से इतना भय नही, जितना इन फिरगियो से है।'[1] प्रस्तुत अवतरण से ज्ञात होता है कि शिवाजी मे एक दूर दृष्टि है, जिसमे गस्टाल्ट मनोविज्ञान वालो की परिलक्षित होती है। दूसरी ओर आगरे के लाल किले म औरगजेब दिलेरखाँ के साथ शिवाजी के निगमन के बारे म बातचीत हो रही है। इस वार्तालाप के सिलसिले म एक जगह औरगजेब दिलेरखाँ से कहता है, 'दिलेरखाँ, शायद तुम ठीक कह रहे हो। लेकिन औरगजेब को आज चारो तरफ अपने खिलाफ साजिश नजर आ रही है। राजा जयसिंह और तुम्ह वापस बुलाकर मने शाहजादा मोअज्जम और राजा जसव तसिंह को दक्खिन भेजा। लेकिन ऐसा जान पडता है कि राजा जसवन्तसिंह भी शिवाजी से मिल गया है। उस शुरू से ही औरगजेब से कीना रहा है। मैंने फिर भी उसे मौका दिया। पर जान पडता है कि अब मोअज्जम जसव तसिंह और शिवाजी मिलकर मुझे तख्त से उतारने की साजिश कर रहे है।'[2] यहाँ हार्नी के अनुसार औरगजेब का अग्रधर्षी (Agressive) व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। अग्रधर्षी व्यक्ति अन्य व्यक्तियो को अपना विरोधी समझते हैं। इनका किसी पर विश्वास नही होता। औरग जेब म इसी की अवतारणा हुई है। तत्पश्चात महावतखाँ का भी शिवाजी के खिलाफ लडते समय अपयश मिलना है। तदुपरा त रायगढ म शिवाजी का राज्याभिषेक हो जाता है जिससे सभी की आखें तृप्त हो जाती है। शिवाजी अपने जीवित एव दिवगत साथियो का कृतज्ञतापूवक स्मरण करता है। जीजा बाई के स्वप्न की पूर्ति होने से वह कृतकृत्य हो गई है। वह अपने लडके शिवा

१ शिवा-साधना, पृ० १४८
२ वही, पृ० १५३-१५४

जी को उपदेश देते समय कहती है कि यह राजमुकुट और राजदण्ड तुम्हारी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। इसको जिस दिन तुम या तुम्हारी आगामी पीढ़ी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझेगी, उसी दिन राजशक्ति को जनता का सहारा मिलना बन्द हो जायगा। तत्पश्चात् वह थोड़े ही दिनों में स्वर्ग सिधारती है। आखिर रामदास स्वामी शिवाजी को धर्म पथ पर अडिग रहने का उपदेश देकर उसमें नये प्राण फूंक देता है।

शिवा साधना के नायक शिवाजी असाधारण या [illegible] पात्र है। उसमें नेता के सभी गुण विद्यमान हैं। वह जितना उदार एवं क्षमाशील है उतना ही कठोर। नीति सम्पन्नता उसके व्यक्तित्व का उल्लेखनीय पहलू है। जीजाबाई एक आदर्श माता है। वह आजीवन शिवाजी का पथ प्रदर्शन करती रहती है। उसका [illegible] पुत्र पर [illegible] गुण संस्कार वात्सल्य प्रणीत वातावरणवाद की याद दिलाते हैं। औरंगजेब की हठी एवं संशयी वृत्ति उसके चरित्र की दुर्बलताएं दर्शाती हैं। रामदास स्वामी का ध्येयवाद ध्यान देने लायक है। तानाजी मालुसरे, यशाजी कंक, बाजी पासलकर आदि की स्वामिभक्ति तथा देशनिष्ठा सराहनीय है। अफजलखाँ, शाइस्ताखाँ प्रभृति की हीन भावना ही उनके नाश का कारण बनती है। जेबुन्निसा, रोशनआरा एवं जहानारा ये पात्र उनके यौवन की उपेक्षा पाकर कुण्ठित हैं।

इस नाटक के संवाद नाटकोचित सरल एवं सरस हैं। वे पात्रानुकूल एवं उनके चरित्र को विकसित करने वाले हैं। उदाहरण के तौर पर—

जेबुन्निसा—किसी तरह शिवाजी की जान बचानी होगी।

जहानारा—उनकी जान बचाकर तुम क्या पाओगी? वह बहादुर क्या तुम्हें

जेबुन्निसा—और कुछ नहीं मुझे सिर्फ एक बहादुर की जान बचाने का फख्र हासिल करना है।[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों में जेबुन्निसा की व्यक्तिगत अनुप्रेरणा (Individual Motivation) उमड़ पड़ा है।

इस नाटक की भाषा सरल, शुद्ध, संयत भावानुकूल एवं प्रभावपूर्ण है। विषयानुसार भाषा भी गम्भीर बन पड़ी है। उसमें न अलंकारों की भरमार है न काव्यात्मकता की प्रचुरता। मुसलमान पात्रों की भाषा पर उर्दू का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यथा—दगाबाज, साजिश, बदनाम, ख्वाब, फख्र, दाजस [illegible] कत्ले आम, ख्वाहमख्वाह, हिफाजत, लाजिमी, तब्दील, मुहताज, दीदार, बदनसीब, बदर, बेसहारा, अफसोस, तख्ते-ताऊस, गम, मर्ज, मजि[illegible]-न[illegible]

1 शिवा-साधना, पृ० ११६

जन्मात, नाफमानी[1] आदि । मुहावरा एव कहावता का प्रयोग भी बड कौशल स किया गया है। उदाहरणतया–श्रीगणेश करना धूल मे मिला देना, चार चाद लगाना बाज आना साप मर पर लाठी न टूटे, लोहा लेना, चूर चूर करना हाथ धो बैठना मौत के घाट उतारना, अगूठा दिखा देना, आखे बिछाना, न माया ही मिली और न राम बीडा उठाना सोलह आना सच, दात खट्टे करना, बाल बाका न होना, धावा बोल दना, पानी फेर दना, घोडे बचकर सोना, ढिंढोरा पिटवा देना दाल नही गलाना, गुलछर्रे उडाना, चगुल मे फसना, कमर ताड दना खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे, पौ फटना, आसमान के तारे तोडना, रोगटे खडे होना उतारू हो जाना, लडे सिपाही नाम सरदार का, आँखें प्राप्त हो जाना[2] इत्यादि । इस नाटक म प्रयुक्त सूक्तियो द्वारा मनोभावो का यथाथ निरूपण हो गया है । उदाहरण क तौर पर––

(१) मुँह से कहन से अ तर के निश्चय का मूल्य कम हो जाता है।

(२) वीरता एक वस्तु है और साधना दूसरी।

(३) जो कुछ सहज प्राप्त है उसी पर सतोष करना बहुत बडी दुबलता है।

(४) जवानी के ज्वार भाट का दनिक जीवन का प्रवाह नही बनाया जा सकता।

(५) पुत्र का जीवन माता के सुहाग से बडा नही ह ।

(६) मनुष्य का सबसे उच्च कत य स्वदश धम का पालन है।

(७) सल्तनत की ख्वाइश भी एक बला है।

(८) स्वत त्रता ही राष्ट्र की सब याधियो की एक मात्र औषध है।

(९) नारी शक्ति समाज की प्रधान शक्ति है।

(१०) राजनीति तो परिस्थितियो का खेल है।

(११) स्वराज्य निर्माण करने वाले को कभी दो कदम आग बढ़ना पडता है तो कभी दस कदम पीछे हटना पडता है।

---

१ शिवा–साधना, पृ० २५ २६ २७ ३६ ३७, ६२ ६४ ७१, ८५ ८८, ८९ ८९, ९६ १०२ १०३, १०३ १०९ ११०, १११, ११३, १२५ १३४ १३६ १५३

२ वही, पृ० क्रमश १६, १८, २१, २२ २२ २३, २३, २५, ३२, ३६, ४१ ४३ ४८ ५३ ५४ ५८, ५९, ८०, ८५, ९०, ९०, १०१, १०२, १२१ १२७ १३७ १३८, १४५, १४६, १४७ १५९

(१२) मनुष्य म मन का अमृत हा नहा, अपमान का कालकूट पान का भी बल होना चाहिए।

(१३) मन का हित स्वाभिमान स भी ज्यादा मूल्यवान है।

(१४) बहादुर आदमी की दोस्ती और दुश्मनी दोनों पसन्द की चीज होता हैं।

(१५) मनहूसी और गुलामी की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ?

(१६) स्वमानिनी का सबसे बड़ा गुण है इनमान होना।

(१७) स्वराज्य की सस्थापना से स्वराज्य का सरक्षण कहीं अधिक कठिन है।

(१८) जीवन म पथ बदलते रहते हैं पर जो चिरसहचर है वे कभी नहीं बदला करते।

(१९) एक छोटी साधना की सफलता के बाद दूसरी महत्तर साधना का श्रीगणेश किया जाय।

(२०) स्वराज्य साधना का काय एक व्यक्ति या एक पीढी से नहीं हुआ करता। यह तो साधना की दीप माला है पीढी-दर-पीढी जलती रहनी चाहिए।

(२१) हाय रे मनुष्य जीवन ! तू चाहे जितना ऐश्वर्यशाली हो तेरा अन्तिम सहारा श्मशान भूमि ही है।

(२२) कमयोगी को छुट्टी नहीं मिलती।

(२३) स्वतन्त्रता से अमूल्य वस्तु कोई नहीं—धर्म भी नहीं।[1]

सम्यगालोचन के उपरान्त यही लगता है कि इस नाटक म ऐतिहासिक प्रणीत इतिहास के दर्शन सिद्धान्त का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

प्रतिशोध

हरिकृष्ण प्रेमी ने प्रतिशोध नाटक बुन्देलखण्ड के अमर वीर छत्रसाल के ऐतिहासिक कथानक पर लिखा है। इस नाटक म छत्रसाल के पिताजी चम्पतराय की मृत्यु के प्रतिशोध का एक जीता जागता चित्र साकार हुआ है।

प्रथम अंक

विन्ध्यवासिनी के मन्दिर म प्राणनाथ प्रभु अकेले विचार करते हुए कहते हैं कि मुझ तो भारत के दलित हृदयों की पुकार ने बुन्देलखण्ड को इन

---

१ शिवा साधना पृ० क्रमश १७ १७, १८ २१ २३ ३३ ३५, ४३ ६४ ४९ ६८ ६८ ७९ ८९ १०१ १३०, १६५, १६६, १६८, १६९, १७१, १७३, १७५

जगली उपत्यकाओ मे खीच लिया है। हृदय अपनी एक साध लेकर जीवित है। आह, वह दिन कब आयगा, जब प्यारा भारत देश स्वत त्र हो सकेगा। इतने मे ही लालकुँआरी अपने एक वर्ष के बालक छत्रसाल को लेकर प्रवेश करती है। वह प्राणनाथ प्रभु के सम्मुख छत्रसाल के ज म की ददभरी कहानी प्रस्तुत करती है। तब प्राणनाथ प्रभु कह उठता है कि बहन तुम वीर प्रभू हो। तुम्हारे पुत्रो पर सम्पूर्ण बु देलखण्ड को अभिमान है। तदुपरान्त लाल कुँअरि उससे कहती है उसके कुछ दिन बाद सारवाहन ने मुझे स्वप्न मे दर्शन दिया और कहा—मा[1] मैं शत्रु स प्रतिशोध लेने तुम्हारी गोद म फिर आऊँगा। उसके बाद ही छत्रसाल का ज म हुआ।[1] प्रस्तुत स्वप्न स इच्छा की प्रच्छन्न तृप्ति का रूप दृष्टिगोचर होता है। दूसरी ओर ओरछा के पास फतहखाँ और गम्भीरसिंह के बीच वार्तालाप चल रहा है। गम्भीरसिंह फतहखाँ स कहता है कि विन्ध्याचल ने हम चट्टान की तरह दृढ रहना सिखाया है उसकी चोटियो ने हमे अपना मस्तक किसी के आगे न झुकाने की दीक्षा दी है। इसके बाद एक अ य दृश्य म पहाडसिंह की पत्नी हीरादेवी दतिया के राजा शुभकरण के साथ बातचीत कर रही है। शुभकरण हीरादेवी स कहता है '[illegible]शुभकरण पहले बु देला है पीछे दतिया का महाराज। आत्मभिमान की रक्षा करने मे उसे भिखारी बनकर रहना पडे तो भी वह भाग्य को दोष न देगा। इस आन पर सकटो के वज्रपात को सहते हुए भी उसका मन मैला न होगा।[2] यहाँ शुभकरण मे वाटसन प्रणीत व्यवहारवाद की भाकी परि लक्षित होती है। तत्पश्चात प्राणनाथ प्रभु की शिष्या विजया चम्पतराय के भाई भीमसिंह को हीरादेवी के षडय त्र की जानकारी देती है। हीरादेवी चम्पतराय का युद्ध स या जहर से नाश करना चाहती है। तदन तर भीमसिंह जानबूझकर हीरादेवी द्वारा चम्पतराय के लिए परोसा भोजन स्वय खा जाता है। थोडी ही देर म उसके प्राण पखेरू देह के पिंजर से मुक्त हो जाते हैं। इस वक्त चम्पतराय कहता है कि इस भीषण वि वासघात का प्रतिशोध अवश्य लिया जायगा। तदुपरा त चम्पतराय दारा के खिलाफ औरगजेब की ओर स युद्ध करने जाता है। युद्ध म दारा की हार होती है। पर चम्पतराय को औरगजेब की कपट नीति नहीं भाती। इसस औरगजेब कुपित होता है और उसे गिरफ्तार करता है। इसके बाद हीरादेवी चम्पतराय को समाप्त करने के बारे मे कुछ योजनाएँ बनाती है। इस अक के अ तिम दृश्य म

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी प्रतिशोध, तीसरा सस्करण, पृ० १४

२. वही, पृ० २५

चम्पतराय रोगग्रस्त अवस्था में दिखाई देता है। लालकुँअरि उसके साथ है। उनको शत्रुओं ने घेर लिया है। चम्पतराय में धनुष उठाने की भी ताकत नहीं रही है। इस समय चम्पतराय लालकुँअरि से कहता है 'अब कोई आशा नहीं। इन हाथों में अब जरा भी ताकत नहीं रही। चुनौती सामने है पर बुन्देला का गौरव आज पिंजरबद्ध सिंह की तरह तड़प तड़प कर रह जाने के सिवा कुछ नहीं कर सकता। लालकुँवरि आज विधाता मुझे बिलकुल भूल गया। किन्तु कोई परवाह नहीं तुम तो मेरे साथ हो। देखो लाल आज बुन्देला की मर्यादा संकट में है आज तुम ही मेरी लाज रख सकती हो।'[1] इस उद्धरण से चम्पतराय के दुर्बल अहम (Weak Ego) पर प्रकाश पड़ता है। शत्रु निकट आने के पहले चम्पतराय इस संसार से विदा होना चाहता है। इसीलिए वह लालकुँअरि को अपने पर तलवार उठाने की आज्ञा देता है। क्योंकि उसे अपने आत्म सम्मान की चिन्ता लगी रहती है। आखिर लाल कुँअरि चम्पतराय पर तलवार का वार करती है और स्वयं स्वात्रमण प्रेरणा वश का शिकार बनकर पेट में तलवार भोंक कर आत्महत्या कर लेती है। इतने में प्राणनाथ प्रभु वहाँ आ जाता है। वह लालकुँअरि के शव के आगे सिर झुकाकर अपने आत्मनिवेदन में कह उठता है यह पति और पत्नी की वीर जोड़ी एक साथ स्वर्ग की यात्रा को प्रस्थान कर गई। ऐसी वीर जोड़ी विश्व के किस कोने में कब पैदा हुई है? वीर चम्पतराय वीरांगना लाल कुँअरि! जो काम तुम जीते जी न कर सके वह तुम्हारा बलिदान करेगा। तुम गये किन्तु तुम्हारा पुत्र छत्रसाल इस साधना के दीपक को प्रज्वलित रखने को जीवित है।[2] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि प्राणनाथ प्रभु में वर्दाइमर के अनुसार सर्जनात्मक चिंतन (Productive Thinking) की अवतारणा हुई है।

द्वितीय अंक

सहरा ग्राम के निकट के एक वन में छत्रसाल एक शिला पर बैठकर सोचता है कि पिताजी के कष्टों और माताजी की वेदना का क्या कभी अन्त न होगा? हीरादेवी के छल और औरंगजेब के आतंक से समस्त बुन्देलखण्ड पिताजी का शत्रु बन गया है। इतने में ही छत्रसाल का गुरु प्राणनाथ प्रभु वहाँ आ जाता है। वह छत्रसाल को जानकारी देता है कि महाराज चम्पतराय और बहन लालकुँअरि—दोनों मित्र के विश्वासघात के शिकार होकर चल

1. प्रतिशोध पृ० ५१
2. प्रतिशोध, पृ० ५३

उसे ! तब छत्रसाल दुखी होकर कहता है कि हा दुर्भाग्य ! जीवन का एक मात्र आश्वासन भी समाप्त हो गया । निष्ठुर विधाता ! तेरा वज्र उन्ही पर टूटता है जो सत्य के पुजारी हैं । तदुपरान्त आगरा के ताजमहल की एक वाटिका म औरगजेब की लडकी जेबुन्निसा गीत गा रही है । गीत समाप्त होते ही वह अपना आत्मनिवेदन म कहती है 'मैं बादशाहजादी हूँ–दुनिया के सब से बडे बादशाह की लडकी हूँ, फिर भी दिल से एक हूक सी उठ कर कहती है कि मैं राह के भिखारी से भी बदतर हूँ ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण से उसके अचेतन मन का द्वन्द्व एव उसकी हीनता ग्रथि पर प्रकाश पडता है । थोडी दर म उसकी फूफी जहानारा वहाँ आ जाती है । वह दु ख क साथ जबुन्निसा स कहती है कि जो मुहब्बत और दद स नावाकिफ हैं उनकी आखो म आँसू दिल म शायरी और गले मे सगीत नही होता । तत्पश्चात औरगजेब वहाँ पधारता है । वार्तालाप क सिलसिले म वह जहाँनारा स कह उठता है, 'जब स मैंने सुना है कि चम्पतराय और लालकुँवरि ने गिरफ्तार होन के बजाय खुदकुशी कर ली, तब स मुझे नीद नही आती । एस साफ दिल और बहादुर इन्सान को मैंने कितनी तकलीफें दी ! मुझे इसका अफसोस है ।'[2] यहा औरगजेब की अन्तदर्शन पद्धति (Introspection) परिलक्षित होती है । इसके बाद क एक दृश्य म छत्रसाल का भाई अगदराय छत्रसाल स कहता है कि हम माताजी और पिताजी के खून का बदला तो लेना ही होगा । तब छत्रसाल उससे कहता है कि कम करना हमारा धम है । विपरीत परिस्थितियो से सघष करना ही पौरुष है । तदुपरान्त एक सवाद म अगदराय छत्रसाल से कहता है कि माँ न कहा था—जब छत्रसाल का ब्याह हो तो य आभूषण बहू को तब छत्रसाल कह उठता है, ह ह ! मरा ब्याह ! बहू को आभूषण ! नहा भया इन बातो के लिए स्वतन्त्रता के सनिको के पास समय नहीं हो सकता ! इन्हे बेंच कर हम सैन्य सग्रह करेंगे ।'[3] यहा छत्रसाल की कर्तव्य निष्ठा, देशनिष्ठा एव सामाजिक दाय (Social Heritage) दृष्टिगोचर होती है । इस घटना स सतारा के शिक्षण महर्षि कर्मवीर भाऊराव पाटील की धमपत्नी लक्ष्मीबाई तीव्रता के साथ याद आती है । क्योकि लक्ष्मीबाइ ने बच्चो की पढाइ क लिए–उनके भोजन के लिए अपना पवित्र स्त्री अलकार भी अर्पित किया था । इसक बाद के एक दृश्य म छत्रसाल दवगढ की तलहटी

१ प्रतिशोध, पृ० ६०
२ वही, पृ० ६५
३ वही, पृ० ६८

म घायल अवस्था म दिखाई देता है । इतन म ही अगदराय वहाँ आ जाते है। छत्रसाल की पूछताछ करने के उपरान्त वह उसस कहता है तुम्हा जीवन का मैं जानता हू । तुम स्वर्गीय माद सारवाहन के अवतार हो ज चौदह वष की आयु म ही शत्रु की प्रबल सेना स अकले ही भिड गय थे शिवाजी का सम्पूर्ण ओज और तेज भी तुम्ह विरासत म मिला है।'[1] इस अवतरण से विदित होता है कि अगदराय के विचारो म वशानुक्रम और पर्यावरण का सापेक्ष महत्त्व (Relative Importance of Heredity and Environment) प्रतिबिम्बित हुआ है । तदनन्तर छत्रसाल अगदराय स कहता है 'यह मेरा शिक्षा काल है । मुगल सेना म रहकर मैंने उनकी युद्ध नीति बहुत कुछ देख और समझ ली है । अब मेरी इच्छा है कि कुछ दिन मराठा की युद्ध–नीति का अध्ययन करूँ । इसलिए मैं शिवाजी के पास जाऊगा । स्वर्गीया मा का नन्दन छत्रसाल कभी न भूलगा । बुन्देला को मुझ पर विश्वास करना ही होगा किन्तु बीच के इन कुछ दिनो म मैं अपनी नाव को जरा दृढ कर दूँ । फिर भवरा की चिन्ता न करते हुए उस सागर म छोड दूगा ।'[2] यहा छत्रसाल म रैंक प्रणीत विधायक इच्छा (Positive will) परिलक्षित होता है । दूसरी ओर हीराबादी की ईर्ष्या की अग्नि अभी धधक रही है । उसका दड छत्रसाल के इद गिद चक्कर काटता हुआ दृष्टिगोचर होता है । तत्पश्चात छत्रसाल शिवाजी की भेंट लेता है । दोनो म बड़ी देर तक आत्मीयता के साथ बहस होती रहती है । इस अक के अन्त म हीराबाद का ज्येष्ठ पुत्र सुजानसिंह छत्रसाल के सम्मुख नतमस्तक होता है । इस एक घटना स छत्रसाल की सफल राजनीति पर प्रकाश पडता है ।

तृतीय अक

वकीला डाकू होते हुए भी दिल से साफ आदमी है । मजहब के नाम पर मुल्क के दो टुकडे करना उसे पसन्द नही है । इसीलिए वह छत्रसाल की सहायता करता है । तदुपरान्त जहानारा और औरगजेब के बीच वार्तालाप होता है । जहानारा औरगजेब की राजनीति की खिल्ली उडाती है । शाप म औरगजेब उसस कहता है कि औरतो की अक्ल म सल्तनतें नही चला करती । दूसरी ओर छत्रसाल बालदिवान विजया प्राणनाथ प्रभु केशवराय प्रभृति बातचीत म व्यग्र हैं । वार्तालाप के सिलसिले में छत्रसाल बलदिवान स कहता है नहीं भया मेरा निश्चय नहीं बदल सकता । मैं नहा समझता कि तुम मुझ

१ प्रतिशोध, पृ० ७६

२ वही, पृ० ७९

इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हो ! यह तो गुलामी के विरुद्ध जनता का आन्दोलन है। इसका नेतृत्व करने का हम नहीं प्रत्येक सैनिक को अधिकार है। इस समय मैं नेता हूँ जो कार्य सबसे अधिक संकट का होता है उसे नेता ही किया करता है। अतः मुझी को आत्म-बलिदान का प्रथम अवसर मिलना चाहिए।"[1] यहाँ छत्रसाल में निर्माणकर्ता नेता (Group Build) और नियन्त्रणकर्ता नेता (Group Manipulator) ये दो नेतृत्व के गुण परिलक्षित होते हैं। तत्पश्चात गढकोटा में घमासान लड़ाई हो जाती है और उसमें छत्रसाल की जय होती है। शत्रुओं से प्रतिशोध लेने का छत्रसाल का मन्तव्य पूरा हो जाता है। इस विजय से जनता के हृदय में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा हो जाता है। तदनन्तर एक समापण में जहानारा औरंगजेब से कहती है कि तुमने मुगल सल्तनत की नींव की ईंटें कमजोर कर दी हैं। यह इमारत अब चन्द दिन की मेहमान है। हिन्दू मुसलमानों का मेल इस इमारत को कायम रखने वाला चूना था तुमने उसी को उखाड़ फेंक दिया। हार के कारण औरंगजेब उद्विग्न हो जाता है। इधर छत्रसाल व्रत पूर्ति के उपरान्त शादी कर लेता है। वीर पत्नी पाकर वह धन्य हो जाता है। तदनन्तर धसान नदी के तट पर प्राणनाथ प्रभु अपने आत्मनिवेदन में कहता है 'धन्य है वीर छत्रसाल जिसने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। चम्पतराय के स्वर्गवास के समय वह रास्ते का भिखारी था आज सारा बुन्देलखण्ड उसके आगे श्रद्धा से सिर झुकाता है। एक दिन वह भी था जब तीन दिन के भूखे छत्रसाल को सगी बहन ने भोजन कराने से इन्कार कर दिया था, और आज ? आज वह दिन है कि लोग उसके इंगित पर अपने प्राण चढ़ाने को तैयार हैं।'[2] प्रस्तुत उद्धरण से छत्रसाल के सृजनात्मक व्यक्तित्व (Creative Personality) पर प्रकाश पड़ता है। अन्ततोगत्वा औरंगजेब पछताने लगता है। बीमारी की अवस्था में वह जबुन्निसा से कहता है कि ऐसा जान पड़ता है जैसे मैंने सारी जिन्दगी अंधेरे रास्ते का सफर करते हुए बिताई है। तुमने और बहन जहानारा ने कितनी मर्तबा रोशनी दिखाने की कोशिश की लेकिन सब बेसूद सब फिजूल। अन्तिम दृश्य में छत्रसाल अपने सभी सहयोगी तथा गुरुदेव की उपस्थिति में विन्ध्यवासिनी की पूजा कर लेता है। अयान यह वात्स्यायन प्रणीत धर्मविषयक विचार का गहरा असर है।

इस नाटक का नायक छत्रसाल असाधारण या अवनामल पात्र है। उसको

---

१ प्रतिशोध पृ० ११३

२ वही, पृ० १३२

उद्दलकर प्रकाश अग्रधर्मी प्रेरणा शक्ति (The Aggressive Drive) ध्यान में लाता है। छत्रसाल के पिता चम्पतराय और माता लालकुवरि स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान के वजाह प्रतीक हैं। शिवाजी का छत्रसाल में किया हुआ परामर्श उसके विलक्षणीय व्यक्तित्व का परिचायक है। औरंगजेब की धर्मान्ध प्रवृत्ति उसकी दुर्बलता का द्योतक है। प्राणनाथ प्रभु की कर्तव्य निष्ठा प्रशंसनीय है। अनन्तराय, बलदिवान, सुजानसिंह, वकीलों प्रभृति का दायित्व उद्घाटित हो है। गौरांगों की कपट नीति से उनकी मनोग्रस्तता पर प्रकाश पड़ता है।

इस नाटक के कथोपकथन संक्षिप्त और सारगर्भित बन पड़े हैं। साथ ही साथ वे पात्र और परिस्थिति के अनुकूल हो गये हैं। उदाहरण के तौर पर—

नववधू—ऐसी बात न कहिए! शत्रुओं के रक्त से मेरे सुहाग की लाली गहरी हो होगी।

छत्रसाल—यहाँ से बाहर जाना भी तो सरल नहीं है। मैं अकेला होता तो . . . . . . ।

नववधू—राजपूतानी पति के पैरों की बेड़ी नहीं होती स्वामी! एक तलवार और एक घोड़ा ये दो चीजें मुझे भी दे दीजिए फिर मैं देखती हूँ कि शत्रु हमें कैसे रोक पाता है!

छत्रसाल—शाबाश! तुम जैसी वीर पत्नी पाकर मैं धन्य हुआ।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनों में नववधू की व्यक्तित्व माप की विधि पर प्रकाश पड़ता है जिसमें व्यक्तिगत इतिहास (Individual History) की अवतारणा हुई है।

इस नाटक में गंभीर स्थलों पर भाषा गहन हो उठी है एवं भावात्मक स्थलों पर वह भावना प्रधान हो गई है। साथ ही साथ ओजपूर्ण भाषा शैली के निर्वाह में लेखक को बहुत बड़ी सफलता मिली है। उर्दू फारसी शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है जिसमें मुस्लिम पात्रों के भाव बिम्ब पर प्रकाश पड़ता है। जैसे—हैरत अंग्रेज, मनसबा, कुफ्र, शर्मोलिहाज, मजहब कबूल, मकसद हिफाजत, अल्फाज आवारागर्दी, तख्तताऊस एतराज हवस, दाजत, बरहमी मदहोश गुस्ताखी खिदमत रंगबन दुख्तर, तसल्ली[2] इत्यादि।

---

1 प्रतिशोध, पृ० १३०
2 वही पृ० क्रमशः ४५ ६३ ६३ ६८ ६५ ६५ ९९ ९९ १०१ १०१ १०३ १०४ १०८ १०८ १०८ १२३, १२३, १३८, १३८ १३८।

प्रतिशोध में मुहावरों एवं कहावतों का यथोचित प्रयोग हो चुका है, जिससे पात्रों की मनोदशा पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरणतया—मौत के घाट उतारना प्राण निछावर कर देना लोहा लेना कहाँ राजा भोज कहाँ भुजवा तेली आँखें पथरा जाना काँटा निकल जाना, गुल खिलना, प्राणों से हाथ धोना पड़ना, पेट में चूहे कूदना श्रीगणेश करना पानी फिर जाना, आँखें फट जाना टस से मस न होना दाँत खट्टे करना लातों के देव बातों से नहीं मानते उतारू हो जाना, सोलह आने ठीक नहीं करना और खुशामदों में बचना मुँह की खानी पड़ना प्राणों की बाजी लगाना बाग बाग हो जाना[1] इत्यादि।

इस नाटक की सूक्तियों में मन के भाव प्रभावी रूप में उमड़ पड़े हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) क्रोध में अपना पराया, भला बुरा न्याय अन्याय सच झूठ कुछ नहीं सूझता।

(२) हिन्दू स्त्री सब कुछ सह सकती है पर अपने सतीत्व पर लांछन नहीं सह सकती और अपने पति की आज्ञा को तो ईश्वर आज्ञा से भी बड़ा समझती है।

(३) नारी स्नेह और वात्सल्य की अधिष्ठात्री देवी होती है प्रेम, करुणा और ममता की सुर सरिता होती है।

(४) जहर क्षत्रियों का अस्त्र नहीं है।

(५) मिथ्या शोक छोड़कर कर्म करना चाहिए।

(६) दुखी दिल के लिए आँसुओं के सिवा सहारा ही क्या है?

(७) इंसान की ईमान से मोहब्बत पहली चीज है।

(८) परिस्थितियों के आगे सिर कायर झुकाते हैं।

(९) वीर वही है जो परिस्थितियों से संघर्ष करके युग परिवर्तन करते हैं।

(१०) जो केवल ऐश्वर्य के पालने में पले हैं वे गरीबों के दुखों को नहीं जान सकते।

(११) पुरुष की तृष्णा का अन्त नहीं है।

(१२) किसी व्यक्ति को बिना सोचे विचारे एकदम नीच कह देना उचित

---

१ प्रतिशोध, पृ० क्रमशः १८ २०, २३, २४, २४, २६, २९, ३१, ३१, ३३ ४१ ४४, ६७, ६८, ६९ ८४, ९४, ९८, १०६, ११२ १३८।

म…।[1]

(१३) गायना का गणना पर कभी विगत न होना चाहिए।

(१४) स्वामि …न हमार लिए गुन राज्य म बहुत बडा वस्तु है।

(१५) सन्तनन तलवार म जाना जाती है और मूह वत स कायम रखा जाता है।

(१६) हक का जल्दी दुनियावा रिश्ता स ऊपर है।

(१७) कुल की इज्जत बचान क अवसर बार बार नहीं आत।

(१८) बहुत गुण क, सभी नमस्कार करत हैं।[2]

प्रस्तुत नाटक क विश्लेषण विवेचन क उपरा त यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि इस पर …ा क मनोविज्ञान का अत्यधिक प्रभाव है।

आहुति

हरिकृष्ण प्रमी न आहुति नाटक म राजपूत वीरांगनाओ क जौहर का बडा जाता जागता चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम अक

नल्हारणगढ़ क विस्तार की पत्नी चपला कुछ युवतियों क साथ गात हुए बावडी क निकट का पगडण्डी पर आ जाती है। गान समाप्त होते ही चपला एक युवती स कहती है कि इस भूमि को केवल पानी का ही नहीं रक्त की भी एसी ही भयानक प्यास है। आय दिन यहाँ रक्त की वर्षा होती है फिर भी इसकी जीभ लपलपाता रहता है। इतन म ही अलाउद्दीन और मीर महिमा का वहाँ आगमन होता है। युवतियों को देखत ही अलाउद्दीन मीर महिमा स कहता है आर दिल जल उठता है। उस धानी साडी वाली लडकी को देखत हो महिमा। इतना बदमों क नात हुए मरा म…र गुर वीरान जान पडता है। बोलो तुम मरा काम कराग ? उस लडकी स।[3] इसस अलाउद्दीन की प्रचण्ड प्रधान लिबिडो वृत्ति पर प्रकाश पडता है। तदनन्तर मीर महिमा अलाउद्दीन स कहता है कि एक बहादुर सिपाही किसी औरत की इज्जत और शान क खिलाफ कोई बात नहीं सुन सकता। वह युवतियों किल म दाखिल होन समय तक वहाँ ठहरता है। तत्पश्चात महाराव हम्मीरसिंह और राव रणधीरसिंह

---

१ प्रतिशोध प० क्रमश १९ २० २७ ३४, ५६ ६२ ६४ ६६ ६६, ६९, ७४ ७३।

२ वही, प० क्रमश ८६ ९७ १०४, १२१ १२८, १३२।

३ हरिकृष्ण प्रमी आहुति, तईसवाँ सस्करण, पृ० ७

हाथ म नगी तलवार लेकर प्रवेश करते हैं। इतने में मीर महिमा शेर का शिकार करते हुए वहाँ आ जाता है। वह आ जाता है। वह हम्मीरसिंह से कहता है कि मैं अपने कारण किसी को मुसीबत में नही डालना चाहता। एक जान की खातिर हजारो जानें बरबाद नहीं करना चाहता। तब हम्मीरसिंह उसस कहता है 'जो जानें बरबाद होने के लिये बनी हैं उन्हें विनाश से कौन बचा सकता है? क्षत्रियो का एक पैर सेज पर और दूसरा पैर चिता पर होता है। आप क्षत्रियो को नही जानते।'[1] यहाँ हम्मीरसिंह का प्रबल अहम (Strong Ego) परिलक्षित होता है। इसके बाद दिल्ली का सेनापति मीर गमरू अपने मकान म एकान्त भाषण म कहता है कुछ नही कुछ भी अच्छा नही लगता। यह रईसी किस काम की! आज रईस, कल भिखारी। मैं यहाँ ऐश कर रहा हूँ और मेरा भाई मारा-मारा घूमता होगा। एक मसनद पर टिक कर बैठा है, दूसरा जमीन पर खडा होगा।"[2] प्रस्तुत उद्धरण से मीरगमरू के विरोध अथवा दमन (Repression) पर प्रकाश पडता है। थोडी देर म उसका सहयोगी जमालखां वहाँ आ जाता है। दोनो म अलाउद्दीन की नीति को लेकर बहस होती है। मीर गमरू वार्तालाप के सिलसिले म जमाल खाँ स कहता है कि मुझे डर लगता है यह सल्तनत ज्यादा दिनो तक कायम न रहेगी। हिन्दू ही नहीं, हम मुसलमान भी एक दूसरे के दुश्मन बनेंगे। तदुपरान्त अलाउद्दीन का वजीर महरम खाँ का वहाँ आगमन होता। वह मीर गमरू स कहता है कि मैंने बादशाह को बहुत समझाया कि वह राजपूतो से छेडछाड न करे, लेकिन वह तो ताकत म अन्धा हो रहा है। दूसरी ओर रणथम्भौर म महाराव हम्मीरसिंह दरबारियो स कहता है सभी बहादुरो की एक जाति है। चाहे मुसलमान हो चाहे हिन्दू चाहे किसी और जाति का जो वीर है वह हमारा सगा है वही हमारी जाति का है। इसी दृष्टिकोण स मैंने मीर महिमाशाह को अपना भाई बनाया है।'[3] यहाँ हम्मीरसिंह म व्यक्तिगत अनुप्रेरणा (Individual Motivation) का परिष्कार हुआ है। तदनन्तर भूरिसिंह राठौर अपने निवेदन म कहता है कि जबकि आप भारत परा... के ... म ... चुका है, हम ... से काम लेना चाहिए। इसमे सन्देह करने की गुजाइश नही कि मीर साहब बहुत वीर उदार और सज्जन हैं, फिर भी हम अचानक ही किसी सज्जन पुरुष पर भी इतना विश्वास नहा

१ हरिकृष्ण प्रेमी आहुति, तईसवाँ सस्करण, पृ० १३
२ आहुति पृ० १५
३ वही पृ० २०

करना चाहिए। इसी बीच रणधीरसिंह का आगमन होता है। वह अलाउद्दीन का पत्र हम्मीर को पढ़कर सुनाता है। अलाउद्दीन ने उस पत्र में अपनी उन्मा मीर महिमा शाह को हम्मीरसिंह द्वारा पनाह देने से अपना रोष प्रकट कर लिया है कि यदि उसे हम से न निकाल दिया जाय तो दिल्ली की ताकत रणथम्भोर के घमण्ड को चकनाचूर करने में कुछ उठा न रखेगी। तत्पश्चात् हम्मीरसिंह मीर महिमा से कहता है "आप राजपूतों आन से शायद परिचित नहीं हैं मीर साहब! आपको जान देना ही हमारी पराजय है। सम्राट् पृथ्वीराज के वंशज अपने सिर पर कायरता का कलंक नहीं लगने दे सकते। राजपूत शरणागत के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देता है। रणथम्भोर में जब तक एक भी राजपूत जीवित है। वह आपका अङ्गरक्षक बनकर रहेगा।"[1] यहाँ हम्मीर में सामाजिक स्वीकृति अनुप्रेरक (Motives of Social Approval) दृष्टिगोचर होता है। एक अन्य दृश्य में बावड़ी पर पानी भरते हुए चपला एक युवती से कहती है, "सामने बैठे तो जीवन हो एक बहुत बड़ी विपत्ति नजर आए। इसलिए मैं तो कहती हूँ हँसते-गाते-नाचते हुए जिन्दगी का रास्ता पार करते चलो। किस दिन हवा के झोंके से जीवन-दीपक बुझ जाएगा। इसे कौन जानता है?"[2] प्रस्तुत उद्धरण से चपला की जीवन-शैली (Style of Life) पर प्रकाश पड़ता है। इसके बाद मीर गभरू फौज लेकर वहीं आ जाता है। सब स्त्रियाँ गढ़ की ओर प्रस्थान करती हैं। दूसरी तरफ हम्मीर और मीर महिमा के बीच होली के त्योहार को लेकर बातचीत होती है। इतने में ही हाथ में रक्त से रंगी हुई नंगी तलवार लेकर चपला वहाँ आ जाती है। वह राजकुमारी से कहती है कि तीन दिन से सल्हारणीगढ़ में रक्त से होली खेली जा रही है। सम्भाषण के सिलसिले में वह मीर महिमा से कहती है "होली के दिन मेरा सुहाग नष्ट हुआ है जब तक मैं देश के आबाल-वृद्ध में प्रतिहिंसा की होली नहीं जला दूँगी विश्राम न लूँगी। गली-गली, पथ-पथ घूम-घूम कर प्रतिशोध-गान गाऊँगी।" यहाँ चपला में प्रतिशोध ग्रंथि की अवतारणा हुई है। इसके बाद मीर महिमा युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है। उसके मस्तक पर टीका लगाया जाता है। इस अवसर पर चपला कह उठती है "और मैं भी तिलक करूँगी। मैं सर्वस्वहीना हूँ। मेरे पास न रोली है न चन्दन मेरी तलवार में जो रक्त लगा हुआ है उसी से मैं टीका करूँगी। इससे मैं हार

१ आहुति, पृ० २४
२ वही, पृ० २५

नहा, सिर मागूँगी । बाला कुमार दोगे ? साहस हो तो आग बढो ।'[1] प्रस्तुत उद्धरण स ज्ञात होता है कि चपला म मिश्रित भाव (Mixed Feeling) उमड पडे हैं । तत्पश्चात तीनो राजकुमार–जय, विजय और अक्षय आगे बढ़ते हैं । चपला तलवार म लगे रक्त से उनक भाल पर टीका लगाती है ।

द्वितीय अक

छायागढ के वन की पगडण्डी पर राजपूत सनिक आपस मे बहस कर रहे हैं । एक सिपाही कहता है कि यह युद्ध द्रौपदी क चीर की तरह लम्बा होता जा रहा है । दूसरी ओर मीर गमरू और जमालखाँ क बीच बात चीत चल रही है । इतने म ही महारानी और सुरजनसिंह वहा आ जाते है । वार्तालाप के सिलसिल म हम्मीर सुरजन स कहता है, विश्राम ! नहा सुरजन, जो ज्वाला की चिता पर सोता है उसे नीद कहा ! राजा को देश की, जाति की वश की, और न जाने ऐसी कितनी मर्यादायें पालन करनी पडती हैं । जो राजा सुख की नीद सो सकता है वह राजा नही वसुधा का अभिशाप है ।[2] यहाँ हम्मीर म आदर्श रूप मे नेता (The Leader as Examplar) के गुण परिलक्षित होते हैं । थोडी देर मे चपला समाचार लाती है कि रणधीरसिंह चल बसा है और शत्रु न छाछगढ पर अधिकार कर लिया है । तदुपरान्त चपला महारानी से कहती है कि जब तक देश का एक एक पुरुष लडता हुआ जान नही दे देगा तब तक महारानी को अग्नि–रथ पर नहीं बठना पडगा । म प्रजा मे घूमती हू उ ह युद्ध के लिए उत्तेजित करती हू । तत्पश्चात एक अन्य दृश्य म अलाउद्दीन मीरगमरू से कहता है कि आप जसे वफादार साथियो पर मुझे फख्र है । क्या यह अलाउद्दीन की ताकत थी जिसन हिन्दुस्तान म कोने कोन म फतह का डका बजाया है । इतने म सुरजनसिंह सुलह करन के इराद से वहा आ जाता है । इधर रणथम्भोर गढ की राजवाटिका मे हम्मीर और मीर महिमा के बीच बातचीत चल रही है । इस अवसर पर मीर महिमा स कहता है कि म कल ही अलाउद्दीन के पास जाऊगा । मेरे उसके पास चले जाने से यह जग रुक जायगा मेरा एक दोस्त बरबादी स जायगा । वार्तालाप के सिल सिले म सुरजनसिंह सन्धि की बात छेडते ही हम्मीर कह उठता है, सधि ! सधि की बात सोचना भी पाप है । समझौता क्षत्रिय के जीवन के पास नहीं फटक सकता । मित्र या शत्रु जीवन या मरण, इस पार या उस पार ! बीच का रास्ता हम लोग नही पकडते । निपटारा सधि के द्वारा नहा युद्ध के द्वारा

१ आहुति, पृ० ३३
२ वही, पृ० ४२

ही होगा ।[1] यहां हम्मीर में एडलर प्रणीत अग्रमर्षी प्रेरणा शक्ति (The Aggressive Drive) दृष्टिगोचर होती है । तदुपरान्त चपला घर घर में जन्मभूमि की रक्षा का महत्त्व समझा दे रही है । एक ग्रामीण से वह कहती है जो अपने जीवन का मोह न कर वही तो क्षत्रिय है । केवल क्षत्रिय के घर जन्म लेने से ही कोई क्षत्रिय नहीं हो सकता ।[2] यहाँ चपला में वाट्सन प्रणीत व्यवहारवाद (Behaviourism) का परिष्कार हुआ है । तत्पश्चात महारानी स्वयं एक सभाषण में वीर महिमा से कहती है कि जिस दिन क्षत्राणी का पुत्र युद्ध भूमि को प्रस्थान करता है, उसका मातृत्व उसी दिन धन्य होता है । इसके बाद युवतियों को आत्म रक्षा के लिये शस्त्र संचालन सीखने की आवश्यकता का प्रतिपादन कर हम्मीर राजकुमारी से कहता है सच्चा क्षत्रिय मान को प्राणों से प्रिय मानता है । देश का मान हमें जितना प्रिय है उतना ही नारी जाति का भी । जब तक एक भी क्षत्रिय जीवित है उसकी आंखों के सामने किसी नारी का अपमान नहीं हो सकता ।[3] प्रस्तुत अवतरण से यह ज्ञात होता है कि हम्मीर रैंक के अनुसार समाज एवं संस्कृति (Society and Culture) की रक्षा के लिए सजग है । इस अंक के अंत में राजकुमार और मीर मुहम्मद रण यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं ।

तृतीय अंक

हम्मीर वीर व्रत लेकर अन्तिम युद्ध के लिए तैयार हो जाता है । दूसरी ओर चिता तैयार कर रखी जाती है । युद्ध भूमि पर सुरजनसिंह अलाउद्दीन से कहता है कि संधि शब्द का उच्चारण महाराव पाप समझते हैं । लेकिन मैंने ऐसा चक्र चलाया है कि बादशाह को बिना अधिक प्रतीक्षा किए, बिना अधिक श्रम किये और बिना अधिक व्यय किए गढ़ हस्तगत हो जावे । इतने में ही चपला बिजली की तरह तीव्र गति से वहाँ आती है और जन्म भूमि के विरुद्ध षड्यंत्र रचने वाले सुरजनसिंह की छाती में छुरी भोंक देती है । थोड़ी देर बाद महारानी देवल को शत्रु के निशान दिखाई देते हैं । उसे लगता है कि सभी अग्निपुत्र रणभूमि में सो गये हैं । इस समय वह सभी क्षत्राणियों से कह उठती है वीर माताओ, वीर बहनो, वीर पुत्रियो ! *आज हम सब एक साथ चिता पर चढ़कर एकरूप हो जायेंगी ।* हममें न कोई बड़ा है न कोई छोटा । संसार को दिखा दो कि वास्तविक जीवन क्या है । जब तक जीना गौरव के साथ

---

१ आहुति, पृ० ५४ ।
२ वही, पृ० ६० ।
३ वही, पृ० ६५ ।

जीना स्वाधीनता को स्थिर रख कर जीना । जिस दिन पराधीनता अपने पर बढ़ाये, उस दिन या तो उसे भस्मसात कर दें या स्वयं भस्म हो जायँ ।[1] वहाँ महारानी में आत्मगौरव अनुप्रेरक (Motives of Self assertion) उमड़ पड़ा है । तदुपरान्त सभी देवियाँ चिता सेज पर सो जाती हैं । ओह ! देश के लिए आत्मसम्मान की रक्षा के लिए कितना महान बलिदान ! इतने में ही हम्मीर तथा अनेक राजपूत केसरिया बाना पहने हाथ में शत्रु के झण्डे लिये हुए वहाँ आ जाते हैं । हम्मीर वीरों को विजय गीत गाने का अनुरोध करता है । गीत समाप्त होते ही हम्मीर कहता है कि निश्चय ही आज हमारा जन्म लेना सफल हो गया । दस मास की लम्बी, कष्टकर और भयंकर लड़ाई के बाद हमारी साध पूरी हुयी है । तदनन्तर आकाश में धुएँ के बादल देखकर हम्मीर कहता है कि जान पड़ता है वीरांगनाओं ने जौहर व्रत का पालन किया है हम लोगों की विजय की उन्हें आशा नहीं थी । इतने में चपला वहाँ आ जाती है । वह हम्मीर से कहती है कि आगे आगे शत्रु के निशान देख कर क्षत्राणियों ने जौहर व्रत का पालन किया । हम्मीर को अपनी गलती विदित होती है । वह कहता है कि नियति के वज्र-लेख के आगे मानव का पराक्रम पराजित हुआ । वह मनस्ताप के सागर में डूब जाता है । अन्ततोगत्वा वह अक्षय से कहता है कि मेरी विजय पराजय में परिणत हो गयी । तुम पराजय को विजय में परिणत करना । तदुपरान्त वह राजमुकुट अक्षय के सिर पर रखता है और स्वयं स्वाक्रमण प्रेरणावेग के आधीन होकर महायज्ञ में आहुति डालने जाता है ।

इस नाटक का नायक हम्मीर एक महान वीर है । उसके जीवन का केन्द्रबिन्दु है मानवता । वह खुले दिल से शरणागत की रक्षा करता है और अटट निश्चय के साथ देश की रक्षा के लिए भी उद्यत होता है । अलाउद्दीन वासना परिचालित पात्र है । वह सम्पूर्ण भारत पर अपना झण्डा फहराना चाहता है परन्तु उसके लिए उसके पास उतनी दूरदृष्टि नहीं है । मीर महिमा मुसलमान होकर भी हम्मीर सिंह की जी जान से मदद करता है । स्त्री की इज्जत सुरक्षित रखने के लिए वह सदैव यत्नशील रहता है । मीर गभरू अपनी कौम पर अभिमान रखने वाला सेनापति है । चपला एक दृढ़ क्षत्राणी है जो आपत्काल में जनता में आत्मविश्वास निर्माण करती है । महारानी देवल रणथम्भौर की उज्ज्वल परम्परा का जाज्वल्य प्रतीक है ।

आहुति के संवादों में संक्षिप्तता, गतिशीलता एवं ओजस्विता का परिष्कार हुआ है । इससे नाटक की रोचकता और प्रभाव क्षमता बढ़ गयी है ।

---

१ आहुति पृ० ८६ ।

यथा–

महारानी– म समझती हूँ प्रियतम ! जौहर की ज्वाला हमारी प्रतीक्षा कर रही है। चौहान कुल का गौरव अक्षुण्ण रहेगा महाराज ! जौहर की लपटों में चौहानों के प्राणों में प्रलयकारी ज्वाला प्रज्वलित होगी।

हम्मीर– तो कल हम वीर व्रत लेंगे। कल अंतिम युद्ध होगा। केसरिया वस्त्र पहनकर हम बाहर निकलेंगे। तुम चिता तैयार कर रखना। यदि हम विजय पाकर लौट आये तो जौहर की आवश्यकता न होगी अन्यथा महाप्रकाश में मिल जाना।

महारानी– आपकी आज्ञा का पालन होगा[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों में सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinants) का सबल परिष्कार हुआ है।

इस नाटक की भाषा सरल सीधी सहज एवं प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। इसमें दार्शनिक एवं कवित्वमय शैली की कुछ झलक प्रतीत होती है। उदाहरणतया–

(१) यहाँ के आकाश में या तो मेघमाला के दर्शन ही नहीं होते या होते भी हैं तो वे प्राणों में प्यास जागृत करके अंतर्हित हो जाते हैं।

(२) संसार की आँखों में जीवन एक यंत्रणा है किन्तु मुक्त तो इस यंत्रणा में भी अनिर्वचनीय सुख मिलता है। हरे भरे शस्य श्यामल प्रदेशों में आनंद अनुभव करने वाले तो सभी हैं लेकिन रेगिस्तान की तपन में तृप्ति पाने वाले राजस्थानी ही हैं।

(३) मैंने आपकी जिंदगी के बगीचे में बसंत की बयार की जगह पतझड़ की पत्ता तक को गिरा देने वाली हवा चला दी है।[2]

शैलीगत सौंदर्य प्रभविष्णुता के लिए इसमें अलंकारों का यथार्थ परिष्कार हुआ है। उदाहरणों के तौर पर–

(१) विदेशी आक्रमणकारियों के जन समुद्र की लहरें पृथ्वीराज रूपी चट्टान से टकराकर लौट जाती थीं।

(२) जिस तरह पतंग दीप-शिखा पर टूट कर जान देते हैं उसी तरह हिंसक पशु हम्मीर की तलवार पर टूटेंगे।

(३) जैसे बैलों को हम जुए में कसते हैं उसी तरह बहुत से मनुष्य शराब

---

१ आहुति पृ० ७५।

२ वही पृ० क्रमशः ६ ११ ५१।

लाग का दास बनाकर उनसे तरह तरह के काम लेते हैं ।[1]

इसमे पात्रानुकूल उर्दू-फारसी शब्दों का समयोचित प्रयोग पाया जाता है। जैसे- गुस्ताखी इस्तहार, तबाही, बेरहम, इल्म, तवक्तील, मकसद पर्दा फनह खर महफूज सुलह खुशकिस्मती, रुख तबीयत रहम दिल तवारीख, शान, फर्ज मजाक, लाजवाब कफन, इन्तजाम इत्यादि ।[2]

इस नाटक मे यत्र तत्र मुहावरो कहावतो का यथोचित प्रयोग हुआ है जिनकी उपस्थिति से भाषा का सौन्दर्य बढ़ा है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- 'आखें ठडी हो जाना यारी चढ़ाना, हृदय पुलकित हो उठना लोहा लेना, मौत क घाट उतारना चकनाचूर करना न्योछावर कर देना दात खट्टे करना तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़ न दूजी बार मुँह की खानी पडना हाथ कगन को आरसी क्या जान पर खेलना नौ दो ग्यारह होना, आखो का तारा, बाल बाका नही होना चार चाद लगा देना आदि ।'

निम्नलिखित सूक्तियो मे मनोभावो का सुस्पष्ट एव यथार्थ दर्शन होता है ।

(१) हरक मद का फर्ज है कि वह औरत का बचाव ।

(२) बहादुर आदमी गुस्सा नही करता ।

(३) हँसते हँसते जीवन का रास्ता पार करना चाहिये ।

(४) दुनिया म सिर्फ एक माँ है और वह है खुदा ।

(५) हिन्दू अतिथि को दवता के तुल्य मानते आय ह । '

(६) ऊचे इरादे के लिए जान देने वाले मर कर भी जिन्दा रहत हैं ।

(७) जब तक हृदय म धडकन बाकी है तब तक विवेक की बाती को मद न होने दो ।

(८) जो विपत्ति आती है वह किसी को कोसने से दूर नही हो सकती ।

(९) सिपाही का दुनियाँ मे सिवा उसके फर्ज के और कोई नही है ।

(१०) सघर्ष का ही नाम तो जीवन है ।

(११) लालच इसान को हैवान बनाता ह ।

(१२) सत्य भावुकता से बहुत दूर रहता है ।

---

१ आहुति, पृ० १० ११ ९८ ।

२ वही पृ० क्रमश ८ १९, २३, २८, ३७ ४६, ४६, ४७, ४७ ४७ ४८ ४९ ४९ ५०, ५०, ५१, ५३ ५३, ५५, ६७, ७०, ७८

३ वही पृ० क्रमश ७, ९ १० १०, १५, २३ २४, २४, २४, ३६ ५२, ५३ ५७ ६४, ७१, ९० ।

४ वही पृ० क्रमश ९ १५, २६ २८, ३२ ।

(१३) प्रेम ही निर्जीवों में जान डाल देता है।
(१४) जन्म भूमि आत्म त्याग और बलिदान माँगता है।
(१५) ईमान का साथ देना ही कौमपरस्ती है।
(१६) आत्म सम्मान के लिए प्राण देना ही मानव का जीवन है।
(१७) हिंसा का परिणाम अस्थाई है किन्तु आत्म बलि का परिणाम अमर अमर है।
(१८) क्षत्रिय सिर कटा देते हैं नवाते नहीं।[1]

फलत हम यह कह सकते हैं कि इस नाटयकृति पर यौनिगत अनुप्रेरणा का अत्यधिक प्रभाव है।

स्वप्न-भंग

स्वप्न भंग हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें दारा द्वारा मुस्लिम और हिन्दू जातियों में कृत मानव जय निर्माण का परिणाम चित्रित हुआ है।

प्रथम अंक

दारा की पत्नी नादिरा सुख चैन तथा विलासिता के साथ जिन्दगी बसर कर रही है। एक तरफ से उसे विश्वास है कि वह मुगल सम्राज्ञी बन जायगी। दूसरी ओर से वह आशंकाओं से विह्वल हो उठती है। उसे लगता है कि किसी भी समय उसका अपना हिन्दुस्तान या तख्त पर कोई अधिकार नहीं है। इस तरह वह अपने सुख और आने वाले दुख की ओर सतर्कता से देखने का प्रयास करती है। तदनन्तर शाहजहाँ की दो पुत्रियाँ– जहानारा और रोशन आरा बगीचे में राधा मालिन के पास आ जाती हैं। वहाँ राधा पहले जहानारा के गले में फूल माला पहनाती है। इसके विपरीत अर्थ लगाकर छोटी बहन रोशनआरा कह उठती है नहीं बहन जहानारा। तुम बड़ी हो तिसपर दारा का तुम पर अनन्य स्नेह है। यह नौकरों का कर्तव्य है कि वे पहले दारा और और जहानारा का आदर करें और बचा खुची । इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि रोशनआरा में जीभ की फिसलन परिलक्षित होती है। जो उसके चेतन अचेतन मन के संघर्ष की परिचायक है। इसके बाद वह जहानारा से कहती है कि मुगल साम्राज्य के लिये दंड नि चयी, आदर्शवादी सुन्दर चरित्र

---

१ आहुति, प० क्रमश १८, ४१ ४४, ४८, ५१, ५२, ५६, ५९, ६३, ६ ७४ ८३, ८६।

२ हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्न भंग प्रथम संस्करण, प० १९।

वाले व्यक्ति की आवश्यकता है। दूसरी ओर औरंगजेब औरंगाबाद में अपने गढ़ आत्म निवेदन में कहता है नीरस और निर्मम औरंगजेब ! तू किसी को प्यार नहीं करता ! तलवार और कुरानशरीफ तेरे जीवन के दो ही आधार हैं। तलवार तेरी जीवन सहचरी है और कुरान शरीफ तेरे जीवन का प्रकाश। दारा शुजा और मुराद ये मेरी शतरंज के मुहरे हैं। ये सब किसी न किसी नशे में गर्क हैं। दारा दीवाना है उपनिषदों के पीछे मुराद को शराब और सुन्दरी ही सब कुछ है शुजा बंगाल के रंगीन में जिन्दगी को डुबो चुका है। होश में अगर कोई है तो औरंगजेब।[1] यहाँ औरंगजेब में युग प्रणीत अपृथक्कृत जीवन शक्ति (Undifferented Life Energy) सिद्धान्त परिलक्षित होता है। तदुपरान्त औरंगजेब को रोशनआरा का आगरा आने का सन्देश मिलता है। उस सन्देश में उसने मुगल सम्राट शाहजहाँ की बीमारी का भी निर्देश किया है। इस सन्देश से औरंगजेब के दिल की कली पुलकित हो उठती है। इस अवसर पर वह एकान्त भाषण करता है जिसमें उसकी प्रतिशोध ग्रन्थि दृष्टिगोचर होती है। साथ ही साथ इस महल के इर्द गिर्द उसका दूत भी चक्कर काट रहा है। दूसरी ओर ताजमहल के एक कोने में प्रकाश नामक वृद्ध अपनी बेटी वीणा के साथ ताजमहल की दीवारों में कुचले गये पुत्र के बारे में विचार विमर्श कर रहा है। वीणा गीत के द्वारा अपना दुःख प्रदर्शित करती है। इतने में ही दारा वहाँ आ जाता है। वह प्रकाश के दुःख में सम्मिलित होकर उससे कह उठता है "मैं सम्राट नहीं मनुष्य बनना चाहता हूँ। मनुष्य रहकर सम्राट बनना चाहता हूँ। सम्राट बनकर मनुष्यों को मनुष्य बनाना चाहता हूँ। मैं धनी निर्धन विद्वान अविद्वान और छोटे बड़े का भेद मिटाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि संसार एक मजदूर के पुत्र का दुःख भी उतना ही अनुभव करे जितना कि वह शाहजहाँ की पत्नी की मृत्यु का करता है।[2] यहाँ दारा में सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करने की क्रिया परिलक्षित होती है जो एडलर प्रणीत जीवन शैली (Style of life) की परिचायक है। इसलिए वह अपने भाइयों से झगड़ा मोल लेता है। जहाँनारा उसकी पथ प्रदर्शिका है तो रोशनआरा औरंगजेब की। रोशनआरा कासिमखाँ नामक सेनापति के मन में धर्म का विष घोल देती है जिससे वह दारा का पक्ष त्याग कर औरंगजेब के पक्ष में सम्मिलित हो जाता है। इस अंक के अन्तिम दृश्य में आगरा के दीवानखास में शाहजहाँ, दारा छत्रसाल, हाड़ा, दिलेरखाँ रुस्तमजंग, खलीलुल्लाखाँ

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्न भंग प्रथम संस्करण, पृ० २१–२२।
[2] वही, पृ० ३४।

प्रमति के साथ बातचीत कर रहा है। सलीमुल्लाह मां शाहजहाँ से कहता है कि आज हर बात में हम हिन्दुओं का मन ताकते हैं हम पराधीन हैं। तब शाहजहाँ उत्तर देता है पराधीन ! प्रेम में मनुष्य को जीत लेना क्या पराधीनता है। तलवार से साम्राज्य जाते जाते हैं लेकिन प्रेम से स्थिर रह जाते हैं। हिन्दुस्तान के बादशाह को हिन्दू बनकर रहना होगा न मुसलमान। उसे केवल मनुष्य बनकर रहना होगा।[1] इस अवतरण में शाहजहाँ की श्रेष्ठता ग्रन्थि (Superiority Complex) पर प्रकाश पड़ता है। अन्त में राष्ट्र के धर्म के नाम पर जो टुकड़े न हो जाए इस विशाल भावना से शाहजहाँ राज चिह्न दारा के सिर पर पहनाता है।

द्वितीय अंक

सेनापति कासिमखाँ को औरंगजेब को रोकने के लिए और उसे समझा बुझाने के लिए भेजा जाता है परन्तु कासिमखाँ पहले से ही गद्दार था और बाद में औरंगजेब के दल में सम्मिलित हो जाता है। वह जसवन्तसिंह जैसे मुगलनिष्ठ राजपूत वीर को भगा देने में औरंगजेब की मदद करता है। दूसरी ओर नादिरा आगरा के राजमहल में अकेली चिन्ताग्रस्त अवस्था में बैठी है। इतने में ही जहानारा वहाँ आ जाती है। वार्तालाप के सिलसिले में नादिरा जहानारा से कह उठती है दुःख मनुष्य को दार्शनिक बना देता है। तुम बातों में उलझाकर गीत सुनाने से छुटकारा पाना चाहती हो। भाभी को बातों से नहीं भुलाया जा सकता। सुनाओ न ! संसार में संगीत काव्य चित्र और नृत्य आदि की कलाएँ न होतीं तो मनुष्य अपनी वेदना को कम सहता। जीवन रेगिस्तान-सा सूना और नीरस हो जाता। जहाँ तक कहीं हरियाली नजर न आती। दुखी और तृषित प्राणों को स्नेह और सहानुभूति का एक कण भी न मिलता। सुनाओ न ![2] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि नादिरा पर ऊविन प्रणीत गति (Locomotion) सिद्धान्त का गहरा असर है। क्योंकि जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाने के कारण तनाव (Tension) पैदा होता है। तनाव के कारण गति होती है और गति का उद्देश्य मुक्ति (Relief) प्राप्त करना है।[3] यहाँ नादिरा जहानारा से गीत का अनुरोध कर रही है जिसके मूल में यही गति काम कर रही है। इधर जसवन्तसिंह के पराजय से औरंगजेब को स्फूर्ति प्राप्त होती है और वह राजधानी की तरफ

१ स्वप्न भंग पृ० ४५।

२ वही पृ० ७०।

३ रामपालसिंह वर्मा मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, प्रथम संस्करण, पृ० ८१।

घूच करता है । वह अपने पिताजी शाहजहाँ और भाई दारा को खतम करने की ठान लेता है । वह आगरा पहुँचकर अपने सेनापति की सहायता से राजमहल को घेर लेता है और राजमहल का पानी तोड देता है ताकि महल में बिना पानी से तंग आकर शाहजहाँ अपनी मुट्ठी में आ जाए । शामूगढ के मैदान में दारा औरंगजेब के साथ मुकाबला करने में असफल होता है । उसका भाई जैसा दोस्त छत्रसाल हाडा वीर गति पाता है । आखिर निराश होकर वह औरंगजेब के पास जाना चाहता है । दारा जहानारा के सम्मुख अपना यह विचार प्रदर्शित करते हुए वह उठता है, "औरंगजेब के हाथ में अपनी तलवार दूँगा उससे कहूँगा तुम्हें मेरा सर चाहिए तो लो । अपने हाथ में अपने बडे भाई का खून करो । स्वार्थ के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के दिल में वह जहर न भरो जो फिर किसी के दूर किये भी दूर न हो सके । तुम्हें तख्त ताऊस चाहिए उसे तुम खुशी से ले लो । लेकिन बूढे बाप को सताकर मनुष्यता को कलंकित न करो । हिन्दुस्तान की हिन्दुओं और मुसलमान दोनों को माँ रहने दो उसे साम्प्रदायिकता की आग में न झुलसाओ ।"[1] यहाँ दारा का दुहरा व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है । एक ओर उसमें अपने आदर्शों तथा मान्यता के अनुसार काम करने वाली उसकी विधायक इच्छा (Positive Will) उमड पडी है । तो दूसरी ओर संघर्षों से दूर रहकर समझौते की कोशिश करने वाला उसका औसत प्रकार का व्यक्तित्व । अन्ततोगत्वा वह शाहजहाँ और जहानारा के समझाने बुझाने के बाद पुनः युद्ध के लिए तैयार हो जाता है ।

तृतीय अंक

वीणा के गान से इस अंक की शुरुआत होती है । तदनन्तर शाहजहाँ ताजमहल के खास कमरे में बैठकर जहानारा के साथ बातचीत करते हुए दिखाई देता है । तो दूसरी ओर दारा जामनगर के शाहनवाज की ओर जाकर उससे सहायता की याचना करता है । परन्तु आखिर उसके सभी प्रयत्न असफल हो जाते हैं । औरंगजेब उसे कुचल डालने के लिए उद्यत होता है । दारा और नादिरा किसी तरह भागकर खुद को छिपा छिपाकर औरंगजेब के षडयन्त्र से बचने की कोशिश करते हैं । जंगल में दर दर भटकने से नादिरा बीमार हो जाती है और उसी में उसका अन्त हो जाता है । अन्ततोगत्वा दारा जाल साज से पकडा जाता है और औरंगजेब उसे बडी बेरहमी से मार डालता है । उसके इस नृशंसतापूर्ण बर्ताव में आतंक की नीति (Policy of

१ स्वप्न भंग, पृ० १०३ ।

Terror) परिलक्षित होती है । आखिर प्रकाश जहानारा के सम्मुख कह उठता है आज एक महान स्वप्न भंग हो गया । क्या राष्ट्रीय एकता के लिए एक महात्मा का बलिदान व्यर्थ जायगा । क्या दारा का स्वप्न सदा स्वप्न ही बना रहेगा ! क्या भारत की भावी पीढ़ियाँ इस महान बलिदान को भूल जावेंगी । वह पूर्ण पुरुष दारा जो न केवल मुसलमानों का न केवल हिंदुओं का, बल्कि सारे संसार का प्रकाश स्तम्भ था—जिसका व्यक्तित्व देश काल की सीमा के पास पहुँच चुका था । (हस्त लिखित किताबों का एक बण्डल जहानारा के हाथ में देता है ।) जो दारा को देखना चाहें वे उन्हें इन पुस्तकों में देखें । इस भ्रम और अंधकार से भरे भव सागर से पार उतरने का मार्ग पावें । यहाँ न कोई हिन्दू है न मुसलमान केवल उस एक उस खुदा उस ब्रह्म का अलग अलग घर में प्रतिबिम्ब है ।' इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि दारा में फ्रोम प्रणीत समाजीकृत अभिस्थापन सिद्धांत की यथार्थ अवतारणा हुई है ।

स्वप्न भंग का नायक दारा असाधारण या अजनात्मक पात्र है । उसकी साहित्य प्रेम एवं विचारों की दार्शनिकता ख्यात ही है । उसकी पत्नी नादिरा कठिनाइयों के साथ जूझते जूझते जीवन के अंतिम क्षणों तक दारा की सहायता करती है । शाहजहाँ वत्सलासक्त एवं ममत्व से परिचालित पात्र है । औरंगजेब इस्लाम धर्म का समर्थक है । वह कुटिल और धूर्त नीति को अपना कर सम्राट बनता है । जहानारा और रोशनआरा क्रमशः दारा और औरंगजेब की सहायता करती हैं । जहानारा निःस्पृह है तो रोशन आरा छद्म कपट।

इस नाटक के संवादों में सरलता, संक्षिप्तता और स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है । इन संवादों में पात्रों एवं परिस्थितियों के अनुसार गम्भीरता आवेग एवं ओज का परिष्कार हुआ है । उदाहरण के तौर पर—

रोशनआरा—(पास बैठ कर) अब्बा !

शाहजहाँ—(आँखों में आँसू भर कर) बेटी !

रोशनआरा—आप मुझे माफ कर दें ।

शाहजहाँ—तुमने क्या अपराध किया है ?

रोशनआरा—आप सब जानते हैं । मैंने आज तक अपने आपको धोखा दिया । मन को बहुत समझाया लेकिन अपराध की ज्वाला चैन नहीं लेने देती । मरा तो जा सकता है मैं आत्म हत्या कर लूँ । अब्बा, आपने कैसे इतने आघात बर्दाश्त किए ?[1]

---

[1] स्वप्नभंग, पृ० १४७, १४८ ।

प्रस्तुत कथोपकथनों म दुबल अहम (Weak Ego) की यथाथ अवतारणा हुई है ।

इस नाटक की भाषा विशुद्ध हिन्दी है । इसम मुगल पात्रा द्वारा उदू शब्द नहीं बुलाय गए हैं । इसकी भाषा म कभी प्रसाद, कभी माधुय और कभी ओजगुण की प्रधानता रही है । भाषा का काव्यात्मक परिवश दखने लायक है । यथा–

(१) तुम मेरी जीवन वाटिका की कोयल हो, मरे जीवन के सुख दुख तुम्हार गीतो मे गूँजते रहते है ।

(२) आह ! आह वह कितनी सु दर है ज्वार भाटे की भाँति उन्मत्त, बिजली की भाँति तज, सगमरमर के ताजमहल की तरह उजली, यमुना की बाढ की भाति वेगवती ! उसम आकषण है जलन है तज है, वग है और है ओज !

(३) गरीब तो वह रेगिस्तान है जहा प्रकृति के बादल भी नही आते, आते है तो बरसते नही, जो दो चार बूद पाकर भी ध य हो जाते है ।

(४) यदि मेरे आसुओ से आपका हृदय व्यथित होता है तो म प्रज्वलित ज्वालामुखी के मुँह पर बठकर भी मुसकराऊगी । तूफानी समुद्र की छाती पर बठकर भी गाऊँगी ।[1]

भावानुभूति की तीव्रता को व्यक्त करन क लिए अलकारा का सुचारु रूप से अवलब लिया गया है । यथा –

(१) जिस तरह पतगा दीप की ज्योति शिखा पर प्राणोत्सग कर दता है उसी तरह हम भी रण चडी की छवि ज्वाला म जल मरने को प्रस्तुत है ।

(२) प्रत्येक नागरिक यह अनुभव करता था जस स्वय उसके साथ कोई भयकर दुघटना घटी हो । आज भी माना दिशाएँ रा रही है ।

इस नाटक म भावा के प्रवाह म सहजता के साथ मुहावरो का प्रयोग हुआ है । उदाहरणतया–पानी फेर दना चकनाचूर करना, पचडे म पडना, कोहराम मचना, पौ बारह हो जाना लोहा लेना आखें फाडकर दखना, आखो म धूल झोकना मुँह व द कर दना दात खट्टे करना, तारीफ के पुल बाधना, कुत्ते की मौत मारना, वीर गति पाना कलेजा काँपना मौत के घाट उतारना, बीडा उठाना प्राणा की बाजी लगाना[3] इत्यादि ।

---

१ स्वप्न भग पृ० क्रमश ११ १७, ३१ ८७ ।

२ वही पृ० क्रमश ९८ १५५ ।

३ वही पृ० क्रमश २२, ३१ ३१, १८, ४८ ५५ ५७, ६०, ६५, ७९, ८१, ८९, १००, ११२, ११९ १४१, १४२, ।

सुन्दर सूक्तियाँ हृदय के अन्तस्थल को उद्भासित कर चेतना को जगाती है। इस नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा जीवन का चिरन्तन सत्य यथार्थ रूप में उभर पड़ा है। जैसे—

(१) कोई भी नशा बहुत समय तक नहीं रह पाता।

(२) जहाँ फल बहुत होते हैं वहीं साँप भी छिप कर बैठ रहता है।

(३) कल की चिन्ता में हम आज को क्यों बर्बाद करें।

(४) धैर्य रखना मनुष्य का धर्म है।

(५) सुन्दर स्वप्न बहुत कम पूरे होते हैं।

(६) जो बाप का अपमान करता है चाहे वह बाप हो, चाहे बेटा उसे इसका बार सहना ही पड़ेगा।

(७) मनुष्य जाति के शत्रु को दंड न देना देश और मनुष्यता के प्रति विश्वास घात है।

(८) जैसे उगाए तरु का सहारा पाकर बढ़ती हैं उसी भाँति नारी भी।

(९) पुरुष को संयम और धैर्य से काम लेना चाहिए।

(१०) देवताओं को लोग दुनिया में नहीं रहने देना चाहते।

(११) देश व्यक्तिगत मानापमान से ऊपर है।

(१२) पुरुष का हृदय पत्थर से अधिक सहनशील होना चाहिए।

(१३) आधे दिल से युद्ध और प्रेम में सफलता नहीं मिलती।

(१४) पुरुष नियति का दास नहीं उसका निर्माता है।

(१५) निरन्तर साधना में लगे रहना ही मनुष्य की सच्ची सफलता है।

(१६) वीर पुरुष असफलताओं को सीढ़ी बनाकर विजय मन्दिर में प्रवेश करते हैं।[१]

(१७) गुदड़िया में भी लाल छुपे होते हैं।

(१८) भगवान कला संसार की श्रेष्ठतम नियामता में है।

(१९) सोचने से बहुत सोचना पड़ता है और झंझटें बढ़ती हैं।

(२०) संसार में आना पालन से भी एक बड़ी वस्तु है-विवेक पूर्वक कर्त्तव्य का निश्चय करना और उसका पालन करना।

(२१) मुसलमान एक पर ईमान रखता है। अनेक पर नहीं।

(२२) सुखी से सुखी मनुष्य की जिन्दगी बिना किसी दुर्घटना के समाप्त नहीं होती।

---

१ स्वप्न भंग, पृ० क्रमशः ११ १३ १५, २२ ३४ ४९ ५०, ६९ ७५ ९३ ९७, १०१ १०२ १०४, १०४ १०६।

(२३) शायद यह दुनिया भले आदमियो के लिए नही ह ।[1]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि इस नाटक पर लेबिन प्रणीत गति सिद्धात का गहरा असर पडा है ।

छाया

छाया' हरिकृष्ण प्रेमी का एक सामाजिक नाटक है जिसम साहित्य सष्टा क जीवन पर गहरा प्रकाश डाला गया है ।

प्रथम अक

प्रकाश शकरदेव भवानीप्रसाद रमश और सुरेद्र नूरजहाँ के मकबरे क नजदीक आपस म बहस कर रहे हैं । इतने म ही रजनीका त और उसकी पत्नी ज्योत्स्ना का वहाँ आगमन होता है । सभी मकबरो के इदगिद घूमन लगते हैं । तत्पश्चात लाहोर की एक सडक पर रात के नो बजे रजनीकान्त और मनोहरलाल क बीच एक सुदर एव शरीफ लडकी को लकर वार्तालाप चलता है । इतने म ही शकरदेव और प्रकाश वहाँ आत हैं । प्रकाश के वार्तालाप स विदित होता है कि उसम फ्रायड प्रणीत लिबिडो वत्ति ठूस ठूस कर भरी हुई है । दूसरी ओर छाया और उसकी पुत्री स्नह क बीच घर की गरीबी को लेकर बातचीत चल रही है । अपने पति के सदभ म उसका स्नेह उमड पडता है । इसके बाद प्रकाश नदी के किनारे रात्रि क तीन बजे विक्षिप्त सी अवस्था म प्रवेश करता है । इस समय वह अपने आत्मनिवेदन म कहता है ससार को प्रकाश के गीत चाहिए प्रकाश नही चाहिए । लोग कहत हैं तुम्हारी कविता साहित्य की अमूल्य सपत्ति है कि तु कोई यह नही देखता कि विश्व-साहित्य का अमूल्य सपत्ति देन वाला कवि अपनी पत्नी की इज्जत ढकने के लिए एक धोती तक खरीदने मे भी समथ नहा है अपनी बच्ची को दूध पिलाने को भी दाम नही पाता । उस दिन जब साहित्य सभा क मत्री मुझे मान पत्र दे रहे थे, सभा के बाहर कचहरी का प्यादा समन लिए खडा था । इस तरह कब तक अपना लोहू पीकर मैं साहित्य भण्डार भर सकूँगा ।[2] यहाँ प्रकाश के विचारो पर कार्डिनर के अनुसार सामाजिक आर्थिक तत्व (Socio economic Factors) का प्रभाव परिलक्षित होता है । तदुपरान्त वहा पर नदी म छप आवाज आती है और एक बुरके वाली स्त्री दिखाई देती है । वह बुरके वाली स्त्री एक वेश्या है जो अपना बकानून अभक नदी म फेंकने के लिए आई है । उसके सम्भाषण से ज्ञात होता है कि विशिष्ट

१ स्वप्न भग प० ११० १११, १२३ १२४ १४३ १४५ १४९
२ हरिकृष्ण प्रमी छाया, तीसरा सस्करण प० १३

परिस्थिति क कारण उस वश्या बनना पडा है । उसका दिन का नाम माया है और रात का नसीम । थोडा ही दर म काम प्रवत्ति स आन्ना त प्रकाा माया क प्रम म फस जाता है । दूसरी आर रजनीका त अपनी पत्नी ज्योत्सना के साथ सध्या की पार्टी के बार म वहम कर रहा है । रजनीका त हलाहल का सम्पादक होन हुए भी पस क लाल्च म अपनी पत्नी को हाट म रखन के लिए हिचकिचाता नही । थोडी दर बाद प्रकाा और शकर वहा आ जात हैं । ज्योत्स्ना प्रकाा जस श्रेष्ठ कवि का सत्कार करना चाहती है परतु घर म न चाय का सामान था न भाजन की सामग्री । फिर भी वह अपना एक मात्र आभूषण बचकर कवि का यथाचित सम्मान करना चाहती है । वह रजनीका त और शकरदव को जवर बचने के लिए भेज दती है । तत्पश्चात प्रकाा क एक प्रश्न का उत्तर दते हुए ज्यात्स्ना कहती है 'नरीर अभी तक नही बचा । सिफ नरीर को हाट म रखा है । उनका (रजनीका त) इतन स ही काम चल जाता है । जा और इस नरीर का रस ल्न आत हैं व उनक सामन दूसरा ही फूल रख दते हैं उ ह पस मिल जाते हैं, उ ह तप्ति मिल जाती है ।' प्रस्तुत उद्धरण स नात होता है कि ज्योत्स्ना फ्रायडियन मत्यु वत्ति (Death Instinct) स परिचालित पात्र है । क्योकि ज्योत्स्ना म एक नयी सभ्यता का जन्म दन वाली वत्ति दृष्टिगोचर होती है । इस अक क अ त म ज्योत्स्ना अपन को बचान के लिए प्रकाा क पर छून लगती है । प्रकाा ज्योत्स्ना क हाथ पकड कर उठान लगता है । इतन म ही नकरदेव आकर कह उठता है मैं यह क्या दख रहा हू ? तुम भी प्रकाा नारी के रूप जाल म ।' यहा नाटककार न प्रकाा का काम प्रवत्ति का निर्देन किया है ।

द्वितीय अक

बुरी हालत क कारण छाया और स्नह पहला गाँव छोडकर दूसर गाँव आ जाता है । छाया का नया गाँव अधिक भाता है । वह वहाँ क किसानो का सराहना करती है । कुछ दिना बाद छाया का दो सौ रुपय का मनीआडर मिलता है । छाया स्नह स कहती है कि नर बाबू जो न हो य पस भेज दिय है । दोनो का मन पुलकित हो उठता है । दूसरी ओर लाहौर म नकरदव रमन भवानीप्रसाद और मुरारि आपस म बातचीत कर रहे हैं । उनक सभा पण म विदित होता है कि प्रकाा ज्योत्स्ना क कारण पतित हो रहा है । तत्पश्चात रजनीका त ज्योत्स्ना स कहता है कि आजकल तो कवि महाशय न

१ हरिकृष्ण प्रमी छाया तीसरा सस्करण पृ० २४

१ छाया, पृ० २६

इस घर को अपनी सराय बना लिया है। थोडी देर म मनोहर और प्रकाश भी वहाँ आ जाते हैं। रजनीकान्त प्रकाश को धन्यवाद देते हुए कहता है कि आपने ज्योत्स्ना के स्पन्दनहीन जीवन मे धडकन पैदा कर दी है। इसके बाद प्रकाश रजनीकान्त से कहता है कि मैंने ज्योत्स्ना को अपनी बहन कहा है, मैं उसे नीचे नहीं गिरने दूँगा ऊपर उठाऊँगा। तदुपरान्त प्रकाश ज्योत्स्ना के हाथ से शराब ले लेता है। इतने मे ही शकरदेव वहाँ आ जाता है। वह प्रकाश का धिक्कार करता है। उसके प्रस्थान के बाद प्रकाश ज्योत्स्ना से कह उठता है तुम्हारे लिए मैं सब कुछ सहूँगा, ज्योत्स्ना ! कल से प्रकाश शराबी और व्यभिचारी के रूप म प्रख्यात होगा।[1] यहाँ प्रकाश प्रबल मनोवेग के अभाव (Want of master Sentidment) से ग्रस्त हुआ परिलक्षित होता है। तदुपरान्त शकर रजनीकान्त से कहता है कि प्रकाश को बरबाद न होने दूँगा, आप लोग एक भोले कवि का नष्ट कर रहे हैं। तब रजनीकान्त उससे कहता है 'ज्योत्स्ना मेरा परीक्षा यन्त्र है। इस यन्त्र से मैं नौजवानो के दिलो की धडकनें गिनता हूँ। आदमी रूपी जानवर जब अपनी वासना को कपडे पहनाता है तो मुझे हँसी आती है।'[2] यहाँ रजनीकान्त के अपराध मनोविज्ञान पर प्रकाश पडता है। इसके बाद माया और प्रकाश म पाप पुण्य को लेकर वार्तालाप चलता है। माया अपने जीवन की दर्दभरी कहानी प्रकाश के सम्मुख रखते ही प्रकाश उससे कहता है कि तुम्हारा अबोध पाप तुम्हारा कुछ भी न बिगाड सका है। तुम चिर-उज्ज्वल, चिर पवित्र और चिर प्रकाशित हो।

तृतीय अक

रजनीकान्त अपने एक कुकर्म से बचने के लिये ज्योत्स्ना से सौ रुपये की माँग करता है। इतने मे ही प्रकाश आ जाता है और उसकी माग पूर्ण कर देता है। दूसरी ओर स्नेह गीत के द्वारा अपनी माँ को रिझाने की कोशिश कर रही है। इतने म शकरदेव और भवानीप्रसाद वहाँ आ जाते हैं। वे प्रकाश की अध पतनावस्था का चित्र छाया के सम्मुख रखते है, परन्तु वह उनकी जबान पर भरोसा नही करती। वह उनसे कहती है कि जिस दिन उन्होंने मेरा हाथ पकडा था, उस दिन मेरा भाग्य उनके ही भाग्य म मिल गया। काफी वाद विवाद के उपरान्त वह उनसे कहती है 'सत्य बात कहने म छाया किसी से नही डरती। आप लोगों ने पहले उनका धन छीना, उन्हे चिन्ता ग्रस्त करके उनका साहित्य छीनना चाहा और उन पर लाछन लगाकर अब उनका

---

१ छाया, पृ० ३८

२ वही, पृ० ४१

यन भी छीनना चाहते हैं । ' यहाँ छाया चेतन अचेतन मन का प्रथम उमड पड़ा है जो हत्वारोपण (Rationalisation) कहलाता है । इसके बाद शंकर देव और भवानीप्रसाद छाया का बदला लेने के लिए उद्यत होते हैं । अपने सात सौ रुपये प्राप्त करने के लिए वे प्रकाश की गिरफ्तारी का वारण्ट निकल वाते हैं । इस समय माया प्रकाश की सहायता करती है । रजनीकान्त भी रुपये ले आता है । इतने में ही ज्योत्स्ना और छाया भी वहा आ जाती हैं । छाया सभी के सामने कह उठती है कवि किसी का अहसान न लेगा । य लीजिये । (भवानी बाबू की ओर ७०० रु० के नोट फेंकती है ।) कवि कगाल नही है । आपके रुपयो से दस गुने रुपये दे सकता है । ये देखिये । (नोटों का ढेर दिखाती है ।) उसके अभिमान पर चोट करके आप लोगो ने अच्छा नहा किया । मैंने चोरी नहीं की शरीर नहा बचा ऋण नही लिया भीख नही मागी । आपकी (प्रकाश) ही पुस्तक छपवाकर युक्त प्रान्त का मट्रिक परीक्षा म नियुक्त कराकर एक प्रकाशक को बेचकर ये रुपये लाई हूँ । ' यहाँ छाया की आत्म निर्भरता दृष्टिगोचर होती है जो हार्नी प्रणीत तटस्थ (Detached) व्यक्तित्व का परिचायक है । तदनन्तर प्रकाश छाया से कहता है कि तुम मेरा बल प्रतिभा पौरुष धन वैभव आशा साहस और स्फूर्ति हो । आखिर छाया सभी के सम्मुख कह उठती है आप लोग साहित्य सेवी कवि और नाटककार युग की वाणी हैं और भविष्य के निर्माता हैं । उधर देखो वह रुपया मनुष्य से अपमानित होकर अपनी अकिंचनता पर रो रहा है । एक घडी पहले इसी रुपये की वसूली के लिए आपको सरकारी प्यादा लाना पड़ा था अब इसे उठाते हुए हृदय शंकित और लज्जित हो रहा है । रुपये को अपने सिर न चढ़ने दो मनुष्यो ! रुपये को मनुष्य का सुख छीनने दो मनुष्यो ! रुपये को मनुष्य का अपमान न करने दो मनुष्यो ! (प्रकाश के चरणो म बैठकर) आपकी छाया सदा आपके साथ रहकर आपके रास्ते के कांटे बीनेगी । सदा आपके हृदय म आशा का दीपक जलायेगी बल्कि स्वयं दीपक बनकर आपका पथ आलोकित करेगी । छाया मिटे तो मिट जाय लेकिन प्रकाश अमर रहे । ' प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि छाया मे व्यवहार के चिर स्थायी प्रतिरूप (Enduring Pattern of Behaviour) प्रकार के व्यक्तित्व की यथार्थ रूप मे अवतारणा हुई है ।

---

१ छाया पृ० ५६

२ वही पृ० ७७

३ वही, पृ० ७९-८०

इस नाटक का नायक प्रकाश एक कवि है जो काम-अहम (Sexual Ego) से ग्रस्त पात्र है। छाया प्रबल अहम (Strong Ego) से परिचालित नारी है। कड़ी आपत्तियों में भी वह अपने पथ से टस से मस नहीं होती। रजनीकान्त काम-वासना से परिचालित पात्र है, जिसमें आत्मबल एवं इच्छा शक्ति का अभाव है। माया परिस्थितिवश वासना का शिकार बनी है। ज्योत्स्ना पति का समादर करती है, जिसके कारण वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा भी पैरों तले कुचल देती है।

'छाया' के कथोपकथन ओजस्वी, प्रवाहमय एवं गतिशील हैं। सरलता एवं पात्रानुकूलता इनके मौलिक गुण हैं। जैसे—

स्नेह—माँ जब बाबू जी कविता पढ़ते हैं, हजारों लोग तालियाँ पीटते हैं तारीफ करते हैं। कोई इतने पैसे नहीं दे देता कि उनका कर्ज चुक जाय।

छाया—नहीं बेटा, कोई अपनी गाँठ का पैसा नहीं देना चाहता।

स्नेह—और वह दद्दू जी जिन्होंने अपने गाँव जा की किताबें छापी हैं। जिन्होंने अभी नई कोठी बनवाई है क्या वे भी नहीं देते ?[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों में स्नेह की आत्म प्रकाशन (Self assertion) वृत्ति पर प्रकाश पड़ता है।

इस नाटक की भाषा सरल मधुर और वातावरण के अनुसार है। इसमें कहीं कहीं काव्यमयी साहित्यिक भाषा में बड़े कलात्मक चित्र उभर पड़े हैं। ऐसे स्थलों पर नाटककार के सौन्दर्यशील कवि हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के तौर पर—

(१) एक तूफान, जिसमें युवराज सलीम का हृदय केले के पत्ते की तरह काँप उठा था, एक आँधी, जिसमें सम्राट जहाँगीर का अस्तित्व टूटे हुए पत्ते की तरह उड़ रहा था एक ज्वालामुखी जिसमें शेरखाँ जलकर राख हो गया था एक अभिमान, जिसके आगे सुमेरु की दृढ़ता पानी हो गई थी, इस वक्ष की जड़ता में सुप्त है।

(२) जो गुलाब का फूल देखकर खिल उठता है वह औरत के गुलाबी गाल देखकर पागल नहीं हो उठता इसे मैं कैसे मान लूँ, जिसका हृदय इन्द्र धनुष को देखकर पुलकित हो उठता है वह किसी शशि-मुख पर लहराती हुई लहरियादार साड़ी देखकर नाच नहीं उठता इस पर मैं कैसे विश्वास कर लूँ।

---

१ छाया, पृ० १०

(३) पापपुरी म यदि वह पर रखेंगे तो पाप भी पुण्य हो जायगा। वह पाप के पेड से भी पुण्य के फल तोड़ेगे ऐसा जादू है उनकी वाणी म।[1]

मुहावरो के कारण भाषा की रोचकता एव सुदरता म वद्धि हुई है। कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं—दम घुटना पल्ले नही पडना स्वग सिधारना आँखें लाल होना चार चाँद लगाना होम करते हाथ जलना, हाथ धो बठना[2] आदि। प्रस्तुत नाटक की सूक्तियो के प्रयोग मे मनोविज्ञान के साथ अथ-गाम्भीय भी दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणतया—

(१) नारी एक रहस्य है।

(२) दया का बोझ बहुत भारी होता है।

(३) कवि सौ दय का पुजारी तो होता ही है।

(४) औरत तो औरत ही है वह और कुछ नही हो सकती।

(५) कवि का विश्वास करना मूखता है

(६) पुरुष का पुरुषत्व लज्जा की वस्तु नही है।

(७) क्रोध करना दुबलता है।

(८) रुपए से कवि की आत्मा नही खरीदी जा सकती।

(९) समाज चरित्र हीन कवि का आदर नही कर सकता।

(१०) युग की वीणा बजाने का काय हरेक आदमी नही कर सकता।

(११) कितना भी भोला, उदार और महान व्यक्ति कोई हो कानून की जजीरें उसे कस लेती हैं।

(१२) आजकल का न्याय गरीबो को बदमाश बनाने का शिकजा है।

(१३) रुपया ही ससार की सबसे प्रिय वस्तु नही है।[3]

निष्कष रूप में हम कह सकते हैं कि इस नाटक म फ्रायड प्रणीत लिबिडो वत्ति का प्रभावी परिष्कार हुआ है।

बधन

'बन्धन' यह हरिकृष्ण प्रेमी का एक सामाजिक नाटक है जिसम पूजीपति एव मजदूरो का सघष यथाथ रूप म चित्रित किया गया है।

प्रथम अक

इस नाटक की शुरुआत होती है एक अध भिखारी और छोटी बालिका

---

१ छाया पृ० क्रमश १, ३४, ६१

२ वही पृ० क्रमश ८ १७, ३१ ६३ ४४ ६१ ६३

३ वही, पृ० क्रमश ४, १२, २९, ३५, ३७, ४८, ६१, ६१, ६३, ६४, ६९, ७०, ७८।

यदि मोहन बाबू का आशीष न हो तो मैं इस आन्दोलन की कुछ सेवा करना चाहती हूँ। इसके बाद वह जवरा की पोटली वहीं रखकर अपने घर चली जाती है। इधर उसके घर पर मोहन की वरसगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई जा रही है। इतने में ही मोहन जवरा की पोटली लेकर वहाँ आ जाता है। आखिर मोहन पर चोरी का इल्जाम लगाकर पुलिस उसे गिरफ्तार करती है।

द्वितीय अंक

संध्या के समय सरला अपनी झोपड़ी के सामने दीप जला रही है। इतने में मालती वहाँ आ जाती है। वह सरला से पूछती है कि मोहन ने झूठी बात कहकर चोरों में से था, ऐसा क्यों कहा? सरला कहती है कि उन सिद्धान्त प्रिय को उसकी चोरी उचित नहीं लगती। इसीलिए उसने सहन कर लिया। तब मालती कह उठती है, 'मैं कचहरी में जाकर भण्डाफोड़ कर दूँगा। पिताजी मुझे बलपूर्वक रोक रहे हैं। मुझ पर पहरा बैठा रखा है। तुम मेरी सहायता करो सरला। दुनिया चाहे कुछ कहे। मैं सब सह लूँगा। तुम मुझे कचहरी ले चलो।'[1] यहाँ मालती में अचेतन अनुप्रेरणा (Unconscious Motivation) परिलक्षित होती है। इसके बाद सरला नदी के किनारे जाती है। यहाँ कई बालक बालू के घरौंदे बना रहे हैं। वे धंधों की नकल पर एक दूसरे के साथ झगड़ा भी कर रहे हैं। सरला के एक प्रश्न का जवाब देते हुए एक बालक कह उठता है, 'मेरी मिल में रायबहादुर, सेठ साहूकार और अफसर लोग मजदूरी करेंगे। मैं उन पर हुक्म चलाऊँगा। चार आने रोज मजदूरी दूँगा।'[2] यहाँ बालक में डॉ० एडगर डोल प्रणीत वाइनलैंड सामाजिक परिपक्वता माप (The Vineland Social Maturity Scale) सिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है। इधर प्रकाश शराब के प्याले में अपने को भुलाने की कोशिश कर रहा है। इतने में मालती वहाँ आ जाती है और कहती है कि मोहन बाबू को आठ मास की सजा हो गई है। तत्पश्चात छोटे बालक हाथ में तिरंगा झंडा लेकर मोहन बाबू को छोड़ देने के लिए जोर करते हैं। परन्तु सरला उनके मन का परिवर्तन कर उन्हें वापस लौटाती है। इसके बाद के एक दृश्य में प्रकाश सरला से मिलता है। सरला उसे मजदूरों की सहायता करने की एवं शराब का त्याग करने की सलाह देती है। इसी बीच लक्ष्मण और रहीम मोहन के बारे में बहस कर रहे हैं। थोड़ी देर में प्रकाश वहाँ आ जाता है। लक्ष्मण के घर की हालत देखकर वह उद्विग्न हो जाता है।

---

१ बंधन, पृ० २९

२ वही, पृ० ३२

में ही जेल से मुक्ति पाकर प्रकाश वहाँ आ जाता। चोरी दर म लक्ष्मण वहाँ आकर कहता है। 'लेकिन अपराधी यहाँ उपस्थित है। रायबहादुर साहब मुझ पुलिस के हवाले कर दीजिए।'[1] यहाँ लक्ष्मण की अपराध ग्रंथि उग्र विकास करती हुई दिखायी देती है। इसके बाद मजांची आदेश देता है कि लक्ष्मण जितने रुपयों की चोरी करने आया था उतने ही रुपए (२५०००) मजदूरों म बँटवा दो। अन्त म मोहन भी रिहा होकर घर आ जाता है। रायबहादुर खजांची मालती का हाथ मोहन के हाथ म देते हुए कह उठता है आज मेरी पुत्री का ठिकाना लगा है। आज मझ नवजीवन और नवप्रकाश प्राप्त हुआ है। मैंने जान पाया है कि जो द्रव्य म लगा है वह सचय म नहीं। मैं आज सब कुछ है डालना चाहता हूँ। लक्ष्मी को हमने बन्द करना चाहा लेकिन वह हमारी कद म तड़प रहा है। वह मुक्त होना चाहती है। जब तक वह मुक्त न होगी ससार म मार काट हिंसा बनी रहेगा। वह बहुत सुन्दर है उसे सब बन्द करना चाहते हैं। लेकिन वह तो चलता है। मोहन बाबू ने मुझे नया जन्म दिया है।'[2] यहाँ सेठ खजांची म विश्वासों एव अभिवृत्तियों म परिवतन (Changes in beliefs and Attitudes) सिद्धान्त परिलक्षित होता है। तदुपरान्त मोहन और मालती जन्म जन्म के साथी हो जाते हैं। सभी हर्ष के सागर में डूब जाते हैं।

इस नाटक का नायक मोहन है। वह मजदूरों का नेता है जिसमे जनता की सेवा (Service of the People) का भाव प्रचुर मात्रा म दृष्टिगोचर होता है। मोहन की बहन सरला उसके काय म सक्रिय योगदान देती है। प्रकाश और मालती पूजीपति के पुत्र-पौत्र होते हुए भी अपने पूजीपति पिता से विरोध दिखाते हैं। रायबहादुर खजांची का हृदय परिवतन मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है।

बन्धन के सवाद सुगठित सक्षिप्त एव उपयुक्त है। उनम सयम गाम्भीय एव सरसता का परिष्कार हुआ है। यथा-

दूसरा बालक– और चोर के घर म चोरी करना बुरा नही है।

सरला– लेकिन रायबहादुर साहब ने रुपया चोरी करके नहा व्यापार स जमा किया है।

तीसरा बालक– चोरी न सही बेईमानी सही–

सरला– क्यो ?

---

1 बन्धन, पृ० ५३।

2 वही, पृ० ६५-६६।

चौथा बालक– काम तो सारे मजदूर मिलकर करते हैं। फिर मिल की सारी आमदनी सबको बराबर क्यों नहीं बाँटते ? रायबहादुर साहब को तो उसमें इतना परिश्रम नहीं करना पड़ता।

पहला बालक– हाँ और वे ही सारा लाभ ले जाते हैं। है न यह बेईमानी।"[1]

प्रस्तुत कथोपकथनों से बच्चों की सृजनात्मक कल्पना (Creative Imagination) पर प्रकाश पड़ता है।

'बंधन' की भाषा शैली सुबोध एवं भावपूर्ण बन पड़ी है। इसमें व्यंग्य का भी सुचारु रूप से अवलम्ब हुआ है। उदाहरणतया–

(१) इनकी आँखों की ज्योति आपके स्वार्थ और इनके पेट की ज्वाला ने छीन ली है। सच है कि इनका भूखा पेट इनकी आँखों में वह आग भर देता है जो आपको खा जाना चाहती है।

(२) आदमी ! ह ह ह आदमी ! आदमी बनने से क्या लाभ ? और यह बताओ आदमी पशु नहीं तो क्या है ? हमारे पिता ! वह गरीबों के शिरमौर ! वे कितने बड़े पशु हैं ! क्या तुमने कभी अच्छी तरह उन्हें देखा है ?

(३) हिंसा करना ही मनुष्य की विजय है। देखती नहीं हो यह अपने विलास के साधन ! सोने चाँदी के बर्तन, सोफे कोच, मोटर बग्घी ! ये सब क्या है ? ये इंसान की लाशें हैं।"[2]

मुहावरों कहावतों की भाषा का सौन्दर्य अधिक खिल उठा है। जैसे– मुँह में कालिख लगाना, दम घुटना, हृदय फटा जाना, चकमा देकर भागना, अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग, चौपट हो जाना, आटे दाल का भाव मालूम हो जाना, गला घोंट देना, आँखों का तारा, आँखें खोल देना, दिमाग खराब हो जाना इत्यादि।[3] सूक्तियों द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति बड़ी स्पष्टता से हो गयी है। यथा–

(१) धैर्य की तरणी पर बैठकर आँसुओं का समुद्र पार करो।
(२) जो बलवान है वह निर्बल को खाता है।
(३) खाने की बात कोई नहीं भूलता।
(४) सब सुन्दर चीज को अपने कब्जे में करना चाहते हैं।
(५) दुःख से डरना कायरता है और सुख के पीछे पागल होना मौत है।
(६) मनुष्य रुपये से ज्यादा कीमती है।

---

१ बंधन पृ० ३६–३७।
२ वही, पृ० क्रमशः ५ ९ १०।
३ वही, पृ० क्रमशः ७, २० २१, २१ २२ ३१ ३२ ४१ ६४, ६४, ६५।

'(७) नारि स्वय गो ग्य है।

(८) अन्याय की सदा विजय नहीं हो सकती।

(९) दुख मनुष्य को कवि बना देता है।

(१०) व्यक्तिया का क्या मन्य मृ यता काय का है। काय जीवित रहना चाहिए।

(११) यदि सत्य म बल है तो घोर अधकार के पीछे म उसकी किरणें प्रकट होंगी।

(१२) कानून प्रेम के भाव म न । आता।

(१३) जो फल डाल म टट गया है उस फिर म डाल म जोडन का प्रयत्न व्यथ है।

(१४) सेवा तो स्वस्थ हृदय स होती है।

(१५) मनुष्य रोन के लिए नही पदा हुआ है।

(१६) बुरे को यदि सदा बरा समझा जाय और सब उसस मुँह फरे रहें तो वह अच्छा कस बन ?

(१७) कानून म बदला नही च ता।

(१९) भगवान का न्याय मनुष्य क याय स बडा है।'[1]

इसकी मीमासा स स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस नाटक म समाज मनोविज्ञान तथा बाह्य मनोविज्ञान का यथाथ निरूपण हुआ है।

विषपान

हरिकृष्ण प्रेमी विषपान नाटक म मवाड की राजकुमारी कृष्णा का एक वास्तव तथा करुणाजनक चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम अक

प्रभात के समय राजकुमारी कृष्णा वाटिका म अपन हाथ म गुलाब का एक फूल और कटारी लकर घूम रही है। उसका रूप अप्सराओ को भी लज्जित करन वाला है। वह गीत गा रही है। इतन म ही महाराना के आदेश के अनुसार रमा उस बुलान क लिए आती है। तब कृष्णा रमा स कह उठती है उनका विशेष काय मैं समझती हूँ। उनका मुझ पर इतना अधिक मोह है कि एक क्षण क लिए भी व मुझ आखो की ओट नही होन दना चाहता। व समझती हैं जस मैं अभी नन्ही बालिका हूँ। जस कोई मुझ उठा ल जायेगा।

---

1 वचन प० क्रमश २ १० १३ १७ २० ३१ ३ ६२, ६८ ५२, ५५ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६३ ६३।

बाटिका मे फूल लेने आती हूँ तो कहती है– माली मालिन किसलिए हैं। गुलाब के क्रूर काँटे तेर कोमल हाथो म गड जायेंगे। किसी चमेली को लतिका के नीचे बठा हुआ साप तुझे डस लेगा। न जान कैसी-कसी आशकाएँ वह करती रहती हैं। देख तो रमा, क्या वास्तव मे मैं नादान बालिका हूँ ?[1]' यहाँ कृष्णा म परिवार, परिपक्वता एव द्वन्द्व (Family, Maturity and Conflicts) परिलक्षित होता है, जो उसके व्यक्तित्व का परिचायक है। तदुपरा त महारानी बाटिका म आती हैं और राजकुमारी को अक्षय ततिया के निमित्त स देवी की पूजा के लिये बुला ले जाती है। दूसरी तरफ मवाड के सिसोदिया सरदार दौलतसिंह और मेवाड के शक्तावत सरदार सग्रामसिंह इन दोना मे वार्तालाप होता है। सग्रामसिंह दौलतसिंह का कहना मानता है और अनथ टल जाता है। इधर मवाड की महारानी के सम्मुख अपनी लाडली राजकन्या कृष्णा का विवाह यह बडी समस्या महसूस होती है। जब महारानी महाराणा के सामन राजकन्या के विवाह का प्रश्न उठाती है तब वह बहकी बहकी सी बातें करता है। अ तत महाराणा पुरोहित को टीका लेकर-अभयसिंह के पास भेज देता है, लेकिन पुरोहित को रास्त म ही बडा बुरा समाचार मिलता है कि अभयसिंह इस दुनियाँ स कूच कर गया है। इस लिए पुरोहित टीका वापस लाता है और कहता है कि मारवाड के अन्य सरदार कहते थे वहा के वतमान महाराज मानसिंह जी को टीका चढा दिया जाय। तब सग्रामसिंह कह उठता है कि मेरी सम्मति मे अबर नरेश महाराज जगतसिंह को भेज दिया जाय। आखिर वह टीका जगतसिंह की ओर भेज देने का निश्चय होता है। तदुपरात सग्रामसिंह मेवाड भूमि को त्यागना चाहता है। पर तु महाराणा उसमे कह उठता है, यह न समझो, सग्रामसिंह कि मैं अधा हूँ। आठो पहर मेरे हृदय म एक तूफान उठता रहता है। मैं चाहता हूँ कि किसी तरह मवाड याय और प्रम का शासन हो।[2]' यहाँ महाराणा के अहम (Ego) एव नतिकाह (Super Ego) के बीच का सघष उमड पडा है। अ ततोगत्वा सग्रामसिंह मवाड की भूमि छोडने का सकल्प पूरा करता है। जात वक्त राजकुमारी कृष्णा की शादी के लिये दो लाख रुपय दहेज के लिय द दता है। इस घटना से महारानी की आँखो म आँसुओ की बौछार लगती है। वह सग्रामसिंह स कहती है कि तुमने मेवाड राज वश की डूबती हुयी प्रतिष्ठा की रक्षा की है।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी विष पान पचम सस्करण पृ० ३।
२ विष पान पृ० ३१।

नारी धर्म है। नारी संसार में केवल देने आई है, लेने नहीं। यदि वह कुछ लेती है तो संसार भर का कष्ट, दुनियाँ भर की वेदना, विश्व भर का अभिशाप। आठों पहर घर के बन्दीगृह में बन्द कर रहकर वह पुरुष को कर्मक्षेत्र में भेजती है। वह दीपक की भाँति जलकर घर का अँधेरा दूर करती है। यही नारी की सार्थकता है।"[1] यहाँ रमा में वात्स्यायन प्रणीत पारलौकिक धर्म प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। तदुपरान्त कृष्णा मीरा शंकर प्रभृति के विषपान का चित्र खींचती है। इसमें उसके कला शिल्प जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इतने में महाराणा वहाँ आता है और उसे आशीर्वाद देता है। कुछ देर बाद पठाण सेनापति वहाँ आकर महाराणा से कहता है कि पहला टीका तो जोधपुर आया था। तीसरे वार्तालाप के बाद वह महाराणा से दम भरता है। तत्पश्चात् अजीतसिंह और जवानसिंह दोनों अपने षड्यन्त्र में कामयाब हो हो जाते हैं। उसी वक्त अजीतसिंह महाराणा से कहता है कि राजकुमारी की मृत्यु की आज्ञा लिखित रूप में प्रदान करो। षड्यन्त्र से महाराणा से पत्र लिखाया जाता है। महाराणा रुग्ण जाता है। आखिर अमीरखाँ उसे बन्दी बना लेता है।

तृतीय अंक

जयपुर-नरेश जगतसिंह अपने डेरे में केसरबाई के साथ वार्तालाप कर रहा है। इतने में संग्रामसिंह वहाँ आ जाता है। संग्रामसिंह द्वारा केसरबाई की प्रशंसा सुनकर जगतसिंह उससे कहता है, 'केसर मेरे जीवन की मधुर पहेली है। और सदा पहेली ही बनी रहेगी। उसके विषय में सोचना व्यर्थ है।'[2] जगतसिंह में संवेग के सिद्धान्त (Theories of Emotion) की प्रतीति आती है। तदनन्तर कृष्णा राजवाटिका में गाती हुई घूम रही है। थोड़ा देर में वहाँ रमा आ जाती है। कृष्णा उससे पूछती है कि क्या यह विवाह हो सकेगा? वे दो नरपुंगव जयपुर और जोधपुर के नरेश—क्या दोनों में से एक भी मनुष्य बन सकेगा? इतने में ही जवानदास राजकुमारी की हत्या करने के लिए वहाँ आ जाता है परन्तु उससे यह काम नहीं होता। तत्पश्चात् महारानी महाराणा का पत्र पढ़कर उद्विग्न हो जाती है। पर कृष्णा उससे कहती है माँ, पिता जी की आज्ञा पूर्ण होनी चाहिए। तुम वीर राजपूतानी हो और मैं एक राजपूत बाला हूँ। मैं तुम्हारे दूध को लज्जित नहीं करूँगी। अपने देश और कुल के हित के लिए प्राण चढ़ाने का अवसर सौभाग्य से ही मिलता है,

---

१ विषपान, पृ० ७१
२ वही, पृ० ८२

मो।' 'यहाँ विषम परिस्थितियों के कारण कृष्णा का दुर्बल अहम (Weak Ego) जाग्रत हो जाता है और आत्म सम्मान की रक्षा के लिए वह प्राण त्यागने को उद्यत हो जाती है। थोड़ी देर में राधा विष लेकर वहाँ आ जाती है। दूसरी ओर एक दृश्य में मानसिंह दौलतसिंह से कहता है, जान बूझकर मेरा अपमान करने के लिए टीका जयपुर भेजा गया है। जयपुर-नरेश एक बड़ी सेना लेकर मारवाड़ में जा विध्वंस का ताण्डव किया है–उसका प्रतिशोध भी मेरे लिए आवश्यक है। यह विवाह मेरे लिए मान का प्रश्न बन गया है।'' यहाँ मानसिंह की प्रतिशोध ग्रंथि उभर पड़ी है। तत्पश्चात् कृष्णा राधा के हाथ से विष पी लेती है। थोड़ी देर में फिर महारानी से कह उठती है माता जी उधर देखिए उस चित्र में महारानी पद्मिनी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला में प्रवेश कर रही हैं। देश और जाति का गौरव रखने के लिए प्राण देने में क्षत्राणियाँ अपना सौभाग्य समझती हैं। आपकी पुत्री ने आपके दूध को लजाया नहीं है, माँ राजवंश-कुल का मस्तक ऊंचा किया है।' प्रस्तुत अवतरण से विदित होता है कि कृष्णा व्यक्तिगत अन्तप्रेरणा (Individual Motivation) का एक आदर्श रूप है। तत्पश्चात् दौलतसिंह का जगतसिंह और मानसिंह के साथ वहाँ आगमन होता है। दौलतसिंह कृष्णा से कहता है कि मैंने महाराजा जगतसिंह और महाराजा मानसिंह में मेल करा दिया है। तब कृष्णा कह उठती है 'लेकिन ताऊजी मेरी भाँवरें मुहूर्त से पहले ही पड़ गई। यमराज की डोली मुझे लेने आ गई है। मैं जा रही हूँ। मुझे आशीर्वाद दो। कृष्णा का यह आत्मसमर्पण भुलाने से भुलाया नहीं जाता है।

इ। नाटक की नायिका कृष्णा विचारशील एवं दार्शनिक भारतीय नारी है। वह चित्रकला तथा संगीतकला में प्रवीण है। वह अपने अहम (Ego) के साथ समझौता न करने से हँसते हँसते विषपान कर लेती है। संग्रामसिंह वचन को जागने वाला आदर्श देश रक्षक है। जगतसिंह विलासी प्रवृत्ति का नरेश होते हुए भी अपने स्वत्व को जगाने की कोशिश करता है। मेवाड़ का महाराणा एवं महारानी व्यवहार कुशल पात्र हैं परन्तु उनकी भावुकता उनको खोने में लाती है।

इस नाटक के अधिकांश संवाद सरल सजीव सशक्त एवं प्रभावोत्पादक

---

१ विष पान, पृ० ८७

२ वही पृ० ९६

३, वही, पृ० १०७

४ वही, पृ० १०७

बन पड़े है। उनमे भावात्मकता, आजपूर्णता एव दार्शनिकता का उचित रूप म समावेश हुआ है। जैसे—

केसर—क्या आप प्रेम के लिए ससार छोड नही सकत ? आप मरे हैं—मेरा ससार है। मैं आपको लेने आई हूँ।

जगत—केसर, प्रेम त्याग चाहता है।

केसर—केवल नारी से—पुरुष स नही।

जगत—आज तुम मुझसे लडने आई हो, केसर !

केसर—हाँ महाराज ! अपने प्यार के लिए। अपने अधिकार के लिए। मुझमे क्या नही ? फिर आप क्यो और विवाह कर रहे हैं[1]

उपर्युक्त कथोपकथनो से केसरबाई की काम प्रवृत्ति पर प्रकाश पडता है।

इस नाटक की भाषा सीधी सरल और सरस है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग होने से उसमे स्वाभाविकता एव गति आ गई है। उसमे नाटकत्व एव कवित्व का सामजस्य सुन्दर रूप से हुआ है। उदाहरणतया—

(१) मेरा जी चाहता है कि कोयल बनकर उस आम की सबसे ऊँची फुनगी पर बैठकर मधुर गीतो से सारे उपवन को गुंजा दूँ। पक्षी बनकर ऊपर उस नीले आकाश मे उडती ही चली जाऊँ। सागर की लहर बनकर नाचू। सूर्य की किरण बनकर फूलो का मुह चूमू।

(२) हमारा कृष्णा राजस्थान के आकाश का चाँद है। वह शकर के समान शक्तिशाली व्यक्ति के भाल की शोभा हो सकती है।[2]

(३) मरुभूमि मे भी रस के स्रोत हैं किन्तु मेरा जीवन तो रेगिस्तान है जिसमे दिगन्त तक केवल शुष्कता, नीरसता का विस्तार है। सारी आयु दूसरो का जीवन बनाने मे समाप्त कर दी कि तु आप सुधा सरोवर खोजने चले तो मिली नमक की झील।

(४) कृष्णा ! उधर देख पूर्णिमा के चन्द्र को देखकर झील का हृदय हिलोरें ले रहा है। प्रकृति तन्मय होकर शशि की मधुर मुस्कान का रस पान कर रही है। उज्ज्वल ज्योत्स्ना से स्नान कर सामने किले की भव्य दीवार कितनी सुन्दर जान पडती हैं। कितना सौन्दर्य है इस चाँदनी रात मे।

(५) तुम कठोर काले पर्वत पर से प्रवाहित होने वाले फेनोज्ज्वल प्रपात की धारा हो। काँटो के बीच खिलने वाला गुलाब का फूल हो।[3]

---

१ विष पान, पृ० ७९–८०

२ वही, पृ० क्रमश ५ १५

३ वही, पृ० क्रमश १५ २५ २७

प्रेमी जी भाषा को सजीव बनाने के लिए मुहावरों कहावतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—चार चाँद लगाना, दाँत खट्टे करना, उल्लू सीधा करना, मौत के घाट उतारना, लोहा लेना, चौपट कर रखना, आँखों की पुतली, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी, खोया चाँदी बाँध देना, दाल भात में मूसरचन्द बनकर आना, एक जान और सौ मनर्ते, हृदय पर पत्थर रखना, पगड़ी बदलना, दिल को ठेस पहुँचाना, आ बैल मुझे मार, घावों वाले देना, प्राणों की बाजी लगा देना, पल्ला पकड़ना, उतारू हो जाना, मुँह की खानी पड़ना, आँख उठाकर देखना[1] इत्यादि।

सूक्तियाँ में एक एक शब्द अनूठे ढंग से जुड़ा हुआ है जिसमें भावाभिव्यक्ति का यथार्थ परिष्कार हुआ है। उदाहरणतया—

(१) नारी के हृदय का स्नेह उसका सबसे बड़ा बन्धन है।

(२) देश पारिवारिक प्रतिष्ठा, जाति गौरव और वंशाभिमान से कहीं बड़ी चीज है।

(३) स्वाभिमान मनुष्य का बहुत बड़ा बल है।[2]

(४) रोना का वैराग्य उचित नहीं है।

(५) बहक आत्मा को होश में लाने के लिए जबरदस्त धक्का चाहिए।

(६) शंकाशील होना स्त्री जाति का स्वभाव है।

(७) लाख कष्ट होने पर भी कोई अपनी बपौती नहीं छोड़ता।

(८) न्याय में दया का स्थान नहीं है।

(९) अन्याय को चुपचाप सहना भी तो कायरता है।

(१०) किसी बड़े हित के लिए छोटे हित की बलि देना ही पण्डितो है।

(११) हृदय का मिलन ही सच्चा विवाह है।

(१२) सच बोलने के लिए हाथ भर का कलेजा चाहिए।

(१३) प्रत्येक मनुष्य अपनी जाति, अपने धर्म और देश के लिए जान पर खेल सकता है।

(१४) प्रतिशोध-भावना की अन्धी उत्तेजना में मनुष्य विवेक खो देता है।

(१५) खाली दिमाग में प्रेत नाचते हैं।

(१६) शत्रु का जाति गर्व में हलाहल रखकर जीवित रहना मनुष्य

---

१ विष-पान पृ० क्रमश १, ८ ९ १० ११ ११, ११, १३, २१ २२ २६ ३१ ५७ ६३ ६६, ६७ ७६ ९७, ९७ ९७, ९८

२ वही, पृ० क्रमश ५ १०, १०

यया देवताओ के लिए भी कठिन है।

(१७) जगत के अन्याय को सहन करने के लिये बहुत बलवान आत्मा चाहिए।

(१८) प्रत्येक क्षण का मूल्य है।

(१९) नारी का रूप बडे अनर्थो का कारण है।

(२०) उत्तेजना म मनुष्य विवेक को खा देता है।

(२१) मजबूत आदमी की आवाज सब सुनते हैं—कमजोर की नही।

(२२) दूसरो के दुख से बचाने के लिए महापुरुषो को हलाहल पीना पडता है।[1]

इससे प्रमाणित होता है कि विषपान' मे इन अहम और नतिकाह की यथार्थ अभिव्यक्ति हुइ है।

उद्धार

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'उद्धार' नाटक म राष्ट्रीय भावना एव प्रगतिवादी विचारो का बेजोड चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम अक

मेवाड के पहाडी प्रदेश के गाँव क एक खेत म हमीर की माँ सुधीरा और दलपति की माँ दुर्गा के बीच वार्तालाप चल रहा है। सुधीरा दुर्गा से कहती है कि मेरा हमीर बाबा रावल के आदेश पर चल, मेवाड की खोई स्वाधीनता का उद्धार करे, राजा और प्रजा का भेदभाव मिटाकर मेवाड का गृह कलह स बचाकर भारत की ढाल बनाए। थोडी देर म अठारह वष के हमीर का वहा आगमन होता है। दूसरी ओर चित्तौड गढ की राज वाटिका मे दिल्ली के बादशाह द्वारा नियुक्त मेवाड का महाराव मालदेव की बाल विधवा पुत्री कमला फूल तोडते ताडते गीत गा रही है। इतने म ही मालदेव वहा आ जाता है। वह उसके सम्मुख पुनर्विवाह का प्रश्न उपस्थित करता है। परन्तु कमला को अपनी शादी से देश की अधिक चिन्ता है। उसे अपने पिता जी का बर्ताव पसन्द नही है। वह उससे कहती है कि बाबा रावल ने निरकुश और अत्याचारी राजा से मेवाड की प्रजा को मुक्त करने के लिये राज सत्ता अपने हाथ म ली थी और आपने व्यक्तिगत लालसा की पूर्ति के लिये देश की स्वाधीनता को विदेशियो के हाथ बेच दिया है। तदुपरान्त

---

[1] विष-पान, प० क्रमश १८, २८, ३०, ३१, ३२, ३२, ३२, ३७, ४५, ४८, ५५, ६५, ७२, ८०, ८२, ८४, ९५, ९९, १०६

सुजानसिंह अपने राजमहल में शराब एवं नर्तकी के नाच में पागल हुआ दिखाई देता है। तदनन्तर एक दृश्य में कमला मेवाड़ का प्राचीन राजकर्मचारी जाल के साथ बातचीत कर रही है। जाल उससे कहता है कि महाराणा अजयसिंह मेवाड़ का गया हुआ राज्य हस्तगत करने के लिये कमजोर महसूस होता है। इतने में मालदेव और उसका समर्थक एक सामन्त मुजवलीचा का आगमन होता है। मुजवलीचा कमला के साथ शादी करना चाहता है। परन्तु कमला को यह पसन्द नहीं है। तत्पश्चात वह कटार निकालती है और अपनी राय प्रदर्शित करते हुए जाल से कहती है "मैं तो जीना चाहती हूँ—अपने तन मन और आत्मा को देश के स्वाधीन करने के महायज्ञ में लगाने के लिए लेकिन मनुष्य की लालसा की सर्वग्रासी कठोरता नित्य ही कितनी भोली भाली कलियों को तोड़कर मसलकर फेंक देती है पैरों से रौंदकर चली जाती है आकाश की आत्मा में जरा भी पश्चाताप नहीं दिखाई देता।"[1] यहाँ कमला का प्रबल अहम् (Strong Ego) दृष्टिगोचर होता है। एक अन्य दृश्य में सुधीरा और दुर्गा के बीच भारत के भावी सम्राट का लेकर वार्तालाप होता है। इतने में ही हमीर रक्त-रंजित तलवार लेकर वहाँ आ जाता है। दुर्गा के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए वह कह उठता है "मैं क्या करता अपने गाँव की लड़की रधिया चमारिन को दो विदेशी मलिक जबर्दस्ती लिये जा रहे थे। वह सहायता के लिये चिल्ला रही थी। मुझ से नहीं देखा गया। मैंने उन दोनों राक्षसों को मौत के घाट उतार दिया।"[2] इस अवतरण से हमीर के सामाजिक अनुप्रेरक (Social Motives) पर प्रकाश पड़ता है। तत्पश्चात एक पहाड़ी की तलहटी में हमीर युवकों से कहता है "हम ग्राम-ग्राम में विद्रोह-ज्वाला धधका देंगे होगी। देश के प्रश्न पर जो हमारे साथ न होगा वह हमारा शत्रु होगा। ऐसे देशद्रोहियों के मारने में हम संकोच नहीं करेंगे।"[3] यहाँ हमीर में जनता के सामने प्रभावशाली प्रदर्शन (Effective Demonstration before the people)— तत्त्व की प्रविधि परिलक्षित होती है। इस अंक के अन्तिम दृश्य में हमीर देशद्रोही मुजावलीचा का कटा हुआ मस्तक हाथ में लेकर राजदरबार में प्रवेश करता है। इस वक्त महाराणा अजयसिंह सिंहासन से उतर कर हमीर को गले लगाते हुए राजदरबारियों के सम्मुख कह उठता है

१ हरिकृष्ण प्रेमी उद्धार, चतुर्थ संस्करण पृ० २९

२ वही, पृ० ३२

३ वही, पृ० ३९

"धय हो हमीर ! तुमने मरे कलेजे का घाव भर दिया, अपनी घोर वीर माता के दूध को कृताथ कर दिया । आज तुम्हारे अनुपम साहस से पुलकित हो रह होंगे । (दरबारियो से) मेवाड क उद्धार के लिये जिस महान नेता की हम आवश्यकता है उसे हमने प्राप्त कर लिया है । हमीर ही बाधा रावल की गद्दी का स्वामी होगा ।"[1] प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि हमीर नेतृत्व के गुणो (Traits of Leadership) से ओत प्रोत पात्र है । आखिर दाम् रक्त से हमीर को टीका किया जाता है और युवराज क रूप मे उसकी नियुक्ति की जाती है ।

द्वितीय अक

कमला चित्तौड के राजमहल मे अपने भविष्य के बारे म सोच रही है । इतने म ही जाल वहा आ जाता है । जाल के द्वारा उसे मुजवलीचा के ससार से कूच जान की वार्ता मिलती है । वह यह भी बता देता है कि कमला और हमीर के जीवन की मजिल एक है । तदुपरा त केलवाडा की राज वाटिका म सुजानसिंह और भूपति के बीच युवराज हमीर को लेकर बहस चल रही है । भूपति सुजानसिंह से कहता है कि किसान की झोपडी म जन्म लने वाला, देहातियो की दुनियां मे जीवन यापन करन वाला हमीर तो महलो को भी झोपडी बना दगा । तब सुजानसिंह सभापण के सिलसिले म उससे कहता है कि पिताजी का हमीर की वीरता और शक्ति पर विश्वास है । वह समझते हैं कि हमीर चित्तौड पर फिर सिसोदिया का झण्डा फहरा सकगे । तदनन्तर मालदव, भूपति और जाल के बीच वार्तालाप हो जाता है । जाल हमीर और कमला के ब्याह का समथन करते हुए मालदेव से कहता है, 'ओहो आप समझ नही । आप कमला को कुमारी ही बताइए । ब्याह हो जान के बाद जाहिर कर दीजिए कि कमला विधवा थी । अधिकांश राजपूत हमीर का साथ छोड देंगे । धम विरुद्ध विधवा विवाह करन वाल हमीर का कौन समथक होगा ।'[2] यहा जाल के विचारो मे जनमत को प्रभावित करने वाले विरोधी दबाव (Cross Pressures) की अवतारणा हुई है । दूसरी ओर अजयसिंह और हमीर के सभापण से सुजानसिंह की नीचता पर प्रकाश पडता है । सुजानसिंह और भूपति अजयसिंह को शरबत म जहर देकर अपना षडयन्त्र जारी रखते हैं । एक अन्य वार्तालाप म सुधीरा दलपति से कहती है, 'यह तो तुम लोगो क सहयोग और साहस पर निभर है । तुम लोग जन'

१ उद्धार, पृ० ४२
२. वही, पृ० ५५

जागृति का नारा फूँककर प्रत्यक्ष मेवाड़ की स्वाधीनता संग्राम का सक्रिय योद्धा-सेवक एवं अनुयायी में एक सदस्य मैं था।' प्रस्तुत उद्धरण में जनमत निर्माण के साधन (The Agencies of Public Opinion Formation) पर प्रकाश पड़ता है। तदनन्तर हमीरसिंह राजसिंहासन पर आसीन होकर अपने सहयोगियों से कहता है 'मेवाड़ के भाग्य के कर्णधारो ! परिस्थिति के चक्र ने मुझे राजसिंहासन पर ला बिठाया है किन्तु वास्तव में तो मैं आप लोगों का और सम्पूर्ण राष्ट्र का सेवक हूँ। आप लोगों के सहयोग और आशीर्वाद के सहारे मैं अपना कर्तव्य निभा सकूँगा।' यहाँ हमीरसिंह में जनता की सेवा (Service for the People)-नेतृत्व के भाव की प्रवृत्ति उभर रही है। इतने में ही द्विजराज मालदेव की कन्या कमलावती से हमीरसिंह का टीका करने के लिए वहीं आ जाता है। मन्त्री शत्रु कन्या से विवाह की असमर्थता प्रकट करता है। परन्तु मानव धर्म का निर्वाह के लिए हमीरसिंह नारियल का स्वीकार करता है। मन्त्री और द्विजराज के प्रस्थान के बाद हमीरसिंह मनःस्थिति में कह उठता है 'विश्राम कहाँ सरदारो ! हमीरसिंह अपने लक्ष्य को भूलेगा नहीं। मैं चित्तौड़ दुर्ग को भीतर से देखना चाहता हूँ कैसा है यह विशाल दुर्ग जिसने अलाउद्दीन-जैसे पराक्रमी और सशक्त शत्रु के छक्के छुड़ा दिए थे। आखिर एक दिन मुझे भी उस पर आक्रमण करना है।' यहाँ हमीरसिंह में एडलर प्रणीत अग्रधर्षी प्रेरणा शक्ति (The Aggressive Drive) परिलक्षित होती है। इस अंक के अन्तिम दृश्य में सुधीरा की पालकी के सामने सुहाग के गीत गाए जा रहे हैं। सुधीरा फूली नहीं समा रही है। कमला अपने बचपन के विवाह की स्मृति जगाकर हमीर से कह उठती है कि देश के कर्णधार नारी रूप के मोह में पड़कर समाज की मर्यादा तोड़ेंगे तो समाज में उनका मान घटेगा। तब हमीर कह उठता है 'समाज की मर्यादा ! दुधमुँही बच्चियों का विवाह कर देना और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित रखना इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो ? नहीं कमला यह घोर अत्याचार है। हमें समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करना है।' उक्त अवतरण में हमीरसिंह की प्रगतिवादी विचारधारा एवं उसके प्रबल अहम् (Strong Ego)

---

१ उद्धार, पृ० ६५
२ वही, पृ० ६७।
३ वही, पृ० ७१।
४ वही, पृ० ८५

का परिचय मिलता है । अन्ततोगत्वा दोनों एक दूसरे के गले में माला पहनाते हैं ।

तृतीय अंक

एक ग्रामीण कुटिया के सामने गम्भीरसिंह और सुजानसिंह के बीच वार्तालाप हो रहा है । इस सभाषण के सिलसिले में गम्भीरसिंह कहता है कि हमीर ने मालदेव की विधवा पुत्री से ब्याह करने के कारण जनता में असंतोष फैल चुका है । तब सुजानसिंह जनता के अंधविश्वासों के प्रति आनाकानी कर उससे कहता है 'नीच ऊँच की भावनाओं में पड़कर आप लोग स्वयं अपना सर्वनाश कर रहे हैं । भाई गम्भीरसिंह जी संसार में भारत जैसा महान, धनधान्यपूर्ण कला कौशल निपुण दूसरा देश कौन सा है ? फिर भी शताब्दियों से इस देश पर विदेशियों के आक्रमण करने का साहस हो रहा है, इतने बड़े राष्ट्र को अनेक बार पराजय और स्वाधीनता का अभिशाप सहना पड़ा है सो सब किस पाप से ? इसलिए कि हम भाई को भाई नहीं समझते । हम जातियों में विभाजित हैं—एक दूसरे से घृणा करते हैं । शत्रु संख्या में कम होकर भी हम पर विजय पाता है क्योंकि हम बहुसंख्या में होकर भी एक रस नहीं एक अनुशासन में नहीं ।'[1] यहाँ सुजानसिंह में निर्देश तथा निर्देश ग्रहणशीलता (Suggestion and Suggestibility) की प्रक्रिया का परिष्कार हुआ है । दूसरी ओर राज वाटिका में कमला और हमीर के बीच वार्तालाप चल रहा है । हमीर कमला से कहता है कि तुमने मेरे जीवन में आकर मेरे सोये हुए अनुराग को जाग्रत कर दिया है । मेरा तुम्हारे प्रति अनुरक्ति क्या तुम्हें अच्छी नहीं लगती ? तब कमला कह उठती है 'जन्म जन्मान्तर तक मैं आपसे नहीं ऊब सकती—किन्तु मैं विवेक हीन अन्धा प्रेम नहीं चाहती । मुझे पाकर आप दुगना प्रमत्त जन्मभूमि को भूल गए हैं—मैं शीघ्र ही आपको कर्त्तव्य पथ पर वापस भेजना चाहती हूँ ।'[2] यहाँ कमला में सकारात्मक निर्देश (Positive Suggestion) का भाव दृष्टिगोचर होता है । इसके बाद हमीर सजग हो जाता है । कमला भी शत्रु पर भीतर और बाहर दोनों ओर से आक्रमण करने का उपाय सोचती है । तत्पश्चात भूपति मालदेव के मन में विष का बीज बोने की कोशिश करता है । पर कमला उचित अवसर पर उसकी पोल खोल देती है । वह भूपति को धिक्कार कर

१ उद्धार, पृ० ९० ।
२ वही, पृ० ९३ ।

कहता है कि तुम्हारे लोगों ने मेरे पिता को भी राक्षस बना रखा है। मैं तुम्हें तुम्हारे उन पालकियों के चंगुल से छुड़ाने आई हूँ। एक अन्य दृश्य में सुधीरा और दुर्गा नवयुवकों में नये प्राण फूँकने का कार्य करती हुई दिखाई देती हैं। हमीर जन्मभूमि के लिए प्राणों की बाजी लगाना चाहता है। इतने में ही सुजानसिंह वहाँ आ जाता है और संग्राम टल जाने की वार्ता देता है। सुजानसिंह को विगत गलतियों के लिए पछतावा होता है। उसी क्षण सभी ओर जय के नारे सुनाई देते हैं। हमीर सुजान से कह उठता है, "भैया मेवाड़ तुम्हारे उपकार को कभी न भूलेगा। तुमने दिल्ली की सेना को मार्ग में ही न रोक लिया होता तो हमें यह शुभ दिन देखने को नहीं मिलता। आज मेरा सुख-स्वप्न सत्य हो गया है।"[1] उक्त अवतरण से हमीर की सक्रिय सहानुभूति (Active Sympathy) पर प्रकाश पड़ता है। तदनन्तर दलपति मालदेव को बन्दी बनाए हुए प्रवेश करता है। कमला अपने पिता के पैरों में गिर जाती है। तब मालदेव कह उठता है कि उठो, मुझ पापी के पैरों में पड़ कर अपने आपको अपवित्र न करो। इतने में हमीर मालदेव को बन्धन मुक्त करता है। अन्ततोगत्वा हमीर कह उठता है "आपको वंशाभिमान के अतिरेक ने पथभ्रष्ट कर दिया था किन्तु हमें जानना चाहिए देश तो जाति, वंश और सभी सांसारिक वस्तुओं से ऊँचा है। उसकी मान रक्षा के लिए हमें सर्वस्व बलिदान करना चाहिए।"[2] इस उद्धरण से नेता की उच्च इच्छा शक्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

उद्धार का नायक हमीर एक सबल नेता है जिसके नेतृत्व के पहलू विशिष्ट परिस्थिति के कारण पनप उठे हैं। वह प्रगतिशील विचार धारा का नेता होने से जनमत को भी अपने साथ ले जाता है। उसमें उसकी माँ सुधीरा का मिला हुआ सहयोग व्यवहारवाद की दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण है। कमला देश के हित को पहला हित मानती बाद में सगे सम्बन्धियों का। मालदेव एक स्वार्थी महाराव है, जो समय के अनुसार अपना रुख बदलता रहता है। सुजानसिंह का इड और अहम् (Ego) के बीच चलने वाला संघर्ष अहम् में स्थिर हो जाता है। उसने हमीर की जो की हुई मदद श्रेष्ठ देशभक्ति की परिचायक है। मुंजबलोचा, भूपति, गम्भीरसिंह आदि पात्र स्वार्थ से अन्धे होकर देशद्रोह कर बैठते हैं।

---

१ उद्धार पृ० ११९।
२ वही, पृ० १२०।

इस नाटक के सवाद सरल, स्वाभाविक एव पात्रानुकूल हैं। भाव, भाषा तथा अभिनय की दृष्टि से वे अतीव महत्वपूर्ण बन पडे हैं। उदाहरणतया--

सुजान--तो तुम मेरे चाणक्य बनना चाहते हो ?

भूपति--हाँ यदि आप चन्द्रगुप्त बनने को उत्सुक हो ?

सुजान--यदि मेवाड के उद्धार का कोई मार्ग निकलता हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।

भूपति--इसके लिए आपको महाराणा जी से विद्रोह करना पडेगा।

सुजान--एसी नीचता मैं नही करूँगा।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनो मे इड और अहम (Ego) के सघर्ष की यथार्थ अवतारणा हुई है।

इस नाटक में हरिकृष्ण प्रेमी की भाषा अत्यन्त प्रौढ, चुस्त एव प्रभावोत्पादक बन पडी है। भावावेश का चित्रण करते समय वह काव्यत्व से ओत प्रोत हो गई है। जसे--

(१) आपने अन्धकार के समुद्र म मेरी अभिलाषाओं को विसर्जित कर दिया है, चिरतन ज्वाला म झुलसने के लिए मुझे जीवित रख छोडा है।

(२) उसकी चतुर, धयवान वीर और दूरदर्शी जननी ने सिसोदिया कुल दिवाकर को राहुओ की दृष्टि से बचाने के लिए उसे छद्म परिचय के बादलो म छिपाकर रखा था।

(३) बाल रवि की तरुण अरुण किरणो के स्पर्श से हमारे हृदय सुमन मुकुलित हो उठे हैं किन्तु मैं समझती हूँ कि यह आनन्दावेग उचित नही है।

(४) सजल उत्साही क्रांति प्रिय युवको के सूय के समान चमकने वाले चेहरे देखकर आपका हृदय खिल उठेगा।[2]

इस नाटयकृति म प्रयुक्त व्यग्य बडे ही चुटीले एव मार्मिक बन पडे हैं। उदाहरणतया--

(१) ओ हो ! खून के प्यासे सिंह को अचानक वैराग्य का मन्त्र किस ऋषि ने पढा दिया है ?

(२) धन्य है आपकी सराहना शक्ति ! निर्जीव, हृदय हीन पत्थर ही समझा आपने मुझे !

---

१ उद्धार प० ५२।

२ वही, प० क्रमश १६, ४६, ७७, ९०।

(३) नहीं मैं बहुत बुरा हूँ-ज्वालामुखी हूँ-हमीर पर फट पड़ना चाहता हूँ।[1]

निम्नलिखित मुहावरों कहावतों से भाषा अत्यन्त रोचक और स्वाभाविक बन गई है।

हाथ पर हाथ रखकर बैठना मौत के घाट उतारना लोहा लेना, मौत के मुँह में खेलना हवा में उड़ा देना हृदय में घर कर लेना, जिसकी लाठी उसकी भैंस, जब तक स्वासा तब तक आशा प्राणों की बाजी लगाना उल्लू सीधा करना, पी फटना उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।[2]

प्रस्तुत नाटक की सूक्तियों में दार्शनिकता एवं कवित्व का सुन्दर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। जैसे--

(१) बलवान हृदय उपेक्षा त्याग और सन्देह के बाणों से पराजित नहीं होते।

(२) संयम की नीरसता जीवन शक्ति का ह्रास करता है।

(३) आत्मा की एक आँख अगर बन्द न होती तो संसार स्वर्ग बन जाता।

(४) प्रभुता का मोह विवेक की हत्या कर देता है।

(५) प्रभुता और वैभव पाकर मानव को अभिमान हो ही जाता है।

(६) यदि प्रत्येक पराजय नवीन संघर्ष के निश्चय को दृढ़ करता पराजय भी विजय है।

(७) संघर्ष प्रतिस्पर्धा प्रभुता प्राप्ति की इच्छा ही तो जीवन के चिह्न हैं।

(८) बनिया बुद्धि तो हिसाबी होती है।

(९) अधिक शंकाशील रहना वीरता का गुण नहीं है।

(१०) मनुष्य को लताओं की भाँति किसी के सहारे खड़ा नहीं होना चाहिए।

(११) कभी कभी अनुभव हीन जवानी जान बूझकर विपत्ति को आमंत्रित करती है।

(१२) मनुष्य को किसी भी परिणाम के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

---

१ उद्धार पृ० क्रमशः ११ २१ ८०।

२ वही पृ० क्रमशः २७ २९, ३७, ३९, ४५, ४८, ५३, ६१, ८७ ८९ ९१, ९२।

(१३) आत्मा की आवाज के अनुसार काय करो।

(१४) प्रेमावन अधा होता है।

(१५) नारी शायद स्वय नही समझती कि मॉं होना ही नारी जीवन की पूणता है।

(१६) परिवतन जीवन का चिह्न है।

(१७) गति हीन जीवन रुका हुआ सडा हुआ पानी है।

(१८) परिश्रम, पुरुषाथ और कमण्यता का परिणाम है वभव, समद्धि गौरव और सत्ता की उपलब्धि।

(१९) अच्छी तरह पूरा सोच विचार करने के पश्चात उठाया हुआ पग प्राय सुपरिणामकारी होता है।

(२०) प्रयत्न करना मानव के वश म है और फल प्रारब्ध के।[1]

(२१) उस सफलता का धिक्कार है जो बुराई के आधार पर प्राप्त की गइ हो।

(२२) देश भक्ति पति प्रेम से भी ऊँचा धम है।

(२३) व्यक्ति पूजा, किसी एक मानव पर प्रबल श्रद्धा, मानव के पुरुषाथ को शिथिल करती है।

(२४) श्रद्धा से स्फूर्ति मिलती है, निष्क्रियता नही।

(२५) मानव म देवता का निवास है।

(२६) मानव पत्थर को देवता बना सकता है तो क्या राक्षस को मानव नही बना सकता ?

(२७) जन्मभूमि के उपकार तो हमारे ऊपर जीवन के उपकारा की अपेक्षा भी अधिक हैं।[2]

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस नाटक पर जनमत का यथेष्ट प्रभाव है।

निष्कर्ष

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके नाटकों पर राष्ट्रीय एकात्मकता एव प्रगतिवादी विचारों का यथेष्ट प्रभाव है। प्रेमी के असामान्य या अबनामल के अन्तगत आते ह। वे सामान्यतया अग्रधर्मी

---

१ उद्धार, पृ० क्रमश १२, २०, २४, २५ ३७, ४१, ५१, ५३, ६९ ७३ ७३, ७४, ७८, ७८, ८१, ८६, ८६, ८७, ९४, ९४।

२ वही, पृ० क्रमश ९७, १०७, १०८, १०८, १०८, १०९, १११।

प्रेरणा शक्ति एवं प्रति स्पर्धात्मक इच्छा से अनुप्रेरित हैं। उनके नारी पात्रों में आत्मगौरव की भावना ठूँस ठूँस कर भरी हुई है। उनके सामाजिक नाटकों में समाज का वास्तव चित्र अंकित हुआ है। उनमें प्रेम मनोविज्ञान एवं समाज मनोविज्ञान की धारा प्रवाहमान रही है। उनके नाटकों के कथोपकथन ओजस्वी, प्रवाहमय संक्षिप्त गतिशील एवं अवसर के अनुकूल सर्वत्र परिवर्तित होते हैं। प्रेमी की भाषा सरल मधुर, भावानुकूल प्रभावपूर्ण एवं काव्यात्मकता से ओत प्रोत है। मुहावरों कहावतों में भाषा का सौन्दर्य अधिक खिल उठा है। सूक्तियों द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति बड़ी स्पष्टता से हो गई है।

७ | वृन्दावनलाल वर्मा के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

राखी की लाज

राखी की लाज' सांस्कृतिक त्यौहार रक्षाबन्धन से सम्बन्धित नाटक है।[1]

प्रथम अंक

बासी नामक गाँव मे मेघराज नामक एक सँपेरा रहता है, जो डाकुओ के दल म फँस जाता है। अधिक धन प्राप्त करने की इच्छा से वह डाकुओ की हर तरह की सहायता करता है। वह बासी गाव के धनिकों और बन्दूक आदि हथियारियो का पता लगाकर डाकुओ को जानकारी देता है। मेघराज के इस बर्ताव म प्रक्षेपण भाव दिखाई देता है। क्योंकि आत्मरक्षार्थ अचेतन मन की वह इस रूप म पूर्ति करता है। सँपेरे की मदद से डाकुओ का सरदार निश्चय करता है कि कजरियो वाले दिन वह स्वय सपेरे के वेश मे स्थान देख आयेगा। उसी समय कजारियो के मेले मे मेघराज सदे वेश म आता है और बालाराम की लडकी चम्पा उसे राखी बाध देती है। मेघराज मस्तक नवाकर उसके प्रति हाथ जोडकर कहता है, आज से बेटी तुम मेरी धर्म की बहिन हुई।[2] उसी दिन रात को डाका पडता है। डाकुओ के साथ मेघराज भी आता है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि वह चम्पा उसकी धर्म बहन का घर हो है तो वह डाकुओ के विरुद्ध होकर सरदार से कहता है, 'कुछ नहीं! चलिए यहा से। आप गलत घर मे आये हैं। चलिये शीघ्र छोडिये इस जगह को।' तब सरदार उसे कपटी, अधर्मी, लडकी की आखो म डूबने वाला कायर कहकर ऐसे बेईमान का बाघ लेने की आज्ञा करता है। मेघराज किसी भी हालत म अपना प्रण नहीं त्यागता है। उसम श्रेष्ठता ग्रन्थि दिखाई देती

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा राखी की लाज, दसवाँ संस्करण, १९५५ पृ० ३५

२ वही, पृ० ११

। उसके लिए वह मर मिटने की मानसिक तयारी कृति से प्रकट करता है। डाकू उसे पेड़ में बाँधकर मारते हैं और गाँव के लोगों का पीछा करने पर मरा हुआ है ऐसा मानकर छोड़ जाते हैं। गाँव के लोग उसे लाते हैं और चम्पा के घर रखते हैं। चम्पा मघराज की सब तरह की देखभाल करती है।

द्वितीय अंक

थानेदार तलाशी के लिए आता है। पूछताछ होती है। थानेदार द्वारा मघराज और चम्पा के अनुचित सम्बन्ध की बात कही जाती है। वह निर्भीक वाणी में थानेदार से कहती है "मैं सामने आती हूँ। चलिए जहाँ ले चलना हो कोई भी धमकी मुझको मनचाहा कहलाने के लिए विवश नहीं कर सकती। मैं तैयार हूँ। आप मेरे भाई को नहीं ले जा सकेंगे। लीजिए मेरा बयान जहाँ लेना हो।"[1] यहाँ चम्पा के अहम् (इगो) पर प्रकाश पड़ता है। इसके बाद थानेदार चला जाता है। एकान्त में चम्पा और सोमेश्वर की मुलाकात होती है। वह मन से सोमेश्वर से प्रेम करने लगी है, फिर भी उसके मन का संयम सराहनीय है। इस अंक के अंत में वह सोमेश्वर से कहती है "अभी नहीं मिलना है और न कुछ करना है। समय पर ही सब कुछ होगा।"[2]

तृतीय अंक

सोमेश्वर और करीमन का भाई चाँद खाँ दोनों हैजे में जी जान से गाँव की सेवा करते हैं। गाँव की उन्नति के संदर्भ में सोमेश्वर बालाराम से कहता है "दादा हम लोगों ने अपने सेवादल को खूब संगठित किया है। सरकार से बन्दूकें भी मिलेंगी। हम लोग कवायत परेड सीखेंगे। सब लोगों के खास तौर पर युवकों के जीवन में नियम तरतीब अनुशासन आयगा और फिर हम लोग आसानी से डाकुओं और बीमारियों का सामना कर सकेंगे और गाँव की उन्नति के लिए किसी भी काम को दृढ़ता पूर्वक बढ़ा सकेंगे।"[3] यहाँ सोमेश्वर की कल्पना क्रिया में उसके अचेतन मन का विशिष्ट कार्य पद्धति का विशेष रूप दिखाई देता है। चम्पा भी करीमन के साथ मिलकर स्त्री सेवादल बनाती है। उसमें अन्य लड़कियाँ भी शामिल हो जाती हैं और हैजे से पीड़ित स्त्रियों की सेवा करती हैं। सोमेश्वर गरीब है इसलिए बालाराम अपनी लड़की चम्पा की सगाई दूसरे गाँव में कर देता है। चाँद खाँ, करीमन और मेघराज के द्वारा प्रभात फेरी का आयोजन होता है। बालाराम के मन में परिवर्तन होता है

१ राखी की लाज, पृ० ६७
२ वही, पृ० ७६
३ वही, पृ० ७९, ८०

और दूसरे गाव मे किये चम्पा के सम्ब ध तोड डालता ह । वह सोमेश्वर को ही अपना लडका समझता है । सोमेश्वर और चम्पा की धूमधाम के साथ शादी होती है । मेघराज विवाह मे थाले मे अपन ग्यारह रुपये रखकर सोमेश्वर को टीका करता है और बालाराम की ओर हाथ जोडकर कहता है 'चम्पा के भाई की यह थोडे दिन की कमाइ है दादा । परन्तु राखी के ब धन स उऋण वह कभी नही हो सकेगा ।'[1] मेघराज के इस बर्ताव मे नतिकाह (सुपर इगो) परिलक्षित होता है ।

राखी की लाज मे मघराज का चरित्र बहुत ऊँचा है । 'राखी की लाज के लिए वह अपनी जान भी खतरे म डाल देता है । वह गाँव की सेवा म तन मन धन स एक रूप हो जाता है । अपनी धम बहन चम्पा की शादी के लिए वह विशेष कष्ट उठाता है । चम्पा एक आदश नारी है । उसका निमल चरित्र उसके सम्पन्न व्यक्तित्व का अविभाज्य पहलू है । बालाराम पुरानी परिपाटी के अनुसार चलने वाला है, परन्तु काल की महिमा जानकर उसन नय विचार भी आत्मसात किये हैं । अपनी सुपुत्री चम्पा की दूर गाव की सगाई ताडन म वह अन य साधारण ढाढस दिखाता है । मनोविज्ञान की दृष्टि स इस नाटक के सभी पात्रो का चरित्र चित्रण सहज सुलभ हो पाया है ।

इस नाटक मे गतिप्रेरक एव चुस्त सवादो की प्रचुरता है । इसी कारण पात्रो का चरित्रोदघाटन बड ही सजीव तथा यथाथ ढग से हो जाता है । उदाहरणतया–

मेघराज–मार दो, मार दो । जितनी खुशी मुझको मरने म हो रही है उतनी तुमको मेरे मरन म नहीं मिलेगी ।

सरदार–बईमान, उस लडकी के प्रेम ने तुमको भ्रष्ट किया और हम सबका सत्यानाश ।

मेघराज–खबरदार सनीचर, जो इस प्रकार की बात बकी । म भले माँ बाप का लडका हूँ । मेरी मौज न मुझको सपरा और आवारा बनाया परन्त वह मौज बहिन को पहिचानन और बचान स नही रोक सकी ।

सरदार–बहिन ! वह छोकरी तेरी बहिन ।

मेघराज–हाँ राखी की दी हुई बहिन ।[2]

इन सवादो मे स्पष्ट है कि मघराज म अचेतन मन की कायपद्धति उभर पडी है ।

---

१ राखी की लाज, पृ० ९४
२ वही, पृ० क्रमश ३७

नाटककार ने भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों का वातावरण सुरक्षित रखने की भावना से यथार्थ शब्दों का प्रयोग किया है। चुने हुए विशिष्ट शब्दों में पात्रों की अन्तर्प्रवृत्तियाँ और उनके मनोभाव प्रकट हुए हैं। पोल खुलकर रहना, गाँठ में पक्का होना, घमण्ड हो जाना, रफू चक्कर कर देना[1] आदि मुहावरों के कारण भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि अचेतन मस्तिष्क का एक सजग आविष्कार इस नाटक में दिखाई देता है।

फूलों की बोली

वृन्दावनलाल वर्मा के इस नाटक में स्वर्ण रसायन द्वारा स्वर्ण प्राप्त करने वालों की मूर्खता पर तीखा व्यंग्य है। लेखक को इस नाटक की प्रेरणा अलबरूनी की पुस्तक 'किताबुल हिन्द' (भारत-यात्रा) में मिली। कुछ आलोचक एवं स्वयं नाटककार ने इसे ऐतिहासिक नाटक कहा है पर वास्तव में यह सामाजिक नाटक है। इसमें तनिक भी ऐतिहासिकता नहीं केवल इसका आधार ऐतिहासिक घटना मात्र है। सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं। इस नाटक को तो ऐतिहासिक न होकर सामाजिक ही समझना चाहिए-पूर्णतः वर्तमान युग का।[2] आज भी समाज में ऐसे पात्र दिखाई देते हैं। इस नाटक में लेखक ने कई मनोवैज्ञानिक उपपत्तियों का यथार्थता के साथ प्रयोग किया है।

प्रथम अंक

उज्जैन नगरी में दो व्यापारी हैं-एक का नाम है माधव और दूसरे का पुलिन। माधव संगीतकला कुशल कामिनी नामक कलाकार पर मुग्ध है और पुलिन नृत्य कला विशारदा माया पर। उनका सौन्दर्य वित्रण करते हुए नाटककार ने कहा है कि कामिनी सूर्य की तरह ओजभरी और माया चन्द्रमा की तरह शीतल है। माधव तथा पुलिन दोनों ने अपार धनराशि इन कलाकारों के चरणों पर अर्पण की है। माधव अधिक धन प्राप्त करने की इच्छा में स्वर्ण रसायन के प्रयोग में व्यग्र है और इसमें उसने पर्याप्त सम्पत्ति भी खोई है। मनोविज्ञान की दृष्टि से माधव की गिनती कम प्रतयात्मक वर्ग में की जानी चाहिए। क्योंकि कामिनी के साथ मदक महत्वपूर्ण रंजन की इच्छा में वह स्वर्ण रसायन की ओर आकृष्ट होता है। सिद्ध नामक ठग माधव से व्याधि नाम से

१ राखी की लाज पृ० १८ २५ ४१, ६७
२ जयनाथ नलिन हिन्दी नाटककार पृ० २२३

पुकारकर अपना पूव परिचय दिलाता है। 'मरी स्वण रसायन को कामिनी की कला-माया के नाग और कामिनी के गान से स्फूर्ति मिलती है।''[1] इस सिद्ध के वक्तव्य मे प्रायड प्रणीत लिबिडो प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कामिनी को एकान्त म वह स्वण रसायन विधि बतान का वचन देता है। उसके सम्भाषण म सचमुच एक जादू है जिससे सभी उस पर मोहित होत हैं। वदी की सुरग से वह अपने शिष्य बलभद्र को पहल स्त्रीवेश म फिर स्वण रसायन विद्या के आचाय ऋषि नागाजुन के वश म दिखाकर माधव एव पुलिन को चमत्कृत कर दता है। बलभद्र एक किशोरावस्था का बालक है जो सहजना के साथ सिद्ध जस दभी साधु के चगुल म फँस जाता है। सिद्ध उसकी सहायता स कामिनी तथा माया के पास का सोना इकठ्ठा करन का सकल्प करता है, जिसे सजल्प सिद्धि भी प्राप्त होती है। कामिनी एव माया से स्वण रसायन की जान कारी दत हुए सिद्ध अबोध भाव से कहता है 'पहले फूलो की बोली का एक अध्याय पूरा हो जाय तब दूसरा आरम्भ करूँगा। माया मरा दूसरा नाम सम्हर का फूल है। ताड समान ऊचा होता है। सम्हर और फूल उसके बिल कुल लाल होन हैं-जस ऋषि नागाजुन का रक्तामल। मुझको यदि असली रक्ता-मल की बात बतलानी होगी तो मैं सॅम्हर की आड लूँगा। कहूँगा मल्लिका मञ्जरी को हरसिंगार सॅम्हर की भेंट करगा।'[2] इस तरह एकान्त म कामिनी और माया के साथ वह फूलो की बोली बोलता है जिसम आडम्बर के सिवा और कुछ भी नही हैं। हाँ, उसकी इस प्रवृत्ति म कामात्मक दिवास्वप्न जरूर दिखाई देता है। तामाल का पूण मल्लिका की आच मयकुन्द का सयोग फिर चोख सोना-इस निरे वाग्डम्बर म कामिनी तथा माया दोनो फँस जाती है और दर म अपना सब गहना लेकर आ जाती हैं। सिद्ध की सीख क अनुसार बलभद्र झूठा नाटक रचाता है। पहल स्त्री वश और बाद म ऋषि नागाजुन के वश म आकर मटक म भरे हुए गहना को लेकर चम्पत होता है और उसक पीछे स सिद्ध भी। इस अक क अन्त म माधव पुलिन तथा माया क सभाषण स सिद्ध के चरित्र पर उसकी कामुकता पर प्रकाश पडता है।

पुलिन-सिद्धराज का किया हुआ कुकम नही होगा यह। उनका सा वश बना कर कोई और आया होगा।

माया-वही था वही था। सब कुछ तो बतला दिया मैंन। वह काम और

1 वृन्दावनलाल वर्मा फूलो की बोली, ततीय सस्करण [illegible]

2 फूलों की बोली प० ३६-३७

रस की भी बातें करता था।

माधव–दुष्ट था और लम्पट भी।[1]

द्वितीय अक

सिद्ध और बलभद्र उज्जन के बाहर एक झाडो म आते हैं। सिद्ध न चेहर पर चेचक के दाग बना लिये हैं। और काली दाढी है। बलभद्र ऋषि नागा जु न के वेश म हैं। दोना म अदभुत नाटक की तारीफ चल रही है।

सिद्ध–तुम कितन आज्ञाकारी हो ! और कितने सु दर ! यदि तुम स्त्री होते तो शायद म स यास छोडकर तुम्हारे साथ विवाह कर लेता !!! तुम परम सु दर हो और अत्य त बुद्धिमान। तुम बकुल हो, बला के फल हो।

बलभद्र–आप विवाह कर लेते !

सिद्ध–मैं तुमको वैस भी बहुत चाहता हूँ, इतना कि जितना ससार मर म किसी भी स्त्री पुरुष को नही चाहता।[2]

सिद्ध की यह वत्ति स्वलिंगी कामभावना की प्रतीक है। सिद्ध की काम वासना का विकास उसके ऋषित्व के आडम्बर मे रुक जाता है और वह पर लिंगी की अपेक्षा बलभद्र जसे स्वलिंगी को ही प्रेम करता है।

उपयु क्त वार्तालाप के बाद सिद्ध सारा गहना अपन पास रखना चाहता है, पर बलभद्र हिस्सा बाँट करना चाहता है। इसी कारण दोना म झगडा हो जाता है। मैंन एक सुन्दर साँप को पाला ! साँप की जो गति होनी है वही तेरी होनी चाहिए–ऐसा कहकर सिद्ध उछलकर बलभद्र पर वार करता है। वह घायल होकर जगल म गिर पडता है। पुलिन तथा नगर निवासी सिद्ध की खोज मे जाते हैं और रास्त म उनको घायल बलभद्र दिखाई दता है। व उसे माया के घर ले आते हैं। माया और कामिनी दोना बलभद्र के उपचार म लग जाती है। उनींदी अवस्था म बलभद्र कहता है, रक्तामल। रक्तामल गुरु महाराज। इधर बलभद्र के अचेतन मन म दमित इच्छाओ की अभिव्यक्ति प्रतीक द्वारा प्रगट हो चुकी है। कुछ देर बाद सिद्ध का रिक्त हस्त पकडा जाता है। पकडे जाने के पहले उसन गहनो की पोटली को एक गढे म फेंक दिया था। माधव पुलि एव अधिकारी सिद्ध को स्त्रियो के गहने चुरान का उस पर इल्जाम लगाकर न्यायाधीश के सामन उपस्थित कराना चाहत ह। दूसरी ओर माया की ममता और सवा के कारण बलभद्र तन्दुरस्त हो जाता

१ फूलो की बोली, पृ० ५७

२ वही, पृ० ५३

३ वही, पृ० ६६

है । इसी बीच दोनो मे प्रेम की भावना उमड पडती है । माया बलभद्र के प्रेम मे फँस चुकी है इसका सबूत निम्नलिखित वार्तालाप है ।

बलभद्र– मैंने आपको एक दिन अपना गाना सुनाने के लिए कहा था, सुनाऊँ?
माया– अवश्य ! परन्तु मुझसे अब 'आप आप' न कहा करो, मुझको अच्छा नही लगता 'तुम कहा करो, 'तुम' । समझे न ?[१]

माधव से जानकारी मिलती है कि जहाँ सिद्ध को पकडा गया था, उसमे एक निकट के गडढे मे पडा गहना बहुत ढूँढ खोज के बाद मिला । बलभद्र भी अपना असली रूप सभी के सामने प्रस्तुत करता है । वह माया और कामिनी के सम्मुख कहता है, मेरे ऊपर दया करो देवियो । मैं अनाथ हूँ । ससार मे मेरा कोई नही है । उस दुष्ट सिद्ध की काली छाया के नीचे मैं भी कालिख मे पुत गया, परन्तु मैं उसको पोछ डालूँगा । धो डालूँगा ।[२] बलभद्र की इस वृत्ति मे तादात्म्यीकरण के गुण दिखायी देते हैं । क्योकि उसने साहसी काय करने की अपनी इच्छा का माया नामक कलाकार के साथ एकीकरण कर पूरा कर दिया है ।

तृतीय अक

उज्जन के यायालय मे सिद्ध को दोषी सिद्ध किया जाता है । इसमे बलभद्र, कामिनी माया एव एक पचकी गवाह का महत्त्वपूण योगदान होता है । कठोर मयम के साथ सिद्ध बलभद्र से कहता है, ओफ ! इसने कितना छल किया !! कितना कपट किया !!! गुरुघाती !!!!![३] इससे सिद्ध की आत्म प्रमवादी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । आखिर कामिनी ने यायाधीश के सम्मुख अपराधी को (सिद्ध) हृदय से क्षमा कर दिया और माया एव बलभद्र ने भी । पर पचो के मतानुसार उसे गधे पर बिठाकर देश से निष्कासित करने का निणय दिया जाता है । आखिर यायाधीश सिद्ध से कहता है–'तुम स्वण रसायन जानते हो सिद्ध ?'

तब सिद्ध ने कहा– "हाँ–नही यायाधीश, मैं नही जानता हूँ । जो कुछ इधर उधर सुना उतना ही मुझे मालूम है । पर यह निर्विवाद है कि स्वण रसायन है । विद्या सच्ची है । मैं झूठा हूँ ।[४] मनोविश्लेषण की दृष्टि से सिद्ध आत्मसम्मोही अपराधी स्वभाव का है जिससे स्वार्थी तथा व्यक्तिगत लाभ के

१ फूलो की बोली, पृ० ७३ ।
२ वही, पृ० ८२ ।
३ वही, पृ० ८८
४ वही, पृ० ९१ ।

लिए मित्रगण आदि के लाभ-हानि की चिन्ता न कर अपराध किया है। नाटक के अन्त में माया और बलभद्र की शादी हो जाती है। माधव सिद्ध की शरण में शरण लेना चाहता है पर कामिनी उसे बचाती है। आखिर माधव ने कहा है स्वर्ण रसायन नितान्त मृग मरीचिका है और कुछ ठगों का केवल जाल। कामिनी भी कहती है रक्त का सार पसीना। बिना पसीना बहाये हुए सोना नहीं बनता और न मिलता ही है।'[1] यों फूलों की बोली में नाटककार का मन्तव्य यथार्थ रूप से साकार हुआ है। मनोग्रस्तता का एक यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में नाटककार को महान सफलता मिली है।

इस नाटक का प्रमुख पात्र माधव है। वह कलाकारों पर मुग्ध होकर सर्वस्व दे देता है और ज्यादा धन कमाने की इच्छा से स्वर्ण रसायन के प्रयोग में जुट जाता है। वह अन्तर्मुखी पात्र है। अन्त में उसके स्वभाव में आमूलाग्र परिवर्तन हो जाता है जिसमें उसने समस्याओं का हल करके अपनी आत्म स्थापन की मूल प्रवृत्ति को स्थापित किया है। स्वर्ण रसायन के झूठे प्रयोगों के बल पर लोगों को फँसाने वाला सिद्ध बहुपुरुषीय व्यक्तित्व का नमूना है जो उसकी धुन में अपने अतीत जीवन नाम परिवार मित्र तथा रिश्तेदारों को भूल जाता है और अपने को एक नये नाम वाला नये पेशेवाला और बिल्कुल दूसरा व्यक्ति समझता है। उसने अपना उल्लू सीधा करने के लिए बलभद्र जैसे किशोर का दुरुपयोग किया है। माया और कामिनी सुन्दर श्रेष्ठ नर्तकी हैं और छिछली भी। स्वर्ण रसायन से ज्यादा सोना प्राप्त करने की अभिलाषा में वे दोनों स्वात्मप्रेरणावश मनोविकृति का शिकार बनती हैं। पुलिन स्वार्थी एवं डाह रखने वाला व्यक्ति है। वह बलभद्र द्वारा अचेतनावस्था में माया का नाम लेते ही भड़क उठता है। उसका व्यक्तित्व आचरणवादी मनोविज्ञान का परिचायक है। नाटककार ने सभी पात्रों का चरित्र चित्रण यथार्थता के साथ किया है।

इस नाटक के कथोपकथन से प्रत्येक पात्र की मनोवैज्ञानिक जानकारी मिलती है। स्वर्ण रसायन के पुजारी सिद्ध निरर्थक प्रयोग करके चमत्कार की सृष्टि उत्पन्न करता है। उसकी बोली अत्यन्त कौतूहलपूर्ण है। सर्वत्र उसकी सांकेतिक बोली होती है। इसकी यथार्थ प्रतीति निम्नलिखित कथोपकथनों में दिखाई देती है।

कामिनी– आपने कौन सी भाषा रखी है ?

सिद्ध– फूलों की बोली।

---

१ फूलों की बोली, पृ० १००।

माया– फूलों की बोली ।

कामिनी– फूलों की बोली !! फूलों की बोली कसी ?

सिद्ध– कल रात मैंने कुछ फूलों के नाम लिये थे न ?

कामिनी– लिये थे । और मैं समझ गयी थी कि इनका कोई गूढ़ कोई बहुत छिपा हुआ अर्थ होगा ।

सिद्ध– इसमें कोई सन्देह नहीं । नहीं तो भला पाटल तमाल, अलसी इत्यादि के फूल पत्तों से क्या होना है ?

माया– तो उन फूलों के नाम केवल संकेत थे ?

सिद्ध– जब मुझको आवश्यकता पड़े तो माया को माया न कहूँगा । किसी फूल का नाम रखूँगा । क्या नाम रखूँ माया तुम्हारा ?

माया– (हँसकर) चाहे जौन सा ।

सिद्ध– हाँ, मञ्जरी– नहीं मल्लिका मञ्जरी । और कामिनी का, (कामिनी पर आँख गढ़ाकर) कामिनी तो वैसे ही एक फूल का नाम है । परन्तु अपने मतलब के लिये कामिनी का नाम कुमुदनी रख दूँगा ।"[1]

दो कलाकारों के एकान्त के उस वार्तालाप में सिद्ध ने वात्स्यायन कामसूत्र के अनुसार अभ्यास की और अभिमान की प्रीति का प्रयोग कर लिया है । फूलों की बोली से वह नारियों को स्वर्ण रसायन विद्या के आमोष में वश करना चाहता है । कामिनी और माया दोनों सोना इकट्ठा करने की इच्छा रखती हैं जिनमें स्पष्ट रूप से इड की प्रवृत्ति दृष्टि गोचर हुयी है । इस नाटक के कथोपकथन में मनोविज्ञान का विशेष रूप से मनोविकृति पीड़ित व्यक्तियों के चरित्र पर विशेष प्रकाश पड़ता है ।

पात्रों के स्वभावानुसार वृन्दावनलाल वर्मा ने यत्रतत्र भावात्मक विश्लेषणात्मक एवं अलंकारिक शैली का प्रयोग किया जो पात्रों के मनोभावों को स्पष्ट करने में सफल हो चुकी है । दाँतों तले अँगुली दबाना, सेंतमेंत ही सब जान लेना, कलेजा धसा जाना नाक नगी गले हमेल[2] आदि मुहावरों कहावतों का मनोवैज्ञानिक ढंग से यथायोग्य प्रयोग हुआ है । घर गृहस्थी आड़ पर्दे निरख परख ढूँढ खोज[3] आदि संयुक्त शब्द प्रयोग सहजता के साथ प्रयुक्त करने में नाटककार को महान सफलता मिली है । इन शब्दों के कारण पात्रों के मनोविश्लेषण पर प्रकाश पड़ता है ।

---

१ फूलों की बोली, पृ० ३५ ३६ ।

२ वही पृ० क्रमश १०, २९, ४३ ५५ ।

३ वही, पृ० क्रमश ३०, ३०, ३१, ७१ ।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि इस नाटक पर फ्रायड एवं वात्स्यायन की विचारधारा का गहरा प्रभाव है।

बाँस की फाँस

वृन्दावनलाल वर्मा ने इस दो अंकी नाटक में बाल्यजीवन का मनोरूप रखा है, जिनमें मनोविज्ञान के कई तथ्य दिखाई देते हैं।

प्रथम अंक

फूलचन्द गोकुल, मन्दाकिनी और भोंदाराम नामक फौजी अफसर रेल यात्रा में एक ही डिब्बे में बैठे हैं। इतने में एक बुढ़िया और उसकी बेटी पुनीता जो दोनों भिखारिनियाँ हैं भीड़ के निकट ही जाती हैं। इतने पैसे मिल गये तुम्हारा जी नहीं अघाया ? इस गोकुल के प्रश्न को पुनीता तिरस्कार के स्वर में कहती है। 'हम लोग माँगती हैं तो क्या हमारी कोई इज्जत नहीं ? और मारता है गुण्डा !'[1] पुनीता भिखारिन होते हुए भी दिल से साफ है। गरीबी के कारण वह मनोग्रस्तता से पीड़ित है। पुनीता और बुढ़िया के पास रेल के टिकट हैं। ऐसा होते हुए भी सभी को लगता है कि वे दोनों सेंत मेंत ही यात्रा कर रही हैं। जहाँ भले मानस बैठे होंगे वहाँ पुनीता अपनी माँ के साथ जाना चाहती है। उसके साथ दूसरी ओर जाते हुए बुढ़िया कहती है 'बेटी सब जगह ऐसे ही लोग हैं। पर तेरी जीभ तो जाने क्या कभी कभी काँटे बिछा डालती है।'[2] बुढ़िया की इस वृत्ति में मानसिक सन्तुलनात्मक भाव उमड़ पड़ा है जिसमें आत्म नियन्त्रण एवं जीवन दृष्टि है। रेलगाड़ी में गोकुल और फूलचन्द से एक साधु मिलता है। साधु कहता है कि सन्त मार्ग का थोड़ा सा अनुशीलन करो। तीर्थों की व्यवस्था और गंगा जी की धार को बाँध कर नहरों में ले जाने का घोर विरोध दर्शन के लिये—अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिये हमको दस हजार विद्यार्थियों की जरूरत है। साधु के इस वक्तव्य में अहंभाव एवं प्रतिगामी दृष्टि दिखाई देती है। थोड़ी देर बाद रेलगाड़ी का एक्सीडेंट हो जाता है। कई गरीब और निस्सहाय मरे और घायल हुए। मन्दाकिनी और पुनीता दुर्घटना में फँस जाने के कारण स्ट्रेचर वाले उन्हें अस्पताल ले जाते हैं। अस्पताल में एक पलंग पर मन्दाकिनी और एक पर पुनीता अचेत पड़ी हैं। नर्स और डाक्टर उनका निरीक्षण कर रहे हैं। जरा दूर फूलचन्द और गोकुल बैठे हैं। दोनों अचेत लड़कियों को कुछ रक्त और कुछ चमड़े की जरूरत होती है। भोंदाराम डाक्टर से कहता है कि आप

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा : बाँस की फाँस, द्वितीय संस्करण, १९५३ पृ० १०
२ वही, पृ० १२

या आपकी नस, अस्पताल की नस अपना चमडा नही दे सकती ? भीडाराम फौजी अफसर होते भी उसमे एडलर प्रणीत हीनता ग्रन्थि दिखाई देती है। उसके चले जाने के बाद डाक्टर गोकुल और फूलचन्द के रक्त की परीक्षा की जाती है। फूलचन्द का रक्त मन्दाकिनी को और गोकुल का रक्त एव चमडा पुनीता को दिया जाता है जिससे दोनो लडकियो की जान बच जाती है।

फूलचन्द रक्त के बदले मन्दाकिनी का प्रेम चाहता है और गोकुल भिखारिन लडकी को खून और चमडा दोनो देकर उसकी ओर आकृष्ट होकर भी प्रेम प्रकट नही करता। मन्दाकिनी अपने कृतज्ञ भाव प्रदर्शित करती हुई फूलचन्द से कहती है 'नही भूलती हूँ। आपने मेरे बिस्तर उठाए गाडी मे बिठला दिया। जब घायल होकर लौटी तब आपने अपना रक्त दिया। कृतज्ञ हूँ। पर किसी भी पुरुष को किसी भी स्त्री के लिये इतना तो करना ही चाहिये न ?'[1] तदुपरान्त फूलचन्द के प्रेम को ठुकराकर मन्दाकिनी कहती है कि डिब्बे मे बिस्तर रख देने और चार आउन्स खून देने से स्त्रियाँ खरीदी नही जा सकती। मन्दाकिनी की इस वृत्ति मे मनोविकृतियो का उत्प्रेरक तत्त्व मनोग्रस्तता का आविष्कार हुआ है। डाक्टर के द्वारा पुनीता को विदित होता है कि गोकुल ने ही उसके लिए अपना खून और चमडा दिया। पुनीता हर्षविभोर हो उठती है और उस दिन की (रेल डिब्बा मे) गाली एव कठोर बातो के लिए गोकुल से क्षमा मागती है। पुनीता के इन भावो मे तादात्म्य वृत्ति दिखाई देती है, जिसमे अतीत की दबी कुण्ठित भावना लुप्त हो जाती है।

द्वितीय अक

पुनीता की माँ बुढिया उसे ढूँढते ढूँढते अस्पताल आ जाती है। डाक्टर उसका पूछताछ कर पुनीता से मिलाते हैं। पुनीता अस्पताल की सभी घटनायें अपनी मा को बता देती है। वह मा के सम्मुख अब गाली न देने का प्रण कर लेती है। बुढिया और पुनीता के सहज भोले भावो मे मानसिक नियतिवाद के यथार्थ दर्शन होते है। गोकुल और पुनीता मे प्रेमालाप चलता है। गोकुल पुनीता को जीवन सगिनी के रूप मे स्वीकार करने के विचार से प्रसन्न होकर उससे कहता है अब मुझको विश्वास हो गया है कि मन से फाँस निकल गई। अब बतलाऊँ तुम मेरे जीवन सगीत से किस तरह भरोगी ?[2] गोकुल के मन का अन्तरिक द्वन्द्व भाग्य तरित होकर अन्त मे उसकी पुनीता के साथ शादी हो जाती है।

---

१ बाँस की फाँस, पृ० ४०

२ वही पृ० ६१

मन्दाकिनी कालेज की डिग्री पढी युवती है जिसमे घर की इज्जत एव नारी सम्मान के भाव ठूस-ठूस कर भरे हैं। उसमे मनोविकृतियो के प्रेरक तत्व-मनोप्रसन्नता होने के कारण फूलचन्द के प्रेम को वह ठुकरा देती है। वृन्दावनलाल वर्मा ने परिचय मे कहा है, 'लडकी बोम की ठोकर नायद, सह लेती परन्तु फांस की चुभन वा न सह सकी और उसने ब्याह से बिल्कुल इकार कर दिया।'[1] मन्दाकिनी मे अहम् (दम्भ) की वृत्ति दिखाई देती है। वह फूलचन्द जैसे मनचले लडके को आत्म निरीक्षण करने को बाध्य कर देती है। पुनीता एव प्रतिष्ठित घर की बेटी होते हुए भी परिस्थिति वश उसे भिखारिन होना पडा है। इसी कारण उसमे हीनता ग्रथि दृष्टिगोचर होती है। गोकुल के निरीह प्रेम के कारण उसकी हीनता ग्रथि मार्गान्तरित होती है। गोकुल की जिजीविषा उसके सम्पन्न व्यक्तित्व का परिचायक है।

बांस की फांस के सवाद बहुत सफल हैं। छोटे छोटे वाक्यो मे नाटककार ने मानो गागर मे सागर भर दिया है। सवादो मे पात्रो के अनुसार गभीरता, हास्यविनोद और प्रभावोत्पादक कला सम्पन्नता दिखाई देती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

गोकुल—(रुद्धकण्ठ से) अच्छा एक गाना और सुनाओ पुनीता।

पुनीता—गीत तो सुना दूगी क्योकि एक दिन मे दो गाने सुनाने का मैने वचन हारा है पर आपका गला क्यो भर आया है?

गोकुल—तुम अब किसी को कभी गाली नही दोगी?

पुनीता—कभी नही! क्या आपको क्या सन्देह है? आपने क्या मुझको अभी तक क्षमा नही किया?

गोकुल—मैं तो उस बात को भूल ही गया हू।

पुनीता—(सोचकर) नही, माँ कहा करती है कि बांस से फांस बुरा होता है। फांस कसकती रहती है।

गोकुल— क्या तुम्हारे मन मे भी कुछ कसक रहा है?

पुनीता—नही तो! मुझको तो आपकी उस बात पर हसी आती है। ह! ह!! ह!!! ह!!!!![2]

उपर्युक्त सवादो मे पुनीता और गोकुल की अन्त प्रवृत्तियाँ यथार्थ रूप मे उमड पडी हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा ने पात्रो की योग्यता के अनुसार अपनी भाषा को

---

१ बांस की फांस परिचय पृ० २

२ वही, पृ० ५९

सजाया है। मनोवेगों का चढ़ाव उतार मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकट करने में भाषा का एक गठीला एवं चुस्त रूप दृग्गोचर हुआ है। आँखें गड़ाकर देखना, फब्ती मारना, दम फूल जाना आँख मारना बाट जोहना, भगवान जब देते हैं तो छप्पर फाड़कर देते है, म्याँव म्याँव कर उठना[1] आदि मुहावरों कहावतों का सफल प्रयोग हुआ है।

साराश, कथा ग्वालियर स्टेशन और ग्वालियर अस्पताल तक सीमित होते हुए भी नाटककार ने मनोविज्ञान के सबल आधार पर इस नाटक को सफल बनाने की कोशिश की है। इसमें मनोग्रस्तता का यथार्थ चित्रण हुआ है।

झाँसी की रानी

वृंदावनलाल वर्मा ने अपने इसी शीर्षक के उपन्यास के कथानक को नाटकीय रूप दिया है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र इतिहास के आधार पर उन्होंने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। लक्ष्मीबाई के बचपन का नाम मनुबाई था। नाटककार ने पहले अंक में लक्ष्मीबाई का बचपन, आनंदराव (दामोदरराव) को गोद लेने और उसके पति गगाधरराव की मृत्यु तक की कथा मनोविज्ञान के सबल आधार पर खूबी से चित्रित की है।

प्रथम अंक

किशोरावस्था में ही मनू के मन में प्राचीन गौरव की स्मृति जागृत हो जाती है। वह बन्दूक भर कर निशाना साधने और घोड़े पर बैठने में प्रवीण हो चुकी है। मनू की दृष्टि प्रतिमा प्रबल है। इसी कारण वह देखी हुई वस्तु को अच्छी तरह से स्मरण रखती है। वह श्रोत प्रतिमा में भी प्रवीण होने के कारण सुनी हुई बात को अच्छी तरह से याद रखती है। वयस्कों की अपेक्षा बालकों की प्रतिमाएँ अधिक सजीव होती हैं। इसकी प्रतीति मनू के निम्नलिखित कथोपकथन में आ जाती है।

मनू— क्यों नहीं रहा काका ? वही आकाश है वही पृथ्वी है वे ही सूर्य चन्द्रमा और तारे। सब वे ही हैं। अब क्या हो गया है ?

बाजीराव—अब देश का भाग्य लौट गया है।

मनू— कैसे क्यों ? ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा, नागपुर, सतारा, भरतपुर और इतने बड़े राजस्थान के होते हुए भी अंग्रेजों ने आप सब को दाब लिया।

बाजीराव—अंग्रेज चालाक हैं। हथियार उनके पास अच्छे हैं। वे दूरदार

1 बाँस की फाँस, पृ० क्रमश २, ५, ५, ४०, ६, ९, १६

भी है। भाग्य उनके साथ है और हम लोगों म फूट है।

मनू— दादा, क्या भाग्य म शूरवीर होना भी लिखा रहता है ? यदि ऐसा है तो अनक सिंह स्यार होते होंगे और बहुत से स्यार सिंह।[1]

बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से मनू के बचपन को लेकर चलने वाली कथा अतीव महत्त्वपूर्ण है। बालक जो कुछ सीखता है उसमे प्रेरणा का बहुत बडा हाथ रहता है। प्रेरणा ही बालक को क्रियाशील बनाती है। आन्तरिक प्रेरणा के कारण मनू मोरोपन्त से कहती है, हू क्या नही है। मराठी मैंने पढी है हिन्दी मैं जानती हूँ। *युद्धत युद्धते युद्धन्ते संस्कृत का भी। रामायण पढ* लेती हूँ। गीता भी—

सम्भवामि युग युग --हु । हु ।। हु ।।। हु ।।।। धर्म संस्थापन कार्यार्थ-अरे आगे भूल गई। फिर पढूंगी। रटूंगी, घोटूंगी।[2]

बचपन में ही वह अंग्रेजो से लडने का निश्चय कर बैठती है। सुन्दर, मुन्दर, काशी आदि दासियो तथा रानी बख्शिन को सहेली के रूप मे स्वीकार कर स्त्रियो की सेना बनाने की तरकीब ढूँढ निकालकर कुश्ती, मलखम्ब आदि के लिये उन्हे प्रोत्साहित करती है। अबोध अवस्था मे राजा गगाधरराव से उसकी शादी हो जाती है। उस समय लक्ष्मीबाई की साडी से गगाधरराव की चादर की गाँठ बाँधने के समय पुरोहित का हाथ कांपता है। वह गाँठ बाँधने का प्रयत्न करता है परन्तु सफल नहीं होता। पुरोहित के विफल प्रयत्न के कारण झुंझलाकर मनू कहती है कसकर ऐसी बाँधिये कि कभी छूटे नहीं।[3] लक्ष्मीबाई की यह प्रेमपूर्ण भावना और सुख का सवेग उसके सम्पन्न व्यक्तित्व का परिचायक है।

झाँसी के किले के भीतर गणेश के मन्दिर मे गौर पूजा के उत्सव मे लक्ष्मीबाई का सखियो से हास्य विनोद करना मोतीबाई और नृत्य के बाद कचहरी म जनेऊ वाला मुकदमा करना गगाधरराव का रानी के पुरुषोचित कार्यो पर क्षोभ के मारे गला रुद्ध होना और साथ ही साथ उसके गुणो की सराहना करना और अन्त मे दामोदरराव को गोद लेकर स्वर्ग सिधारने की घटना नाटककार ने दिखाई है। इसी अक मे नवाब अलीबहादुर और अंग्रेजो के पालिटिकल एजेन्ट के वार्तालाप से केवल खिताब के प्रलोभन से अलीबहादुर

१ वृन्दावनलाल वर्मा झाँसी की रानी छठा सस्करण, १९६२ पृ० ११, १२

२ झाँसी की रानी पृ० १३

३ वही, पृ० २५

तथा पीरअली जासस बनने की ओर अग्रेज अफसरो से बार बार मिलते रहने की जानकारी मिलती है।

द्वितीय अक

इस अक म अग्रेजा द्वारा दामोदरराव को गोद लेने स इ कार कर देने की ओर झांसी म रानी का राज हो जाने की कथा है। 'मैं अपनी झांसी नही दूँगी।'[1] रानी लक्ष्मीबाई के इस वक्त य मे उसके अवदमन की जानकारी मिलती है। यहाँ उसकी इच्छा का अनात भाव दमित होकर अचेतन मन मे पहुँच अवसर पाकर इस रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। इस अक मे रानी लक्ष्मीबाई तथा जूही द्वारा अग्रेज छावनी के हि दुस्तानी सिपाहियो मे अग्रेजो के विरुद्ध लडन की भावना बोयी जाती है। स्त्री सेना तयार की जाती है। जवाहरसिंह रघुनाथसिंह आदि स प्रजा-पीडन और बुरे कामो से बचने की प्रतिज्ञा ली जाती है। पीरअली के हीन वत्ति की जानकारी भी मिलती है। जूही और तात्या के सभापण म देशप्रेम तथा स्वातन्त्र्य निष्ठा दिखायी देती है यथा—

जूही—अग्रज तरह तरह के लोभ दकर सिपाहियो को बेधरम करना चाहते हैं। सिपाही अपना धरम नही छोडगे। उनमे बहुत गुस्सा छाया हुआ है।

तात्या—यही हालत उत्तर की ओर पूव की छावनिया का भी है।

जूही—सिपाहियो को अग्रेज सीख देते हैं कि नमक को भँजाते रहना।

तात्या—सिपाही जिस भूमि के हैं नमक तो उसी भूमि का है। और उसी भूमि की भजायेंगे।

जूही—वह दिन कब आवेगा सरदार साहब ? वह दिन जब हम सब स्वतन्त्र होंगे ?

तात्या—हम सब कब स्वतन्त्र होंगे यह अपने मिले हुए प्रयत्न पर टिका है। प्रयत्न का आरम्भ कब होगा यह थोडे दिन बाद बतला दिया जायेगा। एक ही तारीख और एक ही समय पर होगा वह ![2]

प्रस्तुत उद्धरणा म इच्छा शक्ति की यथाथ अवतारणा हुई है।

सागर सिंह के झांसी के जेल से निकल कर भागने की घटना इसी अक में है। रानी लक्ष्मीबाई अपनी जनता के लिए उसकी कला और सस्कृति के लिए उसके धम के लिए मर मिटन की इच्छा अपनी सहेली मुन्दर के सम्मुख

---

१ झांसी की रानी, पृ० ४४

२ वही, पृ० ५१, ५२

प्रदर्शित करती है। एक दृश्य में झाँसी नगर में सिपाही अनाज की दूकान हाथ में ले रहे हैं। जब वे रुपया माँगने लगते हैं तब रानी मोतीबाई अपना हीरों का कंगन उतारकर देती है और कहती है इससे तुम्हारी सारी कसरें पूरी हो जायेंगी। मनुष्यों की तरह यहाँ से जाओ और उन्हें कायदे के साथ सिपाही पहुँचें। कभी भी लूटमार मत करना। हिन्दुओं को गंगा और मुसलमानों को कुरान की सौगंध है।[1] रानी लक्ष्मीबाई धर्म और संस्कृति की ओर इतनी अधिक आकृष्ट हो चुकी। उनके व्यक्तिगत जीवन में उसके इसके कुछ कारण मिल गये हैं। फ्रायड ने अपने अनेक प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि धर्म की परिकल्पना मनुष्य के अपराधी मन की विकृत उपज है और वह मनोविकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। धर्म का आधार प्रेम न होकर भय, घृणा और विनाशमूलक प्रवृत्तियाँ हैं। इस दृष्टि से रानी लक्ष्मीबाई जीवन में आरम्भ अवस्था में ही क्यों न हो भय की भावना विद्यमान थी। उनके पति राजा गंगाधरराव उनकी यौवनावस्था में ही स्वर्ग सिधारे थे और अंग्रेजों ने दामोदरराव का दत्तक विधान नामंजूर किया था।

तृतीय अंक

रानी लक्ष्मीबाई को मोतीबाई द्वारा जानकारी मिलती है कि सागरसिंह के साथ युद्ध होकर वह भाग गया है और गुलमोहम्मद घायल होकर बरुआसागर किले में पड़े हैं। इसके बाद रानी मुन्दर और रघुनाथसिंह की सहायता से सागरसिंह को जा पकड़ती है। सैनिकों द्वारा उसे गिरफ्तार करके उससे कहती है इन दिनों तुम जानते हो जिन पर डाके डाले वे सब मेरी प्रजा हैं और जैसे गरीबों की रक्षा का भार मेरे ऊपर है उसी प्रकार धन सम्पत्ति वालों की रक्षा का भी। डाके के लिए दण्ड प्राणों का है। तैयार हो जाओ। तुम्हारे साथी भी न बचेंगे और न तुम्हारे और उनके घर। मिट्टी में मिलवा दूँगी।[2] रानी की इस कठोर नीति के कारण सागरसिंह में उदात्तीकरण की प्रक्रिया होती है और वह रानी की शरण में आ जाता है। एक विनती वाले की पत्नी मर जाने पर रानी उसको दूसरी शादी के लिए पाँच सौ रुपया दे देती और गरीबों को कम्बल देने का शीघ्र प्रबन्ध करवाती है। इससे रानी की दया तथा परोपकारी वृत्ति विदित हो जाती है पर जनता में श्रम महात्म्य बढ़ाने की दृष्टि से यह घटना उपयुक्त नहीं है। एक दृश्य में रानी अपने साथियों के साथ लड़ना चाहती है, जिसमें जीवन मरण प्रवृत्ति के यथार्थ

१ झाँसी की रानी पृ० ६६
२ वही पृ० ७१

दर्शन मिलते हैं । इस अंक के अन्त मे पीरअली अंग्रेजी सेना के जनरल रोज को रानी की एक हजार स्त्री सेना का भेद बतला देता है ।

चतुर्थ अंक

इस अंक में झांसी की लड़ाई का वर्णन है । रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी सेना का आयोजन किस ढंग से किया था इसकी जानकारी मिलती है । रानी कहती है, "और मुन्दर, तेरा जूट दीवान दूल्हाजू के साथ ओर्छा फाटक पर खुदाबख्श, खण्डेराव फाटक पर सागरसिंह, दतिया फाटक पर रामचन्द्र तेली, बड गांव फाटक पर करन काछी और ठाकुर लोग सागर खिड़की पर पीरअली । तू किले मे आती जाती बनी रहना । वैसे मैं स्वयं किले के भीतर और बाहर दोनो जगह काम करूँगी । प्रत्येक फाटक पर दौड़ लगाऊँगी । नगर की गली गली मे घूमूँगी और जनता को सचेत रखूँगी ।[1] रानी के इस आयोजन मे वे प्रविधियाँ प्राप्त हैं, जो व्यक्ति में तनाव का सामना करने की शक्ति को बढाती है । इसी अंक मे पीरअली स्वार्थी भावना से रोज को रानी की सेना के भेद बता देता है । रानी लक्ष्मीबाई जवाहरसिंह, सुन्दर, भाऊ तथा बख्शी की कलाया पर रण कंकण बाधती हुई कहती है, 'एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जन्म से स्वराज्य सिद्ध नही होता । कर्तव्य पालन करते हुए मरना जीवन का दूसरा नाम है ।'[2] रानी के इस वक्तव्य से सैनिको में कार्य करने की दृढ इच्छा और बहादुरी के कार्यों में रुचि निर्माण हो जाती है । अंग्रेजो के साथ हुए युद्ध में खुदाबख्श मोतीबाई, सुन्दर गौसखाँ भाऊ, बख्शिश आदि मर मिटते हैं । अंक के अन्त मे झलकारी झांसी की रानी जैसा वेश बनाकर जनरल रोज की छावनी मे जाती है । सभी सैनिको में देश के लिए प्राण न्योछावर करने की भावना निर्माण हुई है, जिसका केन्द्रबिन्दु है रानी लक्ष्मीबाई का विकासी मुख व्यक्तित्व ।

पंचम अंक

रानी लक्ष्मीबाई कालपी जा पहुचती है । रावसाहब सेना-नायक बन जाता है । कालपी के रणक्षेत्र मे रानी के सैनिको की हार हो जाती है । ग्वालियर किले के पार्श्व में रानी लक्ष्मीबाई तथा बाबा गंगादास में हुआ वार्तालाप ध्यान देनेलायक है ।

लक्ष्मीबाई–हम लोगो के जीवन काल मे स्वराज्य स्थापित हो जायगा, बाबाजी ?

---

१ झांसी की रानी पृ० ९०

२ वही पृ० ९८

बाबा गंगादास–यह मोह क्या बढ़ी ? पहले से आरम्भ किए हुए काम को ही तो बढ़ा रही हो न ? दूसरे लोग आयेंगे । वे इसको बढ़ाते जायेंगे ।'[1] इसमें रानी के जीवन ध्येय की जानकारी मिलती है । इसमें उसकी निजी इच्छाओं प्रेरणाओं और विचारों का यथार्थ प्रतिफलन हुआ है । इसी अंक में तात्या टोपे की कर्तव्यभावना की सही जानकारी प्राप्त होती है । आखिर अंग्रेजों से लड़ते लड़ते बाबा गंगादास की कुटिया के पास रानी का प्राणान्त हो जाता है । रानी चिता में भस्म हो जाती है । नेपथ्य में 'वही सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक वीर थी' की ध्वनि सुनाई देती है । सचमुच झाँसी की प्रेरणावादी मनोविज्ञान का एक आदर्श नमूना है जिसकी व्यक्तिरेखा को हम भूलने से भी भूल नहीं सकते हैं ।

इस नाटक में झाँसी की रानी का चरित्रचित्रण दृढ़ तथा आदर्श वीर नारी का है जो अपने देश की आजादी के लिये अपने सहयोगियों के साथ मर मिटती है । असाधारण या अवनामल पात्र में इसकी गिनती की जा सकती है । रानी का आचार विचार चिंतन रहन सहन, साधारण व्यक्ति से भिन्न है । इस नाटक के चरित्रों के विकास के बारे में डा० कमलेश ने कहा है–इस नाटक में लक्ष्मीबाई का चरित्र उसकी देशभक्ति वीरता, युद्ध निपुणता उदारता, साहस शक्ति आदि का ज्वलन्त उदाहरण है । वह आरम्भ से निस्संकोच है । न तो नाना और राव से बचपन में हार खाई, और न अंग्रेजों से बड़ी होकर । झाँसी की वह सर्वप्रिय निधि बन गई । सामान्य दासियों से मिलकर उसने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये । मिट्टी उसके स्पर्श से कंचन हो गई । पीरअली और दूल्हाजू–जैसे देशद्रोहियों के बावजूद रानी ने अपनी झाँसी का फौलाद बनाए रखा । नाटक में मुन्दर तो उसके साथ अन्त तक रही है, पर डाकू सागरसिंह और झलकारी के व्यक्तित्व बड़े आकर्षक हो उठे हैं । और तो और, नाटक में जरा सी देर के लिए आई हुई जूँजडिन तक नारीत्व का प्रचंड रूप प्रस्तुत करती है । राष्ट्रीय चेतना और आदर्श की भावना की दृष्टि से पीरअली का अपवाद छोड़कर सभी पात्र चोटी से एडी तक पसीना बहाते हैं । सभी में राष्ट्रपति की भावना का सहजसुन्दर परिपोष हुआ है ।[2]

इस नाटक के संवादों में सफलता के साथ स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

---

१ झाँसी की रानी, पृ० १२५

२ डॉ० पद्मसिंह शर्मा कमलेश वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० १२४–१२५

उनमे गत घटना का यथार्थ परिचय मिलता है और साथ ही मनोवेगो का उतार चढ़ाव भी दिखाई देता है। उनसे कथावस्तु म गति आती है और पात्र की स्थिति वो उसके मनोविज्ञान को समझने मे विशेष सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए–

लक्ष्मीबाई–(मुस्कराकर) मेरा कदाचित यह अन्तिम युद्ध होगा (गम्भीर होकर) तात्या, तुमसे मुझको बहुत आशा थी। दृढ हो जाओ तो अब भी बहुत कुछ कर सकोगे।

तात्या– आपकी आज्ञा का पालन अवश्य किया जायगा। अक्षर, अक्षर का अनुसरण।

लक्ष्मीबाई–तयार हो जाओ ! लडडू श्रीखण्ड और भग को गड्ढे मे फेक दो। राग रग को बहा दो। (शान्त होकर) तात्या तुम कुशल सेनापति हो। तुरन्त मोर्चे बाधो। मैं भी आकर अपनी योजना बतलाती हूँ। उसके अनुसार डटकर काम करो।

तात्या– इसी के लिये मैं सेवा म आया था।[1]

उपयुक्त सवादो से ज्ञात होता है कि लक्ष्मीबाई योजना निर्माण करने वाले के रूप म नेता (The Leader as a Planner) का परिचायक है।

वृ दावनलाल वर्मा की भाषा म उनका शब्द चयन विचारो और भावो का यथार्थ प्रतिनिधित्व करता है। उनके शब्द चयन में सस्कृत के तत्सम शब्द एव उर्दू फारसी के भी शब्द रहते हैं। भाषा मनुष्य की मनोभावो का अभिव्यक्त करने का एक उत्कृष्ट साधन है। इसी के द्वारा पात्रो की मानसिक भावभूमि चित्रित होती है। कही कही भावो मादकी अवस्था म एक सूक्ष्म साहचय सूत्र होता है। उसका यथार्थ रूप लक्ष्मीबाई के शब्द वार्तालाप म दृग्गोचर हुआ है। लक्ष्मीबाई सुदर, जूही और तात्या के सम्मुख कहती है "कितना समझाया ! कितनी बार सिर मारा !! परन्तु तुम लोगो ने न सुना !! न सुना !!! आह !!!! तुम लोगो न सभी कुछ उलट पुलट दिया। फल की आशा करो, कम से कोई सरोकार नही, बलिदान करो रत्ती भर पुरस्कार मागो पहाड़ के सर की तौल का, काम राई बराबर भी नही दिखावट पहाड के समान ! तपस्या का स्वाग त्याग का पाखण्ड, ढाग का बहुरूपियान !! इसक सिवाय और क्या है तम्हारी गाठ म ?"[2] इन

---

१ झांसी की रानी पृ० १२७

२ वही पृ० १२७

भावप्रवण शब्दो के द्वारा रानी के मन की उथल पुथल, उसके भावो की सरसता और हृदय की सच्चाई प्रकट हुई है ।

समग्रालोचन द्वारा यह कहा जा सकता है कि नाटककार ने मनोविज्ञान क प्रमुख अगो का इस नाटक म यथाथ रूप स प्रयोग किया है। पात्रो पर राजनीतिक सास्कृतिक आदि क वातावरण का जबरदस्त प्रभाव है। इसी कारण कुछ महान उद्दश्यो के लिए कुछ प्रिय आदर्शों के लिए मर मिटन वाले पात्रो की सष्टि निर्माण करन म नाटककार को महान सफलता मिली है।

मगल-सूत्र

मनोवज्ञानिक तथ्य पर आधारित मगल सूत्र नाटक म सम्ब ध विच्छेद एव पुनर्विवाह की समस्या का यथाथ चित्र अकित हुआ है ।

पहला अक

पीताम्बर नामक एक प्रथम श्रेणी का सरकारी नोकर है। वह अपने पुत्र कुन्दनलाल की शादी करना चाहता है। कुन्दनलाल स्वभाव से उतावला है। वह अपने मित्र गोपीनाथ म कहता है 'मुझको स्वय नही मालूम। मेरी चिता या उतावली का कारण कुछ और है। आप इतने कुशाग्र बुद्धि और इतने वाक सयमी हैं कि विश्वास के साथ आपसे सलाह ल सकता हूँ और सहायता पा सकता हू। कुछ सकोच होता है। परन्तु कहूगा।[1] यहा उसके अचतन मन म भय और चि ता दिखाई देती है। अलका और कान्ता दो कालज छात्राएँ हैं जो साइकिल लिए हुए जल्दी-जल्दी लौट रही हैं। इतन म उन दोनो पर कीचड फेंक दिया। तब खीजकर अलका गोपनीय नामक एक कालेज के एम० ए० उत्तीण हुए छात्र स कहती है आप बहुत अभद्र और बहूदे हैं। मैं आपको जानती हू। प्रोफेसर और वाइस चासलर से आपकी शिकायत करूगी।[2] कुन्दनलाल स्वय ब्याह नही करना चाहता है, पर उसके पिता जी के कारण उसे ब्याह क लिय तयार होना पडता है। क्योंकि वह एक निर्बल युवक है। निर्बलता हटान के लिय वह समाचार पत्रो के विज्ञापनो का पढकर दवाइया मगाकर खाता है। इसीलिय गोपनीय उस डाक्टर की सलाह लेकर शादी न करने की सलाह देता है। पर अपने पिता जी की इच्छानुसार अलका क पिताजी स दहज के रूप म पाँच हजार रुपया लेकर अलका से शादी कर लेता है। वह स्वय विकृत स्नायुगत रतिशक्ति हीनता

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा मगल सूत्र द्वितीय सस्करण, पृ० १४

२ वही, पृ० १५

स बीमार है, पर परानी परिपाटी के अनुसार शादी करके एक स्त्री को दुख की खाइ म गिरा दता है। इस सदम म डा० गणेश दत्त गौड न कहा है—कुछ लोगो के मन म शादी को लेकर भारी आतक छाया रहता है ऐसा कुछ तो इस कारण होता है कि उन्ह अपनी रतिशक्ति पर सन्देह रहता है। जब रतिशक्ति का अभाव अपेक्षाकृत निरवछिन्न होता है तो कर्ता अत्यधिक सशकित हो जाता है। स्नायविक आतक का यह प्रभाव होता है कि पुरुष अपनी रतिशक्ति के विषय म निरन्तर चिंतित रहता है। और शाश्वत गति से उस उद्दीप्त करने की चेष्टा करता है। कुदनलाल पात्र मे यही मानसिक प्रश्रम है।[1] शादी के बाद अलका अपने पति के किताबी पाडित्य को दखकर क्रोधायमान हो जाती है। इधर अलका की अतप्त भावना मूकता के साथ प्रदर्शित हुई है। अलका कुदनलाल जैसे प्रेमी से कष्ट सहती है। उसकी इस प्रवत्ति मे मासोकवाद दृग्गोचर हुआ है। इसी कारण वह पति की मार पीट सह लेती है। एक दिन कुदनलाल मगल-सूत्र गहना विशष (महाराष्ट्र म सौभाग्य सूचक चिह्न माना जाने वाला) लाता है पर अलका उसे पर म ठुकरा दती है। इसम मानसिक असतुलनात्मक मनोविच्छेद प्रवत्ति दिखाई दती है। अलका का पिता रोहन उसके ऊपर होन वाले अत्याचार देखकर उसे अपन घर ल जाना चाहता है। जिस कोमल पौधे को उसन अपने हृदय के रक्त म सीचा पालापोसा उस पर वज्र प्रहार देखकर वह पागल सा हो जाता है।

द्वितीय अक

कुदनलाल रतिशक्ति हीनता क कारण दुखी बन जाता है। वह बहुत सी दवाइया खाता है पर कोई असर नही होता है। इसीलिय मनोविश्लेषक गोपीनाथ को वह सलाह देता है। गोपीनाथ उस स्पष्टता के साथ कहता है पत्नी को उसके मायके जान दो और फिर कभी मत बुलाओ। उसके जी म जो आव करन दो। समझ लेना कि विवाह हुआ ही न था। सम्बध विच्छेद कर दो।[2] मनोविश्लेषक के य विचार पढ़कर इसकी प्रतीति आती है कि विवाह पूव रति ज्ञान की जानकारी कर लेता कितना तदन तर कुदनलाल हतबुद्ध हो जाता है। इसी अक के एक दश्य म एक आचाय ने किसी एक सीमा म स्त्री को पुरुष की आधीनता म रहन की बात कही है। वह ध्यान स सुनाता है—

---

१ डा० गणेशदत्त गौड आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन जनवरी, १९६५ पृ० २९६

२ मगल सूत्र, पृ० ३७

ढोल गवार शूद्र पशु नारी,
सकल ताडना के अधिकारी।[1]

सभा म सम्मिलित लडकियाँ इस का विरोध दर्शाती हैं। बुद्धामल नामक शास्त्री का इस अवसर का वक्तव्य ध्यान देन लायक है। वह कहता है 'बातें करन का समय गया–अब कुछ कर दिखलान का समय आया है। समाज का पुन सजन भावो के आधार को छोडकर आर्थिक आधारो पर करना पडगा। इस आर्थिक योजना म स्त्री को स्वावलबी बनना होगा। विधवा विवाह और पुनर्विवाह का मैं समथन करता हूँ। सात आठ वष तक जिसके पति का पता न लग जिसका पति नपुसक या कोढी हो और जिसका पति स्वभाव स ही क्रूर दुष्ट और हत्यारा हो उस स्त्री को सम्ब ध विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकार मिलना चाहिए।[2] कुन्दनलाल पर इन सभी बातो का असर पडता है और गोपनीय कहता है कि पुरुषाथ के अभाव के कारण वह किसी दिन आत्महत्या करेगा। रतिशक्ति हीनता के कारण स्वाक्रमण प्रेरणावश वह इस तरह सोचन लगता है।[3] एक दिन अलका कुन्दन का अपनी बाता म लगाकर यह लिखा देती है कि उसके मन म पछतावा आ गया है। कुन्दनलाल म मानसिक विकास नही के बराबर है जिसकी प्रतीति अलका के एक सम्भाषण म आती है। वह उसस कहती है 'आप साइय मैं भी सोती हूँ। सडक पर हल्ला-गुल्ला न हो तो शीघ्र सो जाऊँगी। यदि आपको पस द हो तो एक छोटा सा गीत गाऊँ शायद आपको गात की थपकी स नींद आ जाय।[4] वह अपनी पत्नी स माँ जसी सवा करना ले रहा है जिसम मूलबद्धता दिखाई देती है। जो व्यक्ति माँ के सरक्षण स मुक्त नहा हो पात व मूलबद्धता और प्रत्यावतन के मानसिक रोगी होत हैं। इसी कारण उसम विकास की मात्रा नही के बराबर है। इस अक क अ त म कु दनलाल म घणा कर वह अपने पिता जी की सहायता स चुपचाप बुद्धामल क घर जाती है। तदुपरान्त मुहल्लेवाला पीताम्बर और एक लडकी क बीच हुए वार्तालाप स स्त्रियो का न सतान की बात कही गयी है। एक लडकी दाँत पीसकर पीताम्बर से कहती है अलका मायके म नहा

---

१ मगल सूत्र पृ० ३९

२ वही पृ० ४२

३ डा० गणेश दत्त गौड आधुनिक नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० २९७

४ मगल सूत्र, पृ० ५०

वचन दो कि उसको आग नहीं सताओगे, उससे कोई सरोकार नहीं रखोगे। यानी यदि वह मर गई है तो।'"[1] पीताम्बर वचन देता है और विवाद बन्द करते करते कहता है कि भाड में जाओ तुम सब, और भाड में जाये वह।

तृतीय अंक

होरीलाल नामक एक विद्यार्थी बुद्धामल के घर अलका का पता लगा लेता है। अलका का पिता रोहन उसके पुनर्विवाह के बारे में सोच रहा है। इसी कारण वह मनुस्मृति की पोथी को अपने हाथ में लेता है। यह नाटक ५ अगस्त १९४७ को लिखा गया है। उस काल में पुनर्विवाह एवं विवाह विच्छेद को लेकर नया कानून नहीं बना था। अतः नाटककार का विवेचन तर्कयुक्त लगता है। रोहन के सोच विचार में अहम (इगो) का भाव दृष्टिगोचर होता है। मैंने ब्याह क्या किया। इस प्रश्न ने कुन्दनलाल को उद्विग्न कर छोड़ा है। सब करते हैं इसलिए किया-- इस उत्तर में उसकी हीनता ग्रंथि उमड पड़ी है। अलका उस स्थिति के साथ जूझना चाहती है। उसका आत्म नियंत्रण देखने लायक है। अन्त में अलका की गोपीनाथ के साथ शादी हो जाती है। सचमुच दोनों के जीवन में नयी उषा उदित होती है।

कुन्दनलाल इस नाटक का प्रमुख पात्र है जो उच्च शिक्षित होते हुए भी पुरानी परिपाटी के अनुसार चलता है। वह विकृत स्नायुगत रति शक्ति हीनता से पीडित है। इसी कारण वह अपने ववाहिक जीवन में असफल होता है। इस अपयश का प्रमुख कारण उसकी मथुनिक शीतलता है। वह अपनी अलका जसी ग्रेज्युएट पत्नी को मारता पीटता भी है। क्योंकि उसे अपनी हीनता ग्रंथि बार बार सताती रहती है। वह अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का युवक है। डरपोक के कारण नयी परिस्थितियाँ उसे सुहाती नहीं। अलका विवेकपूर्ण एवं विचार शील नारी होने हुए भी कालेज के कुन्दनलाल जसे छात्र का शुरू में ही ठीक तरह से पहचान नहीं पाती है जिसके फलस्वरूप उसे बाद में पछतावा होना है। उस पर भारतीय संस्कृति के अटूट संस्कार हैं। इसी कारण वह अपने पिता की राय लेकर कुन्दनलाल से शादी कर लेती है और उसकी मार पीट भी सह लेती है। नये संस्कारों के बावजूद वह प्रथम विवाह को भूलकर गोपीनाथ से दूसरी शादी कर लेती है। गोपीनाथ एक मनोविज्ञान कुशल तथा आधुनिक विचारधारा को अपनाने वाला उच्च शिक्षा से विभूषित युवक है। उसकी प्रत्येक क्रिया एवं व्यवहार में आत्म सम्मान का मनोभाव दृष्टिगोचर होता है। अलका का पिता रोहन अपनी सुपुत्री के कल्याण के लिए परम्परागत

---

१ मंगल सूत्र, पृ० ५९।

विचारो को परा तल कुचलता है। उसका हास्य युक्त्याभास (Rationalisation) का परिचायक है।

मगल सूत्र के सवाद सफल, निर्दोष एव मनोवैज्ञानिक बन पडे हैं अधिकाश सवादो म पात्रो की मानसिक अवस्था यथाथ रूप म प्रतिबिम्बित हुयी है। कही कही छोटे एव आशयपूण सवाद हैं। मानसिक अवस्था यथाथ रूप म प्रतिबिम्बित हुयी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

कुदनलाल– मैं अपना ब्याह नही करना चाहता हू परन्तु पिताजी न मानगे। क्या करूँ ? एक कठिनाई और भी है।

गोपीनाथ– अवश्य ब्याह करो। सभी करते हैं। तुम्हारी और कठिनाई क्या है ?

कुदनलाल– आप विवाह नही करग ?

गोपीनाथ– कर लिया मनोविज्ञान की रसायनशाला क साथ तुम अपनी कठिनाई बतलाओ शायद हल कर सकू।

कुदनलाल– सकोच लगता है।

गोपीनाथ– तो मत कहो।

कुदनलाल– अवश्य कहूगा। मुझको कुछ दिन से बडी निर्बलता अनुभव होती है। समाचार पत्रो म छप हुए विज्ञापनो का अध्ययन किया। दवाइयाँ मगाइ और खाई। परन्तु निर्बलता दूर नही हुयी।

गोपीनाथ– मैं इस विषय का जानकार नही हू। किसी अच्छे डॉक्टर क पास जाओ। लखनऊ म अच्छे डाक्टरो की भरमार है।

कुदनलाल– डाक्टरो के पास नही जाना चाहता।

गोपीनाथ– तब अक्ल स काम लो। विवाह मत करो।

कुदनलाल– इनकार करना असम्भव है।

गोपीनाथ– तब चलो। टहलें। यह सभव स भी बढकर सभव है।[1]

उपयुक्त उद्धरणो स स्पष्ट हो जाता है कि इनम सफल मनोविज्ञान का पूण निर्वाह करन का प्रयास किया गया है।

इस नाटक की भाषा म शब्द चयन विचारो और भावो का यथाथ प्रतिनिधित्व करता है। नाम वाम शिकायत विकायत बतबढाव अधकचरा नाथ पगहा[2] जस शब्द बडी सहजता क साथ प्रयुक्त हुये हैं। हाथ पीले करना एक ही हाथ कम देना मान न मान मैं तेरा महमान। कुहराम मचना नाकादम

१ मगल सूत्र पृ० १६।

२ वही, पृ० क्रमश ४, १५, ३३, ८१, ६७।

भग्ना, धरती सिर पर उठा रखना वाले बाबा न हो सकना' आदि मुहावरा कहावतों का मनोवैज्ञानिक एव यथोचित प्रयोग हुआ है। सिविल क ट्रैक्ट, प्रोक्टर, वादस च सलर' जस अग्रेजी शब्दा का प्रयोग करते समय भाषा की व्यवहारिकता पर भी ध्यान दिया गया है। मौलिक सूक्तिया भी व दावन लाल वर्मा की भाषा की अनूठी देन है। जसे– (१) प्रबुद्ध स्वार्था म होकर मनुष्य प्रतिस्पर्धा क अखाडे म उतरता है और फिर करता है लगन के साथ एक-दूसरे का पूरा विनाश। (२) मगल का सूत्र है– जीवन को जीवन समझ कर आगे बढ़ना।[1]

समग्रालोचन के उपरा त यही लगता है कि नाटककार ने यौन मनोविज्ञान को लेकर उठाई हुई समस्या का यथाथ हल भी प्रस्तुत किया है।

खिलौने की खोज

डा० सलिल सरूपा एव डा० भवन के जीवन को लेकर व दावनलाल वर्मा ने काम प्रवत्यात्मक कथावस्तु का खिलौने की खोज' म मनोवज्ञानिक ढग से विश्लेषण किया है।

प्रथम अक

डा० सलिल और सरूपा का बचपन से एक दूसरे पर प्रम है पर आगे चलकर वे दोना एक दूसरे स सदा क लिए बिछुड जाते हैं। डॉ० सलिल म फ्रायड प्रणीत लिबिडो वत्ति दढ हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप सरूपा का खिलौना उसके जीवन का एकमात्र सहारा बन जाता है। एक दिन उसके घर से उसकी भी चोरी हो जाती है। इसी कारण कुण्ठित मनोग्रस्तता उसके जीवन म बचनी पदा करती है। उस य मा का शिकार होना पडता है। उसका मित्र डा० भवन वायु परिवतन के लिए उसी गाव– तालगाँव आ जाता है जिसे गठिया ने ग्रस्त किया है। उसी गाँव मे सरूपा सेतूच द नामक सेठ की पत्नी बनकर आती है। वह भी मानसिक बीमारी से ग्रस्त होने क कारण डॉ० सलिल एव डा० भवन के सम्पर्क म आती है। डा० सलिल को उस चाँदी के खिलौन की बार बार याद आ रही थी। इसीलिये वह डा० भवन से कहता है तुम जानते हो डाक्टर, शायद याद हो– तुमने उस खिलौने का देखा होगा? मैंने उसको अपन भीतर की आग जलाय रखने के लिए रख छोडा था। पर वह बुझती गया। उह[1] जाने दो। मैं उसका स्मरण नहीं करना चाहता (व्यग्ज

१ मगल सूत्र पृ० क्रमश १८ ३३ ३५ ३६, ४९ ५२ ७७।
२ वही, पृ० क्रमश १०, १५।
१ वही, पृ० क्रमश ७३, ८१।

पर हाथ धर कर) दद होने लगा है । अब जाऊँगा और कभी नहीं आऊँगा।"[1] इस संभाषण से विदित होता है कि डा० सलिल की बीमारी का एकमात्र कारण मानसिक है । यद्यपि वह डाक्टर है पर मन की गतिविधि से पूर्ण अनभिज्ञ है । मन की गुप्तकामपणा ने ही तो उसे क्षयरोगी बनाया है ।[2] तात्पर्य डा० सलिल की सनक या बीमारी का प्रमुख कारण सम्पा से शादी न होना एवं उसकी स्मृति– चाँदी का खिलौना गायब होना है ।

द्वितीय अंक

सम्पा को विदित होता है उसके पुत्र केवल ने डाक्टर का खिलौना चुराया है । मनोग्रस्तता के कारण सम्पा केवल से पूछती है 'अच्छा बता तूने उस डाक्टर का खिलौना क्या चुराया ? और फिर कहाँ रख दिया ?' तब केवल दृढ़ स्वर में कहता है मैंने डाक्टर हजारों बार कह दिया कि मैंने चुराया न था । वह सिगरिट की खाली डिबिया में बँधा हुआ चला आया । न मालूम कहा रख दिया । बहुत ढूँढने पर भी नहीं मिला ।[3] आतुरता के कारण वह फिर पूछती है, क्या था वह खिलौना ? केवल बता देता है 'किसी स्त्री की मूर्ति जैसी तुम बचपन में रही होगी । उससे मिलती जुलती । यह सुनते ही सरूपा धक्का खाकर पीछे हट जाती है फिर आगे बढ़ती है सिर पकड़े हुए थोड़ा सा टहलती है । अतीत की स्मृति ने उसे बेचैन कर दिया है । स्मृति मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना से लुप्त किसी अतीत दशा का ज्ञान उत्पन्न है। सलिल की बचपन की दोस्ती से इसका सम्बन्ध है। आखिर वह खिलौना मिल जाता है केवल उसे डाक्टर सलिल को लौटाने की चाह अपनी माँ के सम्मुख प्रदर्शित करता है । तब सरूपा उससे कहती है अच्छा ले जाओ लौटा दो । डाक्टर से मेरा यानी घर का कोई हाल मत कहना, भला ।[4] इससे उसमें अंतरमन के द्वन्द्व की जानकारी मिल जाती है । वह अपने अचेतन मन को और दमित करने की चेष्टा कर रही है । कुछ देर बाद केवल डा० सलिल के घर जाता है । इन दोनों के संभाषण में मनोविज्ञान का बाहुल्य दिखाई देता है। सलिल– तुम्हारी माँ ने रोका था और वही फिर लौटाने के लिए सहमत हो

१ वृन्दावनलाल वर्मा खिलौने की खोज तृतीयावृत्ति १९५६ पृ० ३७ ।

२ डा० गणेशदत्त गौड़ आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन जनवरी १९६५ पृ० २९९ ।

३ खिलौने की खोज, पृ० ४३ ।

४ वही, पृ० ४५ ।

गयी? उन्होंने इसको देखा ? देख कर क्या कहा था ?

कमल– (उसी हृपमग्नता के साथ) कुछ कष्ट म पड गयी, फिर प्रसन्न हो गई। उसी घडी से मुझको बहुत प्यार करने लगी। आप का नाम सुनकर किसी चिन्ता म पड गई। यह खिलौना उनकी आकृति स कुछ मिलता है। शायद इसलिये। इसीलिये शायद वह इसको रख लेना चाहती थी।

सलिल– (आश्चर्य चकित स्वर मे) उनकी आकृति स मिलता है ?

कमल– जी हाँ कुछ कुछ।[1]

इन सवादो से ज्ञात होता है कि डॉ० सलिल मे सवेदना जागत होती है। सवेदना स सम्ब ध रखने वाली भावनायें और अनुराग ही मनुष्य की चेष्टा का निश्चय करते है। सरूपा की उत्तेजना से इसका यहाँ प्रतिफलन हुआ है।

डा० भवन मरीजो से अधिक पसे लेते थ। इसी बीच उनकी पत्नी की मृत्यु हुयी और दुख भोगना हैं इस भावना के कारण उन्ह गठिया के चुगल मे फसना पडा। डॉ० सलिल इस मानसिक बीमारी का मनोविश्लेषण के ढग पर नष्ट करने की प्रतिज्ञा करता है। उनको स्वस्थ कर डालने की दृढ प्ररणा से उनकी बीमारी भी कम हो रही है। आतरिक शक्तियो की निरन्तर प्रगति स दोनो बीमारी से मुक्त होना चाहते हैं। इसी अक म डॉ० सलिल यक्ष्मा स क्यो नही बच गये, इसका विश्लेषण हो चुका है। एक दिन सलिल ने मरने की ठान ली। सेना म भर्ती होकर भी मर नही पाये। इसीलिए यक्ष्मा न दबा लिया। वह उनके स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल बठ गया। स्पष्ट है कि सघर्षो के कारण उनको यक्ष्मा न ग्रस्त किया।

तृतीय अक

डा० सलिल अब रोग, अधविश्वास और नासमझी का और भी जोर के साथ मुकाबला करने के लिये तयार होते हैं। डा० भवन की बीमारी का मूल कारण ढूढकर उसे नष्ट करने में उनको सुयश प्राप्त हुआ है। मनोविज्ञान का सहारा लेकर सरूपा की बीमारी हटाने म भी उनको सफलता मिलती है। सरूपा का हाथ या उसकी नाडी न देखते हुए बातचीत से– मनोविश्लेषक पद्धति स उस पर इलाज शुरू कर देते हैं। सरूपा की मानसिक बीमारी का निम्नलिखित वार्तालाप म यथार्थ चित्रण हुआ है।

सलिल– आपने उस खिलौने को देखा था ?

---

१ खिलौने की खोज पृ० ५६।

बाद मे उसके घर मे उसकी चोरी होने के बाद वह विमनस्क हो जाता है। उसकी बाल सखी और प्रेमिका सरूपा की शादी सेतूच द सेठ के साथ होने के बाद उसकी मनोग्रस्तता प्रबल हो उठती है। इच्छा के विरुद्ध इरादा होने से सरूपा मे भी अस्वस्थता तथा चिडचिडापन का निर्माण हो जाता है। मानसिक बीमारी का निवार हुआ सलिल हा आगे चलकर आत्मविश्वास एव स्वावलम्बन क बल पर गाँव का गोकुल बनाता है। हरक को सुखी बनाता चिदानन्द नामक ढागी साधु का चरित्र भी मनोवैज्ञानिक बन पाया है। उसम अह वृत्ति ठूँस ठूसकर भरी हुई है। वह अपन को नेता कहलवाता है। वह गाँव की भोलीभाली जनता को पथभ्रष्ट करन की कोशिश करता है। डा० सलिल जसे निरीह समाज सेवी के सम्मुख उसे हार खानी पडती है।

गतिप्रेरक सवाद रचना इस नाटक की महान सफलता है। मनोवेगों का उतार चढाव यथार्थता के साथ चित्रित हुआ है। व सलिल एव आशयपूर्ण होने से नाटक को चार चाँद लग गये हैं। उदाहरणतया--

केवल-माँ तुमको क्या हो गया है ?

सरूपा-बेटा, मैं तुमको आगे कभी नहीं मारूँगी कभी गाली नहीं दूँगी।

केवल-और मैं चाहे जहाँ जाऊँ ?

सरूपा-चाहे जहाँ जा, देवी माई तेरी रक्षा करेंगी पर इधर उधर मत जइयो बेटा।

केवल-उस दिन तो तुमने माई की भभूत लेने से इन्कार कर दिया था।

सरूपा-आगे नहीं करूगी। वह तेरी रक्षा करती रहेंगी।

केवल-लाओ, इस मूर्ति को डाक्टर को लौटा आऊँ।

सरूपा-(कुछ सोचकर) नहा मत ले जा रख ले अपने सन्दूक मे फिर।

केवल-(हसकर) कहा था न कि तुम्हारा मन बदल जाएगा! अब बताओ, चोर कौन है ? मैं या तुम ?

सरूपा-(प्यार के साथ) तुम नहीं बेटा मैं। (फिर भौहें सिकोड लेती है।[1])

केवल और सरूपा के य सवाद मनोविश्लेषण की दृष्टि से अजीब महत्त्वपूर्ण हैं। केवल म बच्चों की निरीहता दिखाई देती है तो सरूपा में कुण्ठित मनोभावना।

इस नाटक मे मनोविश्लेषणात्मक रूप का यत्र तत्र प्रयोग हुआ है जिसमे मनोविश्लेषणात्मक रूप दृग्गोचर हुआ है। अण्ड बण्ड बात कहना, भौहें सिकोडना होन ठीक कर देना चटर पटर बकना, मुँह डाल दना, गजब कर

---

१ खिलौने की खोज पृ० ४७

देना डींग हांकना[1] आदि मुहावरों का यथार्थता के साथ प्रयोग हुआ है। अर्जी पुर्जी, हल्ला गुल्ला, चाचा बाबा पढ़ाते बढ़ाते सेठ बठ दम-दिलासा[2] ठोक पीट, गाली गलौज, भूला बिसरा आदि देशज शब्दों का पात्रानुकूल प्रयोग हुआ है।

इस नाटक पर अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि—फ्रायड प्रणीत लिबिडो वृत्ति तथा कुण्ठित मनोग्रस्तता का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

केवट

राजनीतिक दलबन्दी के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालने के लिए वृन्दावन लाल वर्मा ने केवट की रचना की है। इसमें राजनीति की वर्तमान घातक स्थिति का एक यथार्थ चित्र खींचा है।

प्रथम अंक

गजपुर नामक गांव में टीकेन्द्र और मनोज क्रमश अग्रज और अनुज दल के नेता हैं। इन दोनों में अपने दल को प्रतिष्ठा प्राप्त कर देने की होड़ चल रही है। डा० गोदावरी नामक एक सुस्थित परिवार की महिला है जो अविवाहित रहकर देश की सेवा में रत है। तुला नामक उसकी एक प्रिय सखी है, जो उसे जी जान से सहयोग देती है। हिमानी नामक एक और महिला है जो बुरे कार्यों में रत एक एसे दल की संचालिका है जो आत्मियों को मारकर उनका धन छीन लेता है। इस दल में सुमरु नामक एक मजदूर सम्मिलित हो जाता है। वह हिमानी से कहता है मैं समतावादी हूं—सब बराबर के होकर रहें जिनके पास बहुत रुपया जायदाद है उनको कम करके हम आप सरीखे हाथ मेहनत करने वाले जरूरत में सों में बांटते रहें।[3] सुमरु के इन विचारों में विस्थापन वृत्ति है जो अचेतन मन में दबी दबाई कुण्ठित इच्छाएँ प्रकट करने के लिए इस कार्य पद्धति का प्रयोग करता है। इसमें आवश्यक विचार अनावश्यक और अनावश्यक आवश्यक लगने लगते हैं। सुमरु को डा० गोदावरी के संवादल की पूरी जानकारी है। कम आय के कारण वह अपनी पत्नी के गहने कपड़े नहीं बनवा पाता है। हिमानी गोदावरी के दल में काम करती है पर उसका अवदमन उसे चुपचाप नहीं बैठने देता। उसका सभी ध्यान गोदावरी के धन पर है। उसमें विनाशात्मक प्रवृत्ति इड के प्रतिगमन से हुई है। उसके मस्तिष्क के एक भाग में प्रारम्भिक इच्छा इड के रूप में

---

१ खिलौने की खोज, पृ० क्रमश ३१ ४७ ६२ ८९ ९८, ८७
२ वही पृ० क्रमश ३ १६, ५४ ४७ ६१ ६६ ८२, ११२
३ वृन्दावनलाल वर्मा केवट, द्वितीय संस्करण १९५४ पृ० १२

उपस्थित है । उसका जन्मजात गुण इसमें उमड पडा है । एक दिन अनुज और अग्रज दल में फुलटटी गली के नामकरण को लेकर झगडा हो जाता है । वहाँ गोदावरी अपन सेवादल को लेकर उपस्थित है । वह तुला से कहती है, "हमारे यहाँ बुरी तरह स जरा जरा सी बात पर लडे मरत हैं । आपाधापी मची हुई है । त्याग और सेवा करेंगे छदाम भर, उसके बदले मे पुरस्कार चाहेंगे मन भर ।"[1] उसकी इस विचारधारा स विदित हाता है कि उसमे समाज सेवा उन्नगमन का प्रतिरूप है । इधर हिमानी अपराध ग्रथि का प्रतिनिधित्व कर रही है । इसीलिए वह इस अवसर मे लाभ उठाकर अपने दल के लोगा को लूटमार के लिए सकेत करती है और तुला के गले का हार लेन का प्रयास करती है ।

द्वितीय अक

गजपुर की फुलटटी नामक गली का सिरा है । उसके एक ओर मेनाक एक राजनीतिक दल का नेता खडा है जिसे 'अग्रज पार्टी के नाम से पुकारा जाता है । टीलेन्द्र दूसरे दल का नेता है जा 'अनुज पार्टी' कहलाती है । इन दोना पार्टिया म झगडा हो जाता है । दोना अपन अपन नारे लगाते हैं । सिपाही आडी लाठियो स भीड को हटाने का प्रयास करते हैं । भीड के लोग सिपाहिया की लाठियाँ छीन लेते हैं । भीड के लोग दूकानो का माल लूटने लगत हैं । इस गडबडी म हिमानी अपन कुछ साथियो के निकट गली के सिरे बाहर होती है और लूट म हाथ बटाती है । तुला गली के सिरे तक हिमानी के पीछे पीछे आती है और वहा रुक जाती है । उस वक्त हिमानी गोदावरी को दूरी स देखकर जोर के स्वर म पुकारती है, डॉक्टर गोदावरी ! डाक्टर गोदावरी !! वही रहना, हम यहा सवा का काय करके आप के पास आ रही हैं ।[2] इतने मे कुछ गुण्डे हिमानी का इशारा पाकर तुला पर झपटते हैं । हिमानी की इस अपराध ग्रथि के कारण बेचारी तुला की गोली से हत्या हा जाती है । हिमानी तुला के गल के आभूषण पर हाथ डालती है, परन्तु गादावरी का देखत ही रुक जाती है । इतने मे गोदावरी अचेत हो जाती है । उसे तुला की मृत्यु स धक्का लगता है । उसकी स्मृति जाती रहती है । एक दिन गोदावरी रात को उन्मादग्रस्त होकर तुला के चबूतरे पर जा पहुँचती है । नाटककार ने इधर गोदावरी की मानसिक बीमारी दिखाई है । उसके फिट आन म तादात्म्यीकरण है । इसस विदित होता है कि शायद गोदावरी

---

१ केवट पृ० ३२

२ वही, पृ० ४९

में कहीं प्यार किये जाने की भूख थी। उसने अचेतन न किये का ही प्यार प्राप्त करने का साधन समझकर तादात्म्य कर लिया है।

तृतीय अंक

अन्त अवस्था में ही गोदावरी को उसके निजी घर पहुंचने का निश्चय किया जाता है। पूर्व योजनानुसार हिमानी और मुमर वर्मा पहले ही आ जाते हैं और दराज खोलकर रुपये निकाल लेते हैं। मेज पर रखी तुला की मूर्ति देखकर ही गोदावरी की अतृप्त स्मृति जाग जाती है। उस वस्तुस्थिति का भान हो जाता है। दराज की चाबी तो तुला के पास थी फिर दराज में से मूर्ति किसने निकाली? सौ सौ के नोट ऊपर कम? यह सारा हिमानी का घृणित कृत्य था। तुला के चबूतरे पर गोदावरी की मूर्ति स्थापित करने का आयोजन होता है पर गोदावरी ही अपनी मूर्ति का खण्डन कर देती है। सामाजिक सेवा का ऐसा पारितोषिक उसे पसन्द न रहा।[1] इस अंक के अन्त में सेवक सेना के निर्माण के लिए तैयारी की जाती है। विधान विधान सभा से त्याग पत्र लेकर सेवाकार्य में जुट पड़ते हैं। मुकुन्द नामक छात्र प्रतिनिधि सबसे पहले सुमेर और रमा के नाम सेवक सेना की सूची में लिख लेता है। गोदावरी अपनी सभी सम्पत्ति इस कार्य के लिए अर्पित कर देती है और अन्त में कहती है "मैं कानून के मार्ग को अवरुद्ध नहीं करूंगी। (मुकुन्द सूची में नाम लिखता रहता है। मुकुन्द के प्रति) यह और इसका वर्ग है हमारी नाव का खेवट यदि यह समझ और संयम से काम लें--" गोदावरी के इस अन्तिम निर्णय में युग प्रवीन सामूहिक अचेतन भाव दिखाई देता है। क्योंकि उसके इस सामूहिक अचेतन में सांस्कृतिक परम्परा एवं व्यक्ति के विकास की सम्भावना दृष्टिगोचर होती है।

गोदावरी मार्मिक संघर्ष के उपरान्त भी समाज सेवा का व्रत छोड़ती नहीं है। वह डाक्टर होते हुए भी स्वभाव से कोमल है। प्राणप्रिय सखी तुला की सिपाही की गोली से हत्या होने के बाद वह स्वप्नावस्था में विचरण करती है। वह समर्पित जीवन का आदर्श है। हिमानी एक दुष्ट नारी है जिसमें गुप्त मन अपराध ग्रंथि का अस्तित्व दिखाई देता है। मुकुन्द एक ऐसा नवयुवक है जो सेवा को जीवन का महत्तम कर्तव्य मानता है। असामान्य कार्य के लिए वह चोटी से एड़ी तक पसीना बहाता है।

इस नाटक के संवाद सरल सजीव स्वाभाविक संक्षिप्त गतिशील एवं प्रभावोत्पादक हैं। उदाहरण के तौर पर--

---

1 केवट, पृ० ११९

गोदावरी–केवल एक बात म थोडा सा हो जाएगा मुझे जीवन भर सेवा करनी है, स्त्रियों के आन्दोलन की पराकाष्ठा पर पहुँचाना है, इसलिए विवाह नहीं करूँगी तुला को करना पड़ेगा।
हिमानी– यह हो जाने पर भी यह रोगी तो आपके ही पास।
गोदावरी–अवश्य ! मैं तो इनसे खाना कपडा भर लूँगी।
तुला–अरे बस ही न जाने क्या क्या कहती चली जा रही हो !
गोदावरी–ह ! ह !! ह !!! अच्छा, अच्छा। हम सब समाज सेवा और राजनीति मे भाग लेंगे जिसकी बहुत दिनो जरूरत रहती है।[1]

प्रस्तुत कथोपकथनो म गोदावरी की जीवन शैली' उमड़ पडी है, जिसम उसका जीवन के प्रति होन वाला एक आशावादी दृष्टिकोण दृष्टिगोचर हुआ है।

केवट' मे प्रयुक्त भाषा सीधी, सरल सरस एव पात्रानुकूल है। वर्णन शैली म सजीवता और रोचकता होने के कारण कथा म गति प्रदानता आयी है। कहा कहा मनोवैज्ञानिक शैली मे विश्लेषण प्रस्तुत होने के कारण भाषा की कलात्मकता कम दिखाई देती है। हावी हो जाना सिर पर सवार होना छाती पर सवार होना कोलाहल मच जाना, भौंह सिकुडना, नस नस में बिजली कौंधना कलेजा टूटना' आदि मुहावरो के कारण पात्रो की मनोदशा पर यथाथ प्रकाश पडता है। वृन्दावनलाल वर्मा जी भाषा को सजीव बनाने के लिए मुहावरो को विशेष पसन्द करते हैं, इसका यह सबूत है।[2]

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि 'केवट' में अपराध ग्रंथि की उद्भावना यथाथ रूप से हो चुकी है।

बीरबल

वृन्दावनलाल वर्मा न बीरबल नाटक मे बीरबल के व्यक्तित्व का यथाथ मूल्याकन किया है।

प्रथम अक

थानेश्वर के पास म एक जगल म अकबर बीरबल तानसेन मुल्ला दोप्याजा, फैजी जसवन्त और कुछ सिपाही आते हैं। अकबर शिकारी के वेश म है। इस समय मुल्ला दोप्याजा और अकबर के बीच व्यग्यपूर्ण वार्तालाप होता है। इसी वार्तालाप के सिलसिले मे अकबर मुल्ला दोप्याजा से कहता है कि तुमने खूब ढाँपा मुल्ला असगुन उसी घडी से शुरू हुआ। तब बीरबल

१ केवट, पृ० ३२
२ वही, पृ० क्रमश ४२, ५६, २६, ५५, ७१, ९३, १०१

वह उठता है जहाँपनाह को उस असगुन न कम स कम दो जोर तो दिखवाए पर जिसके देखना न दस ब्राह्मण को भूखो प्यासा मारा वह असगुन बडा है या म'' प्रस्तुत अवतरण स बीरबल की बुद्धि की अभिवृद्धि (Growth of Intelligence) पर प्रकाश पडता है। इसी अठक म तानसेन गुरनाम का पद गाता है। तदुपरा त अकबर बीरबल के साथ गुसाइयो के पुरी तथा गिरि के बीच का झगडा देखने चल पडता है। इस समय अकबर बीरबल से कहता है कि मुझको सुनी है बीरबल फकीर लोग अब बाबा बगीचियो का पता नहीं कर सकेंगे, और और। इसके उपरा त बीरबल अकबर स कहता है 'और जहाँपनाह उनकी कोई चिंता हम लोगो को नहीं है क्योंकि वे आपस म लडकर एक दूसरे के कतल करते रहेंगे। ससार का बोझ कम होता रहेगा। धम बेखटके चलता रहेगा।'' यहाँ बीरबल म कोहलर प्रणीत सूझ द्वारा समस्या का हल (Problem Solving by Insight) सिद्धा त परिलक्षित होता है। तत्पश्चात बीरबल और अकबर म धम को लकर बहस चलाती है। अकबर बीरबल स पूछता है कि होम हवन पूजन वगरह क्यो कहते हैं लोग ? इस प्रश्न क उत्तर म बीरबल कह उठता है डर के मारे। आप नमाज क्या पढते हैं ? मैं स या क्यो करता हूँ ? परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये मानो वह नाराज है। डर के मार हो न ?'' बीरबल स इन विचारो म फ्रायड प्रणीत धम और सस्कृति का सिद्धा त दष्टिगोचर होता है। तत्पश्चात जसवन्त स्त्री वेश बनाकर दिल्ली की एक गली म मुल्ला दोप्याजा की भतीजी हसीना का चित्र बनाने जाता है। क्योंकि अकबर हसीना की छवि को देखकर उसे अपने रहम म रखना चाहता है। वहाँ यकायक हसीना की सहेली गोमती आ जाती है। जसवन्त एक क्षण के लिए एकाग्र चित्त स उस निरखता है। उसकी आँखें उसे अतीव प्रिय लगती हैं। वह गोमती पर अनुरक्त हो जाता है।

द्वितीय अक

फतेहपुर सीकरी म तानसन का गीत होता है। तदुपरा त अकबर अपन दर बारियो के सम्मुख घोषणा करता है *'बहुत जल्दी फतहपुर सीकरी मे ऐसी* इमारतें बनवाई जावें जिनस बीरबल की हसी, सूरदास की कविता तानसेन की तानें जसवन्त की चित्रकारी और शेख सलीम चिश्ती की दुआ, सब

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा बीरबल, चतुर्थावृत्ति, पृ० ५।

२ वही, पृ० ९।

३ वही, पृ० १७।

एक साथ अनन्त काल तक प्रकट होती रहें ।'[१] यहाँ अकबर के व्यक्तित्व में एडलर प्रणीत रचनात्मक शक्ति परिलक्षित होती है । इसके बाद अकबर और बीरबल अन्तर्वेद के एक गाँव के निकट देहातियों के वेश मे आते हैं । इस अवसर पर अकबर बीरबल से कहता है, 'मैं हमेशा जानने की उधेड़बुन म लगा रहता हूँ । मालूम करता रहना चाहता हूँ कि प्रजा मेरे कामो की बाबत क्या सोचती है, क्या राय देती है । इसके अलावा और भी दुनियाँ भर के सवाल हैं जो मन म उठते रहते हैं शायद उनका कहीं कोई जवाब मिल जाय ।' प्रस्तुत उद्धरण मे ज्ञात होता है कि अकबर प्रतिनिधि नेता (Group Representative) का परिचायक है । तत्पश्चात अकबर वेशान्तर करके समाज के भिन्न भिन्न स्तरो के लोगो से मिलता है । अपने कार्य की योजना बीरबल को विदित करते हुए वह कह उठता है 'मैं रिश्वतखोरी को बन्द करूँगा । जागीरो को मौरूसी नही रखूँगा—यानी सिवाय तुम्हारे काल्जर के,—जागीरदार के मरने के बाद उसके रुपये पसे का हिसाब लिया जाया करेगा, और सारा फालतू रुपया जब्त कर लिया जाया करेगा ।'[२] यहाँ अकबर में निरकुश नेतत्व (Authoritarian Leadership) की झाँकी परिलक्षित होती है । तदनन्तर एक दरबारी अकबर के सामने शिकायत करता है कि सस्कृत दुरवार है । तब अकबर कह उठता है 'महाभाग्त की सस्कृत दुश्वार है या तुम्हारा बुग्ज ? याद रखना मैं काना से देखता हूँ ! हिन्द की सस्कृत स बग्ज रखने वाला का मैं कराट दुश्मन हूँ । मुसलमान होते हुए भी हिन्द की भाषा को अपनी भाषा, यहा की कलाओ को अपनी और यहा की सस्कृत को अपना अदब मानता हूँ ।'[३] यहा अकबर म फाम प्रणीत व्यक्तित्व एव चरित्र के गुण दृष्टिगोचर होत हैं । इसी अक के अन्तिम दृश्य म चित्रकार जसवन्त स्त्री वेश म बीरबल की भतीजी गोमती से मिलता है । जसवन्त के बनाये चित्र को देखकर गोमती कहती है कि हसीना के चेहरे म मेरी आँखें चिपका दीं तुमने ! तब जसवन्त उससे कहता है कि जब हसीना का चित्र कल्पना की सहायता से बनाती हूँ तब व आँखें याद नहा रहतीं, याद ये आँखें रहती हैं । इसस जसवन्त की मनाप्रसन्नता पर प्रकाश पड़ता है । कहना न होगा कि जसवन्त गोमती पर लुब्ध हो चुका है ।

---

१ बीरबल, पृ० ३९ ।
२ वही, पृ० ४३ ।
३ वही, पृ० ५८ ।
४ वही, पृ० ७१ ।

तृतीय अंक

फतहपुर के पास के जंगल में अकबर बीरबल से कहता है 'बीरबल तुमसे बढ़कर मुझको पहिचानने वाला और कोई नहीं । मेरा मन बहुत चल विचल रहता है। कहीं ठहरता ही नहीं। शिकार से मन ऊब गया है—' यहाँ अकबर में फ्रॉयड के अनुसार अनुरूपता मानसिक प्रक्रिया उमड़ पड़ी है। इसके अनन्तर अकबर अशान्त उचाट हुए मन की शान्ति मिलाने के लिए कृष्ण भक्ति की ओर आकृष्ट हो जाता है। कुछ दिनों बाद अकबर के द्वारा दीन इलाही नामक नये मजहब की स्थापना की जाती है। उसका विश्वास है कि यह मजहब सबको परस्पर मित्र बना देगा। तदनन्तर हसीना अकबर के सामने इन्साफ माँगने के लिए उपस्थित होती है[1]। उसकी फरियाद अकबर के ही खिलाफ होती है। इस मामले में अकबर उसकी क्षमा माँगता है और उसकी हिम्मत को देखकर कुछ इनाम भी दे देता है। तदनन्तर इस घटना से सम्बन्धित जसवन्त को बुलाया जाता है और अकबर द्वारा उसकी भर्त्सना की जाती है। इसी से जसवन्त स्वाभिमान प्रेरणावश में ग्रसित होता है। वह कमजोर अहम (Weak Ego) के आघात लेकर आत्मघात कर लेता है। अनन्तर बीरबल की प्रेरणा से अकबर वैराग्यगामी बनता है। अकबर बीरबल के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करता है। बीरबल बलख की रक्षा के लिए काबुल के स्वार के युद्ध में सम्मिलित होता है और अन्ततो गत्वा युद्ध में मारा जाता है। अकबर स्तब्ध मा न जाता है। बीरबल की अनुपस्थिति में उस फतहपुर सीकरी मनहूस जगह महसूस होती है। वह आगरे की ओर प्रस्थान करता है।

इस नाटक का केन्द्रबिन्दु है बीरबल। वह अकबर के राज्य का प्रेरणा स्थान है। उसका बुद्धिवातुर्य सराहनीय है। अकबर सहिष्णु वृत्ति का जहाँपनाह है जिसमें नेता के कई गुण विद्यमान हैं। वह बीरबल की सच्ची इज्जत करता है। जसवन्त श्रेष्ठ चित्रकार होने हुए वासना परिचलित पात्र है। वह गोमती की ओर आकृष्ट हो जाता है और गोमती उसकी कला पर। गोमती हसीना की एकनिष्ठ सहेली है।

बीरबल के कथोपकथनों में दार्शनिकता मौलिकता गतिशीलता तथा सुन्दरता परिलक्षित होती है। वे सहज स्वाभाविक एवं पात्रों की भावनाओं तथा व्यक्तित्व से अनुप्राणित हैं। उदाहरण के तौर पर—

---

१ बीरबल, पृ० ८३।

जसवन्त—अब कुछ भी नहीं लूँगा। (कलम चलाते हुए) बहुत पा गया।
गोमती—प्राण बचाने के बदले में ?
जसवन्त—प्राणों से भी बढ़कर कुछ और। अब मेरी कला को जो चमत्कार मिलेगा उसकी कोई भी बराबरी नहीं कर सकेगा, न इस देश का और न विलायत का।
गोमती—हूँ–(फिर मकान को इधर उधर से देखती है।)
जसवन्त—मैं चाहता हूँ मेरे बनाये हुए चित्र आप कभी कभी देख सकें मैं किसी प्रकार उनको आपके हाथों में पहुँचा सकूँ।[1]

प्रस्तुत संवादों में जसवन्त और गोमती की मनोग्रस्तता की यथार्थ अवतारणा हुई है।

इस नाटक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ सरल चुस्त अनुभूतिमय और बोधगम्य है। सना शब्द दो शब्दों से मिलकर बने हैं जिससे भाषा का सौंदर्य बढ़ गया है। यथा–दाना पानी बाघ बघर्रा भूखा प्यासा अखाड़े बखाड़े गुत्थम गुत्था घायल वायल तेल बत्ती जाँच पड़ताल[2] इत्यादि। मुहावरों–कहावतों के कारण रोचकता एवं सुन्दरता में वृद्धि हुई है। उदाहरणतया पत्थर के कलेजे को पिघलना, कचूमर निकालना छठी के दूध की याद आ जाना, दिन दूना रात चौगुना उधेड़बुन में लगना कलेजा मुँह तक आ जाना, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावे बाल बांका न होना रफूचक्कर हो जाना[3] आदि। इस नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा मनोभावों की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। जैसे—

(१) इस संसार में कुछ भी टिकाऊ नहीं है।

(२) संगीत परमात्मा का स्वभाव है और हँसी माया।

(३) प्रलय आवे या न आवे–पर हर एक आदमी के जीवन में एक बार प्रलय आती ही है।

(४) यदि कोई भी सौंदर्य स्थायी होता तो वह सौंदर्य रहता ही नहीं।

(५) भीतर जो आत्मा है उसका सौन्दर्य स्थायी और अनन्त है, परन्तु उसको पहिचानना पड़ता है।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस नाटयकृति में प्राचीन धर्म और संस्कृति सिद्धान्त की यथार्थ अवतारणा हुई है।

---

१ बीरबल पृ० ३३।
२ वही पृ० क्रमश ३ ६ ८ ८ ११, ११, १२, ६५।
३ वही पृ० क्रमश १२ १७, २१ ५६, ४३, ६१ ६३ ९३, १०४।
४ वही पृ० क्रमश [illegible]

निष्कर्ष

वृन्दावनलाल वर्मा के नाटकों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उनके नाटकों में मानसिक कुण्ठाओं एवं मनोग्रस्तता का हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक मनोविश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। नाटककार ने पात्रों के मन की अतल गहराइयों को आधुनिक परिवेश में रखकर व्याख्यायित किया है। उनके नाटकों में पात्रों की दबी छिपी काम शक्ति फ्रायड एवं वात्स्यायन के काम प्रतीकों के द्वारा उभड़ पड़ी है। उनके नाटकों के संवाद सफल, निर्दोष, गतिप्रेरक एवं मनोवैज्ञानिक बन पड़े हैं। वर्मा जी की भाषा सीधी, सरल, प्रौढ़, चुस्त, अनुभूतिमय एवं मनोविश्लेषण के अनुकूल है। दो शब्दों से मिलकर बने शब्दों से भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है।

८ | डॉ० रामकुमार वर्मा के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

विजय-पर्व

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'विजय पर्व' में सम्राट अशोक के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ चित्रित की हैं। इस नाटक में अहिंसा की विजय का निर्वाह सफलता के साथ हुआ है।

प्रथम अंक

सोन नदी के तट पर नाटक का प्रारम्भ होता है। पाटलिपुत्र में अशोक के भाई सुगाम और सुदत्त में वार्तालाप चल रहा था। इन दोनों में मगध के भावी सम्राट के बारे में गम्भीरता के साथ विचार विमर्श हो रहा है। सुदत्त सुगाम से पूछता है कि मगध का सम्राट कौन होगा? सुगाम उत्तर में कहता है कि यही तो सोन की लहरें निर्णय करेंगी। इससे ज्ञात होता है कि उन दोनों का भाग्यवादिता पर अटूट विश्वास है। सम्राट के सन्दर्भ में सुगाम के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए सुदत्त कहता है "मैं? इसी सोन नदी के किनारे हम दोनों का द्वन्द्व-युद्ध हो और मगध के योग्य शासक का निर्णय। इसी इच्छा से तुम मुझे यहाँ लाये हो? किन्तु सुगाम! मैं मैं द्वन्द्व युद्ध नहीं करूँगा। अपनी माताओं की अश्रुधारा में किसी भाई की रक्त धारा नहीं मिलाऊँगा। मैं सम्राट पद के लिए द्वन्द्व-युद्ध नहीं करूँगा। पाटलिपुत्र विपत्तियों में डूब रहा है। मैं उस पर अपने कृपाण का बोझ नहीं रखूँगा। हाँ तुम सम्राट बनो। पाटलिपुत्र के योग्य शासक! मैं जीवन भर अपनी माताओं की सेवा करूँगा।"[1] यहाँ सुदत्त में मनोवैज्ञानिक सलीवान प्रणीत सन्ताप की भावना दृष्टिगोचर होती है। तदनन्तर भावी सम्राट के रूप में अशोक का नाम सुनकर सुदत्त काँप उठता है। सुगाम उसे धीरज देते

१ डॉ० रामकुमार वर्मा विजय-पर्व, अष्टम् संस्करण, पृ० ९९

हुए अपने षडयन्त्र का सूत्रपात करते हुए कहता है कि इसी स्थान पर आज हम अशोक का वध करेंगे। सुगाम की यह भी एक इच्छा है कि सुसीम (बडा भाई) मगध का सम्राट बने। दोनो कुमार सुसाम का जय जयकार करते हैं। इतने मे ही अशोक का अंगरक्षक चडगिरिक प्रवेश करता है। वह सुगाम के सम्मुख संकेत कर देता है कि स्वर्गीय सम्राट बिन्दुसार के स्थान पर अशोक को सम्मानित किया जाएगा। सुगाम को यह वार्ता अरुचिकर लगती है। वह चडगिरिक की भर्त्सना करते हुए कहता है, सम्राट अशोक को रटनेवाला दादुर ! तू दुर्विनीत भी है। द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत हो।[1] इधर सुगाम के विद्रोह एवं संगठन की अशोक को पूरी जानकारी है। चडगिरिक एवं खल्लाटक भावी आपत्तियो के बारे मे चिन्ता प्रकट करते हैं। इतने मे ही अशोक का आगमन हो जाता है। और वह चडगिरिक एवं खल्लाटक को वहाँ से चले जाने की आज्ञा देता है और अपने साहस एवं आत्मविश्वास के बल पर भाइयों के आक्रमण का अकेले ही सामना करने के लिए उद्यत हो जाता है। अशोक का क्रोध पाकर सुगाम की मानो घिग्घी बंध जाती है। वह अस्पष्टता के साथ अशोक से कहता है तुम ऐसा कर सकते हो कि यदि सुसीम योग्य नहीं है अर्थात उसे सिंहासन के योग्य नही समझते तो तो मैंने अर्थात मैंने मार्ग आदर्श पर चलने का प्रयत्न नही साधना की है। मैं अज्ञान मैं।[2] यहाँ सुगाम की जीभ की फिसलन से उसके अन्तर्द्वन्द्व की जानकारी मिलती है। थोडी देर मे नेपथ्य मे कोलाहल होता है। सुसीम अन्य चार भाइयो सहित तलवार की नोक सामने कर झपटते हैं परन्तु अशोक गर्जन के स्वर मे उन्हे चुपचाप बिठाता है। अशोक को सुगाम की महत्त्वाकांक्षा विदित होती है। सुदत्त, सुबेल एवं सुहास अशोक के पक्ष का समर्थन करते हैं जिससे सुगाम का षडयन्त्र सदा के लिए फंस जाता है और पाटलिपुत्र को अशोक जैसा सम्राट प्राप्त होता है।

द्वितीय अंक

अशोक की पत्नी महादेवी और पुत्री संघमित्रा सिंहासन पर सुसज्जित तलवारों की आरती कर रही हैं। तदुपरान्त दोनो मे मरण का मार्मिक वार्तालाप होता है। इतने मे ही अशोक-पुत्र महेन्द्र एक भयानक समाचार लिए हुए प्रवेश करता है। उसके द्वारा विदित होता है कि उज्जयिनी और उसके समीपवर्ती अन्य राज्यो मे भयानक षडयन्त्र चल रहा है जिसका निर्माता

---

1 डा० रामकुमार वर्मा विजय पर्व, अष्टम् संस्करण, पृ० १९

2 विजय पर्व, पृ० ३२

सुगाम है। सभी बातो की जानकारी लेने के बाद महादेवी महेन्द्र मे कहती है, 'महेन्द्र ! क्या राजनीति कभी विश्राम नही लेती ? जीवन की स्वाभाविकता इस राजनीति स इस प्रकार आहत हो जाती है जिस प्रकार इस फूल का हृदय सुइ की नोक से बिधा हुआ है। फूलो की माला की भाति राज्यश्री भी वभव की माला बनाती है कि तु माला मे बिंधे हुए फूलो म वह सौदय कहा ! जो म द वायु म झूमते हुए लता की गोद म है। यह राजनीति तो ऐसी मगतृष्णा है जिमसे आँखो को आशा का सदश तो मिलता है किन्तु कण्ठ सूखा रह जाता है।'[१] महादेवी के इस का यात्मक वार्तालाप म उसके चेतन एव अचेतन मन का द्वन्द्व परिलक्षित होता है। इसके बाद अशोक वहाँ पधारता है। वह अपन पुत्र महे द्र को विद्रोह का दमन करन के लिए उद्यत करता है। इतन म ज्योतिषी के आगमन की वार्ता आ जाती है। अयान वह ज्योतिषी न होकर बुद्धिभद्र नामक अशोक का गुप्तचर है। वह एका त म अशोक को पश्चिम चक्र की सभी वार्ताएँ कथित करता है। सुगाम अशोक वध के षडयन्त्र म असफल होने के बाद अशोक न उसे क्षमा कर पश्चिम चक्र का शासक बनाया, किन्तु सुगाम की सिंहासन पर बठने की लालसा कम नही हुई। क्योंकि इस प्रवत्ति ने उसकी प्रकृति में आदता का लचीलापन निमाण किया है। बुद्धिभद्र द्वारा अशोक को विदित होता है कि सुगाम प्रजा पर अत्याचार कर रहा है, कलिंग नरेश का उज्जयिनी म आमन्त्रित कर उसे धन राशि समर्पित कर रहा है, हाल ही मे वह बौद्ध वेश मे पाटलिपुत्र पधारा है। तदुपरा त अशोक बुद्धिभद्र से कहता है 'मैं यह जानना चाहता हू, बुद्धिभद्र ! कि कुमारामात्य सुगाम को अपने आप पर विश्वास क्या नहीं है ? वे भी तो सम्राट बिन्दुसार के पुत्र हैं। यदि व विद्रोह करना चाहते हैं तो छद्मवेश की आवश्यकता नही है। साहसहीनता का नाम ही छद्मवेश है।'[२] यहाँ पर रेंक के आसार अशोक म प्रतिस्पर्द्धात्मक इच्छा (Competitive Will) परिलक्षित होती है। इतन म ही एक युवती सिसकते हुए प्रवश कर पाटलिपुत्र के सघाराम की अशान्ति की जानकारी अशोक को देती है। इस अक के अ त म बुद्धिभद्र को सनिको के साथ भिक्षुवेश म कुमारामात्य सुगाम को बन्दी बनाकर अशोक क सम्मुख उपस्थित करता है। अशोक व्यग्यपूर्ण चुभने शब्दों मे सुगाम की भत्सना करता है। इससे वह द्व द्व युद्ध के लिए उत्तेजित हो जाता है। आखिर कलिंग नरेश को रण निमन्त्रण दिया जाता है।

---

१ विजय-पर्व, पृ० ५४
२ वही, पृ० ६७

ग ल्हाहृक तथा बुद्धिमद्र अनाक क एकनिष्ठ एर क्तव्य तत्पर अधिकारी हैं। महात्वा क्रम्णा एग उदार अ त करण की साक्षात प्रतिमा है। वह अपन पनि के साथ म तादात्म्य हो गइ ह। चारुमित्रा की स्वामी भक्ति तथा दश निष्ठा भलान म भी भूली नही जाती।

विजय पव क कथोपकथन प्रभावपूर्ण एव दर्शकों की उत्सुकता को बढ़ान वाल हैं। काव्यत्व होत हुए भी इनम दुरूहता एव जटिलता महसूस नही होती। यथा—

सुवाम–मैं आक्रमण तो करूगा ही अनाक ! पहल यह जानना चाहता हूँ कि अमात्य ग ल्हाहृक और अगरमक चडगिरिक कहाँ हैं ?

अनाक–दो मान्या क बीच म कोई बाहरी व्यक्ति नही होना चाहिए सुवाम। इसीलिए दोना को ही यहा रहन की अनुमति मैंन नही दी। अब यहाँ कवल मैं हू और तुम हो। हम दोनो का जीवन जीवन है कोइ प्रदर्शिनी नहीं जो बाहरी व्यक्ति दखें।

सुवाम–अनाक ! तुम जानत थ कि मैं यहाँ आन वाला हूँ ?

अनाक–निस्सन्दह ! मैं अपन अन्य मादयो की भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। व सब कहा हैं ?

सुवाम–वहा दूर नही होग कि तु जानत हो इसका परिणाम क्या होगा ?

अनाक–भाइयो क मिलन का परिणाम बुरा नही होता यह मैं जानता हूँ।[1]

उपयुक्त कथोपकथन म अनाक क नतिकाह (सुपर इगो) का परिचय मिलता ह और सुवाम क इड क आधीन होना।

पात्रानुकूल काव्यत्व म आनप्रान भाषा इस नाटक का असामा य गुण ह। इस नाटक की भाषा म हास्य व्यग्य एव उक्ति वचित्र्य का आविष्कार भी दिखाइ दता ह। जस—

(१) मैं पूछना चाहता हूँ कि यह कल्पना का सत्य है या सत्य की कल्पना !

(२) एक राजनीतिक बन्दी के साथ द्वन्द्व युद्ध करना मरी मर्यादा क विपरीत है। पहल मरी आगरक्षिका चारुमित्रा स द्वन्द्व करो। चारुमित्रा स ! कर सकत हो सुवाम ? चारुमित्रा स द्वन्द्व-युद्ध कर सकत हो ?

(३) मैं वीर नहीं ह क्योकि मैंन स्वय प्रजा पर अत्याचार नही किए और मैं वीर इसलिए नही हूँ कि मैंन मगध की मर्यादा कलिंग

---

१ विजय-पर्व पृ० ३०

की सेवा म अर्पित नही की ! और वीर इसलिए भी नही
हूँ कि मैंने चारुमित्रा को कोई प्रलोभन नही दिया ! सुगाम ।[१]

इस नाटक की भाषा म यत्र तत्र काव्यत्व भी परिलक्षित होता है। जसे--

(१) तो राज धम भी कैसा है कि उसन अपन सम्राट की परीक्षा लिए बिना ही उसे सम्राट बना दिया ? नदी की गहराई परखी ही नही और उसमे अपनी विशाल नौका छोड दी ?

(२) आत्मविश्वास जीवन के सत्य को पहचानने का बीज मन्त्र है और जीवन का सत्य किसी एक व्यक्ति का धन नहीं है वह मानव-मात्र का अखण्ड वभव है।

(३) फूलो की माला की भाति राज्यश्री भी वभव की एक माला,बनाती है किन्तु माला म बिंधे हुए फूलो म वह सौ दय कहाँ ? जो मन्द वायु मे झूमते हुए लता की गोद मे है।

(४) विद्रोह किसी आज्ञा की भिक्षा नहीं मांगता। राज्यद्रोह धूमकेतु है जिससे ताराओ की कान्ति धूमिल पड जाती है।

(५) कौन जानता है कि भविष्य का कितना रहस्य किसी ज्योतिषी की वाणी म वट वक्ष के बीज की भांति सचित रहता है !

(६) स्त्री, स्त्री है। उसके करुण क्रन्दन के लिए राज वग के प्रत्येक व्यक्ति की सहानुभूति कुबेर के कोष की भांति समृद्धि शालिनी हो।[२]

अलकार मनोविज्ञान पर आधारित भाव की प्रतिक्रिया के रूप म प्रयुक्त होते हैं। इस नाटक मे कई अलकार सहजता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के तौर पर--

(१) थोडी देर अमात्य पद को सध्या म बादल की भांति राग रजित हो लो।

(२) अन्यथा बढ़ती हुई आग की लपटो की भांति वे राज मर्यादा की फूलती हुई बलों को झुलसाने रहेंगे।

(३) वह अश्रुधारा नहीं थी अग्नि की रेखा थी, जो अपन तो तरल बूँदो म छिपाकर वज्र की तडप बनने का स्वप्न देखती थी।[३]

(४) यह गोदावरी का सुरम्य तट ये पानी की लहर जसे सौन्दर्य की

---

१ विजय पर्व, पृ० क्रमश ६७, ८१, ८२

२ वही, पृ० क्रमश २८, ४१, ५४, ५८, ५९, ७०

३ वही, पृ० क्रमश २१, २७, ५२

मालाए ना जो धाग म आग गुँथकर वहा होती हैं और तट पर किसी का हृदय न पाकर टूट जाती हैं।

(४) कलिंग राज्य के पर फूल की पखुड़ियों की तरह गिर रहे हैं।[1]

विजय पर्व की सूक्तियों में भावों का सुस्पष्ट एवं यथार्थ दर्शन होता है। उदाहरण के लिए—

(१) यह अन्तर्विद्रोह विपक्षियों की हिंसा से भी भयानक है।

(२) क्रोधाग्नि में क्रोध करने वाला व्यक्ति भी भस्म होता है।

(३) मनुष्य की शक्ति अन्तिम सीमाओं में शोभा नहीं पाती। अन्तिम सीमाओं को सन्तुलित करने में शोभा पाती है।

(४) राज्य में विद्रोह स्वार्थ के पैरों पर खड़ा होता है।

(५) अधिकार को विद्रोह का खिलौना मत बनाओ।

(६) साहसहीनता का नाम ही उपदेश है।

(७) नारी जब रुदन करती है तो करुणा का समुद्र अपनी आँखों में भर लेती है। कौन कह सकता है कि उसके आँसू सत्य के साक्षी हैं या मिथ्या के अग्रदूत!

(८) जीवन भी तो एक लड़ाई है। पुरुष की स्त्री से लड़ाई, स्त्री की पुरुष से लड़ाई। स्त्री पुरुष की पुरुष स्त्री से लड़ाई।

(९) युद्ध भूमि के अतिरिक्त प्रत्येक भूमि नारी के लिए कर्म भूमि है।

(१०) राजनीति दर्शन नहीं है जो क्षमा में तरल हो जाय!

(११) ज्ञान अमर है राज्य क्षणभंगुर है।

(१२) माता का हृदय संसार के किसी वैभव से नहीं तुल सकता। वह सबसे बड़ा है।[2]

अतः अन्त में हम यही कहना चाहते हैं कि इस नाटक पर मनोविश्लेषण एवं आचरणवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

कला और कृपाण

डा० रामकुमार वर्मा ने कला और कृपाण के द्वारा कौशाम्बी नगर के पांडव वंशीय महाराज उदयन का यथार्थ चित्र खींचा है। उदयन एक कुशल योद्धा होने के साथ ही वीणा वादन की कला में अद्वितीय था। महाराज

---

१ विजय पर्व, पृ० क्रमशः १०० १२५

२ वही पृ० क्रमशः २५ ३१ ३३, ३५ ३७, ६७, ७१ ९६ १०६, ११२, १२६ १३१

उन्यन के जीवन से सम्बन्धित यह कृति अपनी सांस्कृतिक महत्ता भी रखती है।

प्रथम अक

महाराज उदयन आखेट के बहाने अपने सेनापति के साथ विन्ध्य-भूमि के एक वन में आया है, जिसका पथ दर्शन शेखरक और शखचूड करते हैं। शेखरक उन्यन की भांति भावुक तो शखचूड कोरा नीतिज्ञ है। दूर से किसी स्त्री की पग ध्वनि को सुनकर शेखरक चन्द्रचूड से कहता है, तुम कदाचित अपनी स्त्री को शृगाल ही समझते होगे ! तुम नहीं समझते, शखचूड ! इसी लिए तो म निझर के समीप बठना चाहता था कि उस स्त्री से दो क्षण कुछ बातें होती। निझर की बहती हुई लहरो म उसका प्रतिबिम्ब सौगुना सुन्दर होता। जलराशि म तरगित होता हुआ उसका रूप ऐसा लगता कि पथ्वी मे स्वग निवास कर रहा है।'[1] इससे शेखर की कामुक वत्ति पर प्रकाश पडता है। वह स्त्री मजुघोषा नामक किरात कन्या होती है, जिसकी पालिता सारिका सम्राट उदयन के शब्दवेधी बाण से आहत हो गई है। इसी कारण मजुघोषा क्रोधित हो उठी है। तदुपरान्त मजुघोषा अमात्य के सम्मख अभियोग रखकर न्याय की प्राथना करती है। उसे यह मालूम नहीं कि आखेटक के वेश मे उन्यन सम्राट ही उपस्थित है। अपना दुःख एव उद्वेग प्रदर्शित करने के उपरान्त मजुघोषा उदयन से कहती है 'तुम्हारे बाण तीक्ष्ण हैं किन्तु तुम्हारी वाणी कोमल है। और और तुम्हारे मस्तक का यह चिह्न सूचित करता है कि तुम भी कभी क्षत विक्षत हुए होगे। इसीलिए तुम्हारी वाणी म कोमलता और सहानुभूति है। यदि यह सत्य हो तो बोलो, मेरा न्याय कर सकोगे ? कर सकोगे मेरा न्याय ? मेरी सारिका को पुन जीवित करो ! कर सकते हो।'[2] यहाँ मजुघोषा के अचेतन मन का प्रभावी आविष्कार हुआ है। साथ ही वह उन्यन की ओर आकृष्ट हुई परिलक्षित होती है। अपने मनोभावो को प्रकट करते हुए वह उदयन के सन्दभ (उसकी दृष्टि म आखेटक) यौगधरायण से कहती है, यह आखेटक विचित्र है। यह पक्षियो का ही नहीं, नारियो का भी आखेट करता है। और, यह मेरा दूसरा अभियोग होगा। म कल महाराज उदयन की सेना म अवश्य ही जाऊँगी।''[3] यहाँ पर नाटककार ने प्रेमासक्त नारी का मनोवैज्ञानिक दर्शन कराया है। इस अक के अन्त मे अमात्य यौगध

---

१ डॉ० रामकुमार वर्मा कला और कृपाण ततीय सस्करण पृ० ५

२ वही पृ० २१

३ कला और कृपाण, पृ० २२

रायण मजुघोषा को न्याय के लिए कौशाम्बी मे उपस्थित रहने को कहता है।

द्वितीय अंक

यह अंक कौशाम्बी के राजप्रासाद मे प्रारम्भ होता है। वासवदत्ता उदयन की प्रतीक्षा मे है। इतने मे ही सुहासिनी उदयन के आखेट से लौटने की वार्ता देती है। उदयन को देखकर सुहासिनी वासवदत्ता से कहती है "महादेवी की जय हो! महाराज भी यहाँ शीघ्र ही आ जाते। किन्तु वे वक्ष द्वार के स्वर्ण पिंजर मे बैठी हुई सारिका को देखकर न जाने क्या कुछ कहने के लिए रुक गये। अनिमेष नेत्रों से वे सारिका को देखते रहे फिर उन्होने एक ठण्डी साँस लेकर दूर क्षितिज की ओर देखा और सिर झुकाकर न जाने किन विचारो मे लीन हो गए।" यहाँ नाटककार ने सुहासिनी के द्वारा उदयन के संवेदनशील हृदय की एक उसके अन्तर्द्वन्द्व की झाँकी दिखायी है। तदुपरान्त वासवदत्ता तथा उदयन के बीच हुआ वार्तालाप देखने लायक है।

वासवदत्ता–यदि मैं यह निवेदन करूँ आर्य! कि जिस मात्रा मे यह वत्स-राज्य विशाल होता जा रहा है उसी मात्रा मे मैं लघु होती जा रही हूँ?

उदयन–महादेवी! तुम लघु होती जा रही हो? क्यो? जिसकी सुघोषवती वीणा के स्वरो के लिए ससार की सीमाएँ छोटी हो गयी हैं, जिसकी कीर्ति गाथा के सूत्र मे उज्जयिनी और वत्स एक हो गये हैं वह लघु कैसे हो सकती है महादेवी?[1]

इससे स्पष्ट होता है कि उदयन के मन मे महादेवी के प्रति सम्मान की भावनाएँ हैं जो उसके नैतिकाह (सुपर इगो) की परिचायक हैं। तत्पश्चात उदयन विगत घटनाओ की वासवदत्ता को जानकारी देता है। साथ ही साथ मजुघोषा के अभियोग का निर्णय भी उसी पर सौंप देता है। यहाँ उसका मजुघोषा के प्रति आकर्षण भी ध्वनित होता है। उसके आने की सूचना मिलते ही वह समीप के कक्ष मे चला जाता है। मजुघोषा वासवदत्ता के सम्मुख उस आखेटक की प्रशंसा करती है। थोडी देर बाद उदयन वहाँ आता है। मजुघोषा को पहचानते देर नही लगती। उसे उसी क्षण अपनी भूल का पता लग जाता है कि उस दिन उसकी सारिका के आखेटक महाराज उदयन ही है। वह उनकी क्षमा माँगती हुई दोनो के सम्मुख कहती है "मेरा अभियोग मुझे लौटा दीजिए महाराज! मै किसी प्रकार का न्याय नही चाहती, किसी प्रकार का

१ कला और कृपाण, पृ० २७

२ वही पृ० २८–२९

याय नहा चाहती । आप वे चरणा पर म सहस्र सारिकाएँ निछावर कर सकती हूँ । ओह ! न जाने मैंने कितने अपशब्दो का प्रयोग किया, देवि ! मैं आप से क्षमा की भिक्षा माँगती हूँ । महाराज से मने न जाने कितने अपशब्द कहे होंगे ! मेरी सारिका का रक्त आँखो म क्रोध बनकर समा गया था । म क्या जानती थी कि उस वन खण्ड म मेरे समक्ष स्वय महाराज खड़े हुए हैं ! महादेवी ! म कितनी धन्य हूँ कि उस समय महाराज न मुझे कितना आदर दिया था, और पापीयसी पापीयसी ।[1] इस विस्तत वार्तालाप मे मजुघोषा का अहम (इगो) जाग्रत होकर उसकी रक्षा करना चाहता है और साथ ही साथ उसकी हीनता ग्रथि भी उसे बार बार विघ्न कर रही है । तदुपरा त उदयन निणय देता है कि मजुघोषा महारानी वासवदत्ता की प्रमुख सहचरी के रूप मे राजभवन मे निवास करे । वासवदत्ता भी इस निणय का स्वागत करती है और मजुघोषा स्वय को कृताथ समझती है । उदयन आन दा तिरेक से हस्तिकर्ण द वीणा मे अपने हृदय का उल्लास मुखरित करना चाहता है इतने में ही महाराज दशक का सदेश लिए दूत का प्रवेश होता है । सदेश सुनते ही उदयन कला का साधना के स्थान कृपाण की साधना के लिए उद्यत होता है । उसी क्षण वह अरुणी के आक्रमण का समाचार लेने के लिए चल पडता है । वासवदत्ता शुभकामनाएँ प्रदर्शित कर कहती है "महाराज की कला और कृपाण अमर हो ।"[2] उदयन की इस कृति म यु ग प्रणीत वहिमु खी चि तन प्रकार (Extroverted Thinking Type) का व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है ।

तृतीय अक

कौशाम्बी के राजप्रसाद म इस अक की शुरूआत होती है । उदयन अरुणी को पराजित कर कौशाम्बी लौटन का समाचार आया है । वासवदत्ता एव सामावती सिंहासन को पुष्प मालाओ से सजा रही हैं । उन दानो के सम्भाषण उनकी खुशी का परिचय दे रह हैं जिनम कामज य भावनाओ का भी प्रस्फुटी करण है । मजुघोषा भी उनके बाह म बाह मिलाकर, फूलो की माला लेकर तथागत क दशन क लिए चली जाती है । इतन मे ही उदयन का आग मन होता है । पर तु थोडा दर म ही उस कनकवती के विद्रोह को अशा ति मिटाने के लिए अपनी सना का निरीक्षण के हेतु जाना पडता है । इसी समय तथागत गौतम क आन की सूचना मिलती है, जिसस उदयन क्षुब्ध हो जाता

१ कला और कृपाण, पृ० ४.

२ वही, पृ० ४७

है। उसकी दृष्टि म जहाँ कृपाण होना चाहिए वहा भिक्षा पात्र आना खतर नाक है इस अवसर पर उसका स्व वातालाप मनोवज्ञानिकता की दृष्टि से द्रष्ट य है।

उदयन तथागत । *शाति और अहिंसा का उपदेश करते हैं। सोती हुई* निरपराध पत्नी को छोडकर जो कमयोग से भाग वे किस अहिंसा का उपदेश देंगे । अपन अबोध शिशु पर भी जि ह दया नही आई, वे किस शाति का उपदेश करेंगे ? भगवान राम वन म गए व अपनी पत्नी सती सीता को भी साथ ले गये। कि त भगवान तथागत वन म गए चोरी स और अपनी पत्नी सती यशोधरा को जीवन भर रोने के लिए छाड गए । यह कसा धम है । यह कसी शाति है । जिसे कमयोग म अनुरक्त रहना चाहिए वह निर्वाण म अनुरक्त है। कायर शाक्य कुमार । तुम क्षत्रिय होकर युद्ध म आसक्त नहा हो सके ? धम । शाति । अहिंसा । इसका प्रचार तो यशोधरा को करना चाहिए तुम्ह नही ।[1]

इस सवाद स स्पष्ट है कि उदयन में फ्रायड प्रणीत धम और सस्कृति का अत्यधिक प्रभाव है। फ्रायड ने यह सिद्ध किया है कि धम की परिकल्पना मनुष्य के अपराधी मन का विकृत उपज है जिसका इस वातालाप म प्रति पादन हुआ है। *उदयन सनापति रुमण्वान स परामश करता है और गौतम का* कौशाम्बी में बढता हुआ प्रभाव नष्ट करने का दढ निश्चय करता है। वह गौतम के वध क लिए शर वधी बाण छोडता है परतु वह तथागत को न लग मजुघोषा का लगता है। बाण के लगत ही जनता उत्तेजित होकर उदयन के राजप्रासाद की ओर उमड पडती है। उनम भीड का समान सवग (A common Emotion) निमाण हाता है कितु तथागत सब को शात रहन को कहत हैं। तथागत क आदेश स जनता एक कदम भी आग नहीं बढती। इसी कारण उदयन क अचतन मस्तिष्क म प्रभाव पडता है। प्रक्षेपण प्रक्रिया स उसका नतिकाह (सुपर इगो) जाग्रत हाता है। उसका धम विरोध लुप्त हो जाता है। आखिर फ्रायड प्रणीत धम कल्पना पर भारतीय धम कल्पना की विजय होती है। तथागत की वाणी गूज उठती है आयुष्मन । 'दण्ड' दण्ड कहना तथागत का धम नहीं है, कम कम कहना ही तथागत का धम है । काम कम, वचन कम, मन कम । काम कम और वचन-कम स मन-कम

१ कला और कृपाण, पृ० ६१

श्रेष्ठ है।"[1] इधर भारतीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मन की कल्पना दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने सभी इद्रियों से मन को पृथक माना है। क्योंकि मन का विषय मूर्त और अमूर्त दोनों है। इद्रियाँ नियत विषय को ग्रहण करती हैं और मन अनियत विषयों को ग्रहण करता है। इद्रियों में विचार करने की ताकत नही है, बल्कि मन में विचार करने की शक्ति है।[2] तदुपरान्त उदयन बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लेता है। धर्म चक्र प्रवर्तन के साथ अंतिम अंक समाप्त होता है।

उदयन इस नाटक का नायक है। कला और कृपाण क्रिया में उसका समान प्रभुत्व है। उसके व्यक्तित्व में साहस सौंदर्य, रसिकता, कला आदि गुणों की प्रतिष्ठा समान रूप से हुई है। तथागत में आस्था व संयम तथा अपने धर्म पर अटूट श्रद्धा दिखाई देता है। वासवदत्ता जैसी वीणा में प्रवीण है वैसी ही जीवन यापन में। अपने पतिदेव के कार्य का वह सदव प्रेरणा प्रदान करती है। सामावती एवं मजुघोषा से द्वेष न कर उनके साथ सौहार्द्र पूर्ण व्यवहार रखती है। मजुघोषा पहाडी प्रदेश में पलकर भी सद्विचारी है। सामावती धर्म प्रवण एवं सच्छील युवती है।

कला और कृपाण के कथोपकथन सरल संक्षिप्त ओजपूर्ण एवं पात्रानुकूल हैं। सवाद अधिक सफल निर्दोष, मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक बन पडे हैं। उदाहरण के तौर पर–

सामावती–(हँसकर) आप की बाहु लता। उसका स्थान पुष्पमालाएँ ग्रहण नही कर सकती बहिन! सजीव कठ के लिए तो सजीव बाहु लता ही चाहिए।

वासवदत्ता–वह अधिकार तो मैंने तेरे लिए छोड दिया है।

सामावती–मेरे लिए?

वासवदत्ता–और क्या! बाहु लता जितनी ही नवीन होती है, उसकी सुगन्धि उतनी ही मादक होती है।

सामावती–मेरी सुगन्धि क्या! मैं तो एक साधारण श्रेष्ठी कन्या हूँ।

वासवदत्ता–श्रेष्ठी-कन्या क्या यदि तू किरात कन्या भी होती तो आर्य की दृष्टि में तू महान होती।[3]

उपर्युक्त कथोपकथनों में वात्स्यायन के काम सिद्धान्त का यथार्थ निरूपण हुआ है।

---

१ कला और कृपाण, पृ० ८१

२ मु० सूरसिंह महाराज भावमनोमीमासा प्रथमावृत्ति पृ० ३४

३ कला और कृपाण, पृ० ४९–५०

इस नाटक की भाषा अत्यन्त सरल, प्रवाहपूर्ण एव काव्यात्मक है । भाषा के परिष्कार के साथ आजकल मुहावरो तथा कहावतो का अधिक प्रयोग भाषा से हटने लगा है इसकी प्रतीति इस नाटक की भाषा म आती है । हास्य व्यंग्य, उक्ति वचित्र्य आदि के सहारे इस नाटक की भाषा अधिक सम्पन्न बन गई है । जसे-

(१) मैं समझ लेता हू कि पूव की यह धूम राशि तुम्हारी किसी प्रयसी की बिखरी हुई केशराशि है जिसे छोडकर तुम राजनीति के पथ पर आगे बढ गये हो।

(२) निरीह प्राणियो का वध करने वाला आखेटक अपने प्राण दे सकता है ! ये छद्मवेशी नदी पथ हैं ।

(३) दुघटना ! दुघटना भी महाराज के लिए सुन्दर घटना हो जाया करती है।

(४) नर सन्धान के उपरान्त स्वर सन्धान अनुचित नहीं है ।

(५) आह तथागत ! अहिंसा का उपदेश इसी समय करना था जब मैं नगरवासियो के समक्ष दिग्विजय का आदर्श रखने जा रहा हू ?[1]

प्रस्तुत नाटक म भाषा का काव्यात्मक सौन्दर्य कई स्थानो पर दृष्टिगोचर होता है । यथा-

(१) मरी अभिलाषाओ का कमण्डल तुम्हारी राजनीति के तुषार से मरझाने के लिए ही खिलता है ।

(२) ऊपर मुक्त आकाश है जो स्वय कर्म वन सा है जिस पर सध्या समय राशि राशि तारका समूह अपना नीड बनाकर विश्राम करते हैं ।

(३) सूय के उदय की सूचना देने वाली उषा तो समस्त आकाश को राग रजित कर देती है और उदय होता सूय एक छोटी सी परिधि म ही सीमित रहता है ।

(४) मेरा श्राव वषा का भरा हुआ बादल हो जिसके मुख पर तो विद्युत की रेखा है । किन्तु भीतर सहानुभूति के जल का अपार कोष भरा हुआ है ।[2]

इस नाटक की भाषा म स्वाभाविकता को क्षति न पहुँचाते हुए अलकारो का भी निमाण हुआ है । उदाहरण के तौर पर-

(१) कितनी सुन्दर मछली है तुम्हारी राजनीति की भाँति यह मुँह तो

१ कला और कृपाण पृ० क्रमश ४ २१, ३० ३४, ५९

२ वही पृ० क्रमश ११, १४, २९, ३९

खोलती है किन्तु कोई ध्वनि नही सुन पडती ।

(२) निषाद स्वर की भाँति इसका तीक्ष्ण स्वर किसी शब्दवेधी बाण सा सीधा हृदय म प्रवेश करता है।

(३) मेरे लौह पाश स खिचकर अरुणी जस ही अस्त होते हुए सूय की भांति नीच आया।[1]

सूक्तियो के प्रयोग म मनोविज्ञान के साथ अथ गाम्भीय भी दिखाई दता है। जस–

(१) प्रतिशोध ल्न म भी शान्ति की आवश्यकता होती है।

(२) राजनीति व्यक्ति को नही देखती अपनी सिद्धि को दखती है।

(३) सप दशन पर बदिचक का दशन कष्टप्रद नही होता।

(४) उस बाण का प्रयोग बुरा है जो अपने लक्ष्य पर नही जाता।

(५) आत्म समपण सबस बडा याय है।

(६) कलाकार सीमाओ स प्रेम नही करता।

(७) याय और सहानुभूति एक दूसर के समथक नही हैं।

(८) न्याय की याचना दया से नही न्याय से होती है।

(९) अनासक्ति के बाण स जीवन का लक्ष्य वेध नही हो सकता।

(१०) बाण की शक्ति स एक निष्ठ हुए मन की शक्ति अधिक है।

(११) एक निष्ठ मन की शक्ति स अरण्य भी दग्ध हो जाता है।[2]

ऊपर के विवेचन का निष्कष यह है कि इस नाटक म फ्रायड की धम कल्पना एव भारतीय आचार्यों की धम कल्पना का यथाथ निरूपण हुआ है।

नाना फडनवीस

डा० रामकुमार वर्मा ने इस नाटक म महाराष्ट्र की अठारहवी सदी की राजनीतिक अवस्था का एक यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है जिसम आदश राजनीति के कुछ सकेत परिलक्षित होत हैं।

प्रथम अक

ताप्ती नदी के समीप बुरहानपुर म महाराष्ट्र क पेशवा बालाजी बाजी के शिविर म पेशवा बालाजी सनापति जनकोजी तथा सामत भास्करराव स वार्तालाप कर रहा है। सदाशिवरायभाऊ ने पानीपत के युद्ध मे दिल्ली पर विजय प्राप्त कर ली है परन्तु इस विजय के उपरान्त वह होल्कर नरेश एव

१ कला और कृपाण पृ० क्रमश ३ ४ ५७

२ वही, पृ० क्रमश ८, ११, १२, १८, २१, २९, ३९ ४३, ३१, ८३, ८५

भरतपुर नरेश के साथ अपमान का व्यवहार करता है। इसी कारण वे दोनों रुष्ट होकर उसके विरोध में हो जाते हैं। सदाशिवराव भाऊ हठ का यह कुप्रभाव है। इस संदर्भ में बालाजी जनकोजी से कहता है यह पानीपत का युद्ध है जनकोजी! इसी में महाराष्ट्र के भाग्य का निर्णय है। अफगानिस्तान का अहमदशाह अब्दाली महाराष्ट्र का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता इसीलिए वह अवसर देखकर आता है। और मैं कहता हूँ कि शत्रु को अवसर देना ही राजनीति की सबसे बड़ी भूल है। तुम जानते हो जनकोजी! शत्रु के आने का अवसर क्या है? अवसर है हमारी परस्पर की फूट! जब हम छोटी-छोटी बातों पर राष्ट्र की रक्षा भूल जाते हैं तब हम जंगली जानवरों की तरह अपनी-अपनी माँद अलग बनाते हैं और व्याघ्र हमें एक एक कर समाप्त कर देता है।[1] यहाँ बालाजी के व्यक्ति के मस्तिष्क फोम के अनुसार इतिहास का दर्शन (Philosophy of History) परिलक्षित होता है। तदुपरान्त भगवान गजानन की आरती दो बार बुझने से बालाजी के मन में कई कुतर्क निर्मित हो जाते हैं। इतने में ही एक स्त्री क्रन्दन करती हुई आती है। वह अपने पुत्र पाण्डुरंग के पानीपत में मारे जाने के कारण पेशवा के सामने अश्रुपात करती है। विपत्काल में भी बालाजी उस स्त्री का उत्साह एवं साहस का परिचय देता है। इसी बीच कासिद पानीपत में युद्ध में मराठों की हार तथा पेशवा पुत्र विश्वासराव की मृत्यु का वार्ता लेकर आता है जिससे बालाजी पर वज्राघात होता है। वह अपने मन के अन्तर्द्वन्द्व के अधीन हो जाता है। थोड़े ही दिनों में वह चल बसता है। उसके पीछे उसके आशास्थान हैं—उसके द्वितीय पुत्र माधवराव एवं उसके विश्वासी नाना।

द्वितीय अंक

बालाजी के उत्तराधिकारी के रूप में माधवराव महाराष्ट्र का सिंहासन विभूषित करता है। नाना फड़नवीस एवं न्याया मूर्ति शास्त्री उसकी सहायता करते हैं। पानीपत के दूब पन के पुन आवर्तन की ओर संकेत किया जाता है। इतने में ही नारायणराव तथा उसकी पत्नी गंगाबाई वहाँ आ जाते हैं। रससिक्त एवं तर्कपूर्ण संवादों में प्रेम तथा विवाह के बारे में भारतीय उदात्त कल्पना का परिचय मिलता है। गंगा व्यवहारकुशल नारी है। वह अपने पति की सारी देखभाल रखती है। वह उसे काका रघुनाथराव के यहाँ न जाने का अनुरोध करती है। नाना भी गम्भीरता के साथ यही आज्ञा देता

---

१ डा० रामकुमार वर्मा नाना फडनवीस १९६१, पृ० ६

है। इस अवसर पर नारायण उनसे कहता है, हो सकता है । तब तो नाना अब मैं काका के यहाँ नही जाऊँगा । गगा ! वास्तव मे तुम महान हो । अब तुम्हारी आज्ञा के बिना मैं एक पग भी बाहर नही रखूँगा । चलो, कहाँ ले चलती हो ?'" यहा नारायण का मानसिक क्लेश दृष्टिगोचर होता है, जो उसकी मानसिक प्रक्रिया (Mental Process) का परिचायक है। बीच मे ही रघुनाथराव की पत्नी आन दीबाइ का प्रवेश होता है। नाना उसे समझाता है कि श्रीमन्त नारायणराव का स्वास्थ्य आजकल ठीक नही है, पकवान खिलाने से उनका स्वास्थ्य और खराब हो जाएगा । पकवान मे विष डाल कर नारायण की हत्या का एक भविष्य सूचक स्वप्न भी वह उसके सम्मुख रखता है। रघुनाथराव और आन दीबाई पेशवा पद प्राप्त करने के लिए कई षड्यन्त्र आयोजित कर रहे हैं। इसी कारण नाना अपने आत्मनिवेदन मे कहता है 'राज्य मे भयानक षडयन्त्र चल रहे हैं। इनसे महाराष्ट्र को मुक्ति कब मिलगी । ' इससे नाना की नीतिनता और राजनीतिक अन्तर्दृष्टि पर प्रकाश पडता है। इतने मे ही पेशवा माधवराव हरिपन्त फडके के कंधे का सहारा लेकर वहाँ पधारता है। वह नाना की विलक्षण बुद्धि की प्रशसा कर उसे यथायोग्य पुरस्कार देने की कामना प्रदर्शित करता है। तब नाना नम्रता के साथ उनसे कहता है 'श्रीमन्त ! यह मेरी विलक्षण बुद्धि नही, यह आपका उत्साह साहस और प्रबल पराक्रम है जिसने महाराष्ट्र के एक छोर से दूसरे छोर तक एक नवीन चेतना का सृजन कर दिया है। आज पानीपत की एक हार, हजार जीता मे बदल गई है । पानीपत का प्रतिशोध लेने के सम्बन्ध मे आपका जो प्रण था वह उसी प्रकार पूर्ण हुआ है जिस प्रकार वसन्त शिशिर से शीत का प्रतिशोध ले।'' इससे स्पष्ट होता है कि माधवराव का मस्तिष्क प्रयोजन के अनुसार कार्य करता है जो प्रेरकीय मनोविज्ञान (Hormic Psychology) का परिचायक है। स्वास्थ्य के अभाव के कारण माधवराव मे असह्य वेदनाओ को सहने की क्षमता नही रही है। इसी कारण वह विवश होकर अपने महाराष्ट्र को सुरक्षित रखने के लिए भगवान गजानन से प्रार्थना करता है। वह अपने वात्सल्य स्नेह से काका रघुनाथराव एव काकी आन दीबाई को महाराष्ट्र की सुरक्षा के लिए अपने पग मे कर लेता है पर तु उनकी राज्य लिप्सा ने उनके प्रभावी हृदय ने माधवराव और उसके छोटे भाई नारायणराव का प्रतिशोध ले लिया।

१ नाना फडनवीस पृ० ३४।

२ वही पृ० ३८,

पृ० ६९

(Theory of Neurosis) की परिचायक है । रामशास्त्री की न्यायनिष्ठा इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है । गंगाबाई पेशवा कुल की रक्षा के लिए अपने मन की असह्य वेदनाओं का चुपचाप सह लेती है ।

इस नाटक के कथोपकथन पात्रानुकूल, संक्षिप्त, हृदयस्पर्शी एवं मनोविज्ञान से परिचालित हैं । उदाहरण के तौर पर–

नाना––श्रीमंत ! आपके नेत्र कितने हैं ?

नारायण––दो

नाना––और उन दो नेत्रों की दृष्टि ?

नारायण––एक

नाना––इसी तरह आप दो है किन्तु दृष्टि एक है ।

गंगा––धन्य हो, नाना ! आपने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया ।[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों में विशेषकर नाना के व्यक्तित्व में गेस्टाल्टवाद की झाँकी परिलक्षित होती है ।

प्रस्तुत नाटक की भाषा सरस प्रवाही और सवादसुन्दर है । भाषा का काव्यात्मक परिवेश देखने लायक है । जैसे––

(१) मुझे वसन्त ऋतु अच्छी लगती है, कोकिल की कूक से तन मन सिहर उठता है । तुम्हें वर्षा ऋतु अच्छी लगती है पपीहे की पिऊ कहाँ में तुम्हारा मन रमता है । दो ऋतुएँ, दो पक्षी, दो शरीर, दो मन ।

(२) कामदेव कितना बड़ा कलाकार है कि एक आंसू से आँधी उठा देता है और एक मुस्कान से महल बना देता है । महल ... ।

(३) पूर्णिमा के अनन्तर चन्द्रमा की कलाएँ भी तो घटने लगती है ।

(४) क्या आप चाहती हैं कि चन्द्र की कला डूब जाय जिससे अन्धकार में चोरों को चोरी करने का अवसर मिले ।[2]

अलंकारों के सहज प्रयोग होने से भाषा में सजीवता एवं जिन्दापन आ गया है । जैसे––

(१) श्रीमन्त का शौर्य एक प्रलय के मेघ की भाँति बरसा ।

(२) जिस भाँति वर्षा के अनन्तर शरद ऋतु का आगमन होता है उसी भाँति पेशवा वंश की परम्परा चलेगी ।

(३) यह आश्वासन साध्य हो और अपने ही पक्ष में विलास करे जैसे शीतलता जल में निवास करता है ।[3]

---

१ नाना फड़नवीस पृ० ३१–३२ ।

२ वही, पृ० क्रमश, १०, ३४, ४१ ८९ ।

३ वही, पृ० क्रमश २८, ५२, ५४ ।

सम्भाषण से स्पष्ट होता है कि प्रताप मे स्वतन्त्र रूप से काय करने की इच्छा है जो सर्जनात्मक व्यक्तित्व (Creative Personolity) की परिचायक है तदुपरान्त मानसिंह द्वारा भावी युद्ध की जानकारी। प्राप्त होती है। प्रताप भी अकबर के विरुद्ध लडने की खासी तयारी करता है। इस सन्दर्भ म प्रताप भील सरदार एव झालौर सामन्त से कहता है 'अब हमे इन तीरो का प्रयोग युद्ध म करना होगा। झालौर सामन्त ! राजा मानसिंह के क्रोध की चिनगारियाँ जब यही पर फूट निकली हैं तो युद्ध की ज्वाला भडकने मे देर नही लगेगी। इसकी तयारी हम इसी क्षण से आरम्भ करनी होगी। '[1] कहना न होगा कि यह आत्माभिमान उसके देश प्रेम को दर्शाता है।

तृतीय अक

जावरा के पहाडी जगलो मे महाराणा प्रताप अपने युद्ध शिविर म अपनी रानी वीरम के साथ वार्तालाप कर रहा है। विपत्ति तथा कष्ट में भी रानी वीरम का उसे पूरा सहयोग प्राप्त होता है। उसके मन म अपने पति के प्रति सम्मान की भावनायें दृष्टिगत होती है। इसी कारण वह कहती है कि मेवाड ही वह ध्रुव नक्षत्र है जो किसी की शरण म नहा जा सकेगा। तब प्रताप वीरम से कहता है, 'तुम्हारे य शक्तिशाली वाक्य ही हैं वीरम जो युद्ध म मेरी तलवार की धार पर चढ जाते हैं और मैं राजपूती मर्यादा की रक्षा कर सकता हू, पर आज आज न जाने क्यो एक स्मृति उभर कर मुझे कष्ट दे रही है। मैं उसी चिन्ता म जल रहा हूँ। हाँ वीरम ! तुम्हे स्मरण होगा कि अरावली म अकबर के बिखरे हुए सनिको से अपनी रक्षा करते हुए हम लोगो ने लूहरा नामक स्थान म पाँचवी बार घास की रोटियाँ बनाई थी। हमारी छोटी बेटी देवला जब घास की रोटी खाकर अपनी दो दिनो की भूख शान्त कर रही थी तभी एक वनबिलाव न वह रोटी छीन ली थी। हाय ! मेवाड की राजकुमारी के भाग्य म दारुण भूख शान्त करने के लिए घास की रोटियाँ भी प्राप्त नही हैं। '[2] यहाँ स्मरण करने की क्रिया को विकसित करने वाली रुचि की तीव्रता या सजीवता का नियम (The Law of Vividness of the Intensity of Interest) परिलक्षित होता है। प्रताप अकबर से सिर्फ एक दो वर्ष ही नही तो पच्चीस वर्षों तक लोहा लेता रहा। अपने राज्य की आजादी कायम रखने के उद्देश्य से या प्रयोजन से प्रेरित होकर नव दीपक काय करता रहा जो प्रेरकीय मनोविज्ञान (Hormic Psychology) का

१ महाराणा प्रताप, पृ० ६३

२ वही, पृ० ७५

परिचायक है। इसके बाद सभी के सहयोग से मेवाड़ की मुक्ति के लिए पुन अभियान प्रारम्भ होता है। भामाशाह पितरों की सुरक्षित रखी सम्पत्ति महाराणा प्रताप को समर्पित करता है। नाटक के अन्त में प्रताप सभी के सम्मुख कहता है 'शक्तिसिंह, भील सरदार और भामाशाह! तुम लोग मेवाड़ के रत्न हो! भामाशाह द्वारा सुरक्षित सम्पत्ति तो निर्जीव सम्पत्ति है तुम लोग मेवाड़ के सजीव वैभव और शक्तिशाली स्तम्भ हो जिनका यश कभी धूमिल न होगा! इस सम्पत्ति से मेवाड़ की ध्वजा फिर एक बार आकाश में फहरायेगी। अकबर बादशाह का आक्रमण उतना दुखदायी नहीं है—बादशाह तो आक्रमण किया ही करते हैं—दुखदायी तो वे विश्वासघाती हमारे भाई हैं जो अपना कर्तव्य भूलकर अपनी ही मातृभूमि की परतन्त्रता के बीज बोते हैं। किन्तु वह दिन भी दूर नहीं है।'[1] प्रताप के इस महत्वपूर्ण सम्भाषण से स्पष्ट हो जाता है कि स्वार्थ लिप्सा तथा गृह-कलह मनुष्य के अधोगति की जड़ है। फिर भी प्रताप अपने आदर्शों एवं मान्यता के अनुसार कार्य करता रहता है जिसमें विधायक इच्छा का यथार्थ परिष्कार हुआ है।

इस नाटक का नायक महाराणा प्रताप है। वह आने वाली आपत्तियों को पैरोंतले कुचलकर अपना अंतिम ध्येय साध्य कर लेता है। वह मेवाड़ का जीता जागता आदर्श रूप है। अमरसिंह कर्तव्यतत्पर एवं आज्ञाधारक पुत्र है। जगमल एवं सगर स्वार्थी प्रवृत्ति के पात्र हैं जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए हीन कृत्य के लिए उद्यत होते हैं। राजा मानसिंह मेवाड़ की परम्परा को धूल में मिलाता है। उसका अकबर से जा मिलना देश के साथ द्रोह है। सामन्त राव झाला और सामन्त रामसिंह आदि की स्वामी निष्ठा श्रेष्ठ श्रेणी की है। भामाशाह आदर्श लोकोपकारी है जो विपत्तिकाल में संचित धन देकर अपना निहित कर्तव्य पूरा कर देता है।

इस नाटक के कथोपकथन की भाषा पात्रों के स्वभाव के अनुसार प्रयुक्त हुई है। पात्रों के संवादों में भावात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आलंकारिक शैली एवं व्यंग्यात्मक शैली का यथार्थ निरूपण हुआ है। उदाहरण के तौर पर—

जगमल— सगरसिंह! मेरी इच्छा है कि प्रतापसिंह के आने पर तुम मेरे साथ रहोगे।

सगर— मैं रहता तो अवश्य महाराणा जी! किन्तु मुझे पिता की याद आ

१ महाराणा प्रताप, पृ० ८८

रही है ।

जगमल- पिता की याद तो मुझे भी आ सकती है ।

सगर- किन्तु तुम अपने को सम्हाल सकते हो, क्योंकि तुम महाराणा हो ! प्रतापसिंह क्रोध में भरे हुए आ रहे हैं ! (नेपथ्य में देखता है ।) उनके साथ दो व्यक्ति और भी हैं । मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए क्योंकि मेरी पत्नी कहती थी कि जहाँ दो या तीन व्यक्ति आपस में बात करें वहाँ नहीं रहना चाहिए । फिर मैं अपने पिता की याद क्या करूँ ।[1]

उपर्युक्त संवादों से ज्ञात होता है कि सगर अपनी पत्नी पर निर्भर रहता है । अतः उसमें हार्नी के अनुसार अनुपालक (Compliant) व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है ।

प्रस्तुत नाटक का प्रत्येक पात्र अपने स्वभाव के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है और उस भाषा में का तत्व अधिक पाया जाता है । यथा-

(१) महाराणा के उत्तराधिकार की घोषणा ने जैसे उसके अभिमान में पंख लगा दिये हैं ।

(२) संध्या की लाली में उषा की किरण लाने की चेष्टा मत करो ! परिस्थितियों को समझकर ही कार्य की रूप रेखा बनानी चाहिए ।

(३) अग्नि की लपटें सर्पिणी की भाँति कण कण को दंशित करना चाहती हैं जिससे प्रकृति का अमृतकुण्ड सूख जाय और समस्त मेवाड़ एक मरुभूमि हो जाय ।[2]

राणा प्रताप में हास्य और व्यंग्य का सफल निरूपण हुआ है । जैसे-

(१) उस घोषणा में केवल कंठ है वह भी किसी दूसरे का कंठ है । हृदय नहीं है ।

(२) कितना अच्छा होता कि बयालीस वर्ष की अवस्था तक वे बीस युद्ध करते, पच्चीस दुर्ग जीतते और बीस राज्यों से मेवाड़ की सीमा बढ़ाते ।

(३) तुम्हारा संधि पत्र तो सम्राट अकबर की सेवा में नहीं पहुँच सका । अब सम्भवतः तुम्हीं अपने को उनके चरणों में अर्पित कर आना ।

(४) ये मनसब किस लिये बनाये गये हैं ? केवल इसलिए कि तुरक अपने ही वैभव में सात गुना या दस गुना अधिक दिखलाई दें ।[3]

१ महाराणा प्रताप, पृ० २९

२ वही, पृ० क्रमशः १३, ५९, ७३

३ वही, पृ० क्रमशः ७, ११, ३१ ५७

इस नाटक म प्रयत्त उक्ति वचित्र्य स मानवी प्रवृत्तियो पर प्रकाश पडता है । उदाहरण क तौर पर–

(१) क्या नही, सधि की बात चलानी पडगी । अगर युद्ध न हो तो सधि कसी ? और अगर सधि न हो तो ता युद्ध कसा ? दोना साथ चलत है जस जस पुरुष और स्त्री परन्तु युद्ध और स्त्री सधि ! ठीक है न ?

(२) अब महाराणा जगमल कुभलगढ़ क निखर पर बठकर मवाड क सूर्यास्त का दश्य दखना चाहत है । महाराणा जगमल ! हम लोग मयवनी हैं । इस सूर्यास्त क द य म कही हमारे यश का सूय ही न डूब जाय ।[1]

कई सूक्तियो द्वारा मनोभावो की यथाथ अभिव्यक्ति हुई है । यथा–

(१) राज्याधिकार करुणा के आँसुओ स नही लिख जात ।

(२) कठोर सत्य को क्रोध स नहीं छिपाया जा सकता ।

(३) जो काय शक्ति स सम्भव नही वह नीति से सम्भव है ।

(४) जो अपन स्वाथ मे अधा हो चुका है उस पर क्या प्रभाव पड सकता है ?

(५) स्वतन्त्रता का एक क्षण परतन्त्रता की शताब्दियो स भी महान् है ।

(६) बडा का वार बड हा जान सकत हैं ।

(७) जिस निमत्रण म सम्मान नही है वह भोजन भोजन नही विष है ।

(८) यदि सजन का गति न रहती तो तो इस परिवतनशील सष्टि का एक क्षण भी जीवित न रहता ।

(९) विपत्ति सम्ब पीछ मुडकर दखती है कि कुचली हुई वस्तु अपने रूप की प्रदशिनी कितन नए ढग स सजाती है ।[2]

निष्कषत यह कहा जा सकता है कि इस नाटक म सजनात्मक व्यक्तित्व का यथाथ निरूपण हुआ है ।

जौहर की ज्योति

प्रस्तुत नाटक सत्रहवी शताब्दी के मारवाड के इतिहास एव उसके आत्मसम्मान का एक अनूठा नमूना है ।

प्रथम अक

दिल्ली म मारवाड राज्य के महल म दुर्गादास तथा विजयसिह म वार्तालाप

---

१ महाराणा प्रताप पृ० क्रमश १७ २५

२ वही, पृ० क्रमश ७, ८, २४, २६, ३७, ४१, ५५, ७३, ७३

चल रहा है। दुर्गादास कहता है कि आज शक्ति की परीक्षा है, मुगल सेना के महासागर में राजपूतों का बड़वानल की भाँति कार्य करता है। विजयसिंह उसके हाँ में हाँ मिलता है। तदुपरान्त दुर्गादास विजय से कहता है "हाँ, कहा तो यही। ... किन्तु मैं जानता हूँ कि वे कैसा सम्मान करते हैं। काबुल में हमारे महाराणा जसवन्तसिंह को विद्रोही काबुल के सैनिकों को दबाने के लिए भेजा और जब उन्होंने उस विद्रोह को दबा दिया तो पुरस्कार स्वरूप विष देकर उनका बहुत बड़ा सम्मान किया।"[1] इसमें औरंगजेब की कुटिल नीति पर प्रकाश पड़ता है। इसके बाद दुर्गादास महारानी तथा अजीतसिंह का सुरक्षित महल में निकाल मेवाड़ ले जाने की योजना बना लेता है। अपनी कार्य पद्धति स्पष्ट करते हुए वह अहमदबेग से कहता है "दुर्गादास कभी कोई ऐसी बात नहीं कहता जिस पर उसने पूरी तरह विचार न कर लिया हो। मैं तुम्हारे बादशाह के इरादों को अच्छी तरह जानता हूँ। उन्होंने जैसा व्यवहार राजपूतों के साथ किया वह उनकी सारी सल्तनत की बुनियाद को उखाड़ने के लिए काफी है।"[2] यहाँ वाटसन के विचार सिद्धान्त (Theory of Thinking) का गहरा असर दृष्टिगोचर होता है।

द्वितीय अंक

मेवाड़ नरेश महाराणा राजसिंह के दरबार में दुर्गादास सामन्तगणों के साथ हाथ में कृपाण लिए उपस्थित है। राजसिंह दुर्गादास को कृपाण की भेंट देता है। आदर से कृपाण ग्रहण कर दुर्गादास राजसिंह से कहता है 'महाराणा! काबुल में कुमार पृथ्वीसिंह को जो राजसी पोशाक औरंगजेब ने प्रदान की थी वह विष से सींची गई थी। उसको धारण करते ही कुमार पृथ्वीसिंह भूमि पर गिर पड़े और थोड़ी देर में ही स्वर्ग चले गये। इस सूचना से हमारे महाराणा जसवन्तसिंह जी को ऐसा आघात लगा कि वे अस्वस्थ हो गये। उनकी अस्वस्थता में ही बादशाह ने उनके भोजन में विष मिलवाकर उनके प्राणों का अन्त कर दिया। उनके मरने से पूर्व मैंने उनकी शय्या के निकट ही शपथ ली कि मैं अपने जीवन पर्यन्त महारानी और कुमार की रक्षा करूँगा। मैंने प्रभुता का कोई कार्य नहीं किया।'[3] इससे दुर्गादास की स्वामीनिष्ठा एवं कर्तव्यनिष्ठा पर प्रकाश पड़ता है। तदुपरान्त राजसिंह उसकी रक्षा का अभिवचन देता है। बीच में ही एक स्त्री आकर महाराणा

---

१ डा० रामकुमार वर्मा जौहर की ज्योति, प्रथम संस्करण पृ० ३

२ वही, पृ० १०

३ वही, पृ० १८।

राजसिंह से रक्षा की प्राथना करती है। औरगजेब की नशसता के कारण सभी प्रस्न हो गये है। इसी कारण राजसिंह दुर्गादास से कहता है शत्रु से सघप प्रत्यक दिशा स होना चाहिए। चलो"[1] यहाँ उसकी इच्छा शक्ति (The will) मनोविज्ञान की दष्टि स दष्टव्य है।

तृतीय अक

मारवाड के दुगादास क शिविर म श्री माया ऊँचे आसन पर बठी है। दुगादास कृपाण लिये हुए टहल रहा है। इतने म ही औरगजेब का अकबर के नाम एक गुप्त पत्र मिलता है जिसस दुगादास का अकबर पर स भी विश्वास उठ जाता है। कुछ देर बाद अकबर अपनी बेगम तथा पुत्री सफीयत सहित आश्रय की खोज मे प्रवेश करता है। दुर्गादास एव अकबर दोना एक दूसरे पर सदेह प्रकट करते हैं पर तु अ त मे औरगजेब के छल और अविश्वास की जानकारी प्राप्त होते ही दोना का दिल साफ हो जाता है। इतने म महाराणा जसव तसिंह के पुत्र अजीतसिंह एव सफीयत की भेंट होती है। इस समय दोना के बीच हुआ वार्तालाप मनोविज्ञान की दृष्टि से दष्ट य है।

अजीत– यह लडकी तो बहुत अच्छी है। मैं इस बहुत प्यार करूँगा।

सफीयत–मरा नाम सफीयत उनिसा बानू है। तुम भी तो मुझ बहुत अच्छे लगते हो।

अकबर– अभी स ऐसा मल हो गया ? (दोना जाते हैं।)

दुर्गादास–बच्च बहुत जल्दी अपने मित्र बना लेते है। बडे लोग ही छोटी छोटी बातो पर एक दूसरे स शत्रुता मोल लेत हैं।[2]

यहाँ बाल मनोविज्ञान का सशक्त प्रयोग दिखाई देता है। बच्चो म होने वाली फ्रायड प्रणीत लिबिडो वत्ति विशेषत बाह्य वस्तु प्रेम अवस्था (Allo croticiom stage) यहाँ परिलक्षित होती है। साथ ही दुर्गादास के कथन स बच्चा के सवगा के नियत्रण के मार्गान्तरीकरण (Redirection) का परिचय मिलता है।

चतुथ अक

लूनी नदी क किनारे ध्रुव नगर के एक सुरम्य कक्ष म सफीयत एव उसकी सखी आयशा म तुलसी की पूजा का लेकर वार्तालाप चल रहा है। उससे सफीयत की भारतीय भक्ति भावना विदित होती है। सफीयत भले ही

१ जौहर की ज्योति, पृ० २७

२ वही, पृ० ४५–४६

मुसलमान पिता की पुत्री हो, किन्तु उसके संस्कार भारतीय हैं । अपने इस मत का परिचय कराते हुए वह आयना से कहती है "तो क्या चाचा दुर्गादास ने मुझे कुरान पढ़ने से रोक दिया है ? वे तो यही चाहते हैं कि मैं हदीस और कुरान पढ़ूं, लेकिन मेरा मन ही नहीं लगता कुरान पढ़ने में । मैं तो संस्कृत पढ़ती हूँ और देवी-देवताओं को मानती हूँ ।[1] यहाँ फ्रायड के अनुसार सफीयत में मानसिक दुर्बलता परिलक्षित होती है परन्तु भारतीय आचार्यों के मतानुसार धर्म मन को प्रबल बनाने का एक साधन है जो सफीयत में दृष्टिगत हो रहा है । इस बच के अन्त में अजीतसिंह सफीयत से मिलने के लिए आ रहे हैं, इसकी जानकारी होते ही आयना नींद आने का बहाना कर चली जाती है । कहना न होगा कि मनोविश्लेषण का यह अनूठा नमूना है ।

पंचम अंक

सफीयत अपने कक्ष में अजीतसिंह की प्रतीक्षा कर रही है । उनके आते ही वह कहती है कि आपके स्वागत में जीवन भर जागूँगी । इसमें उसके उदात्त एवं समर्पित प्रेम की जानकारी मिलती है । अजीतसिंह की दृष्टि में भी प्रेम और अनुराग किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं है । इन दोनों के वार्तालाप से उनके निस्सीम प्रेम का परिचय मिलता है । इतने में ही सुबह के चार बजे के घण्टे बजते हैं । दोनों सोचते है, रात जल्दी बीत गई । अजीत को चाचा दुर्गादास के जागने का भय है । कहना न होगा कि उसके मन के सामाजिक द्वन्द्व (Social Conflicts) का यह प्रभाव है । वह शीघ्रातिशीघ्र सफीयत से गान्धर्व विवाह करना चाहता है । दोनों मोतियों की माला एक दूसरे के गले में डालना चाहते हैं इतने में ही नेपथ्य से एक तलवार उभरकर दोनों मालाओं के बीच में ही सम्भाल लेती है । दोनों चौंक जाते हैं । तत्पश्चात् दुर्गादास का प्रवेश होता है। वह अजीत को एकान्त में राजपूती परम्परा का स्मरण करा देता है परन्तु अजीत का यौन आवेग तीव्र होने से वह दुर्गादास से कहता है 'किन्तु राजपूती सिंह के पुत्र को आप उसकी क्रीडा से नहीं रोक सकते । यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है यह मेरा स्वभाव सिद्ध अधिकार है, और वह अक्षुण्ण है क्रीडा अक्षुण्ण है बस आप नहीं रोक सकेंगे कोई नहीं रोक सकेगा ।[2] तदुपरान्त वह दुर्गादास को द्वन्द्व युद्ध का निमन्त्रण देता है इतने में ही सफीयत वहाँ आ जाती है और दुर्गादास के मत का समर्थन करती है । सफीयत के प्रति विश्वास प्रकट करते हुए दुर्गादास कहता है हृदय में आग लगानी पड़गी बेटा !

---

१ जौहर की ज्योति, पृ० ५८

२ वही, पृ० ९४

राजस्थान में शरीर के जौहर अनेक बार हुए हैं यह मन का जौहर होगा प्राणों का जौहर होगा।''[1] इससे सफीयत को जौहर की परम्परा (Tradition) का स्मरण होता है, और वह अजीत के साथ में हट जाती है। आनन्द विह्वल होकर दुर्गादास भी कहता है "सफीयत तुम – – तुम पर राजस्थान को गर्व होगा। तुम सदैव राजस्थान के क्षितिज पर ध्रुव तारिका बनकर अटल रहो। राजकुमार! तुम भी न शंकर देख रहे हो? नारी के जौहर की ज्योति देखो राजपुत्र! इस पूजा की शोभा देखो और इस शोभा की पूजा करो। *वीर राजपूत! महाराणा जसवन्तसिंह के दीपक के रत्न! इस पवित्रता के* पुण्य पथ में अपने मन से बढ़ो और विजय प्राप्त करो यह जौहर देखो! ऐसा जौहर अभी तक राजस्थान में नहीं हुआ। मानवता यह स्वर्गीय ज्योति देखा।''[2] काम की प्रेरणा देने वाला। प्रेरकीय मनोविज्ञान (Hormic Psychology) से युक्त यह सम्भाषण सुनकर अजीत की आँखें खुल जाती हैं। वह मुक्त कण्ठ से सफीयत एवं राजस्थान के जौहर की जय बोलता है।

इस नाटक का नायक दुर्गादास है जो स्वामी भक्ति, देशनिष्ठा एवं आत्मविश्वास के आदर्श का प्रतिष्ठापक है। उसका धवल चरित्र एवं सौहार्द्रपूर्ण व्यक्तित्व हमारे हृदय पटल पर *सहानुभूति की एक अमिट रेखा छोड़ जाता है।* महाराणा जसवन्तसिंह कर्तव्य तत्पर सेनानी है जिसके पराक्रम से काबुल का विद्रोह शान्त हुआ। परन्तु अपने पुत्र पृथ्वीसिंह की अमानुष हत्या से थोड़े ही दिनों में वह स्वर्ग सिधार गया। अजीत एवं सफीयत का चरित्र प्रतिष्ठा मनोविज्ञान के तत्त्वों से पुष्ट है। सफीयत भारतीय माता की पुत्री होने से उसमें हिन्दू संस्कार दृष्टिगोचर होते हैं। उसका आत्मसंयम एवं नारी मर्यादा सराहनीय है।

प्रस्तुत नाटक के कथोपकथनों में स्वाभाविकता, प्रवाहयुक्तता, मर्मस्पर्शित्व एवं मनोवैज्ञानिकता परिलक्षित होती है। जो पात्र जिस वर्ग का, जिस संस्कृति का होता है उसी के अनुरूप वह अपनी भाषा में अपने विचारों को प्रकट करता है। अहमदखाँ मुसलमान पात्र है जिसकी भाषा उर्दू-फारसी मिश्रित दिखाई देती है। प्रेम के अवसर पर नाटक के कथोपकथनों में नए प्राण आ जाते हैं। यहाँ भाषा मचलती है, तेज होती है। मानो उसे कल्पना के पंख फूट जाते हैं। प्रमाणस्वरूप कथोपकथन की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।
अजीत--आह! चार बज गए! समय इतनी जल्दी बीत गया।

१ जौहर की ज्योति, पृ० ९८

२ वही, पृ० ९९–१००।

सफीयत–समय प्रेम नहीं करता इसीलिए इसे ठहरने का अवकाश नहीं है। वह भागता चला जाता है।

मजीत––हम लोगों का प्रेम देखकर शायद वह भी प्रेम करना सीख जाए।

सफीयत–(गजरे की ओर देखकर) फूल सबसे अधिक प्रेम करना जानते हैं। वे अधिकतर रात में ही खिलना सीखते हैं।

मजीत––ओह ! यह फूलों का गजरा ! अभी तक इसका उपयोग नहीं हुआ ? (शीघ्रता से फूल का गजरा उतारता है। हाथ से फूल छूकर) कितने कोमल फूल हैं ये ! (सूँघकर) कितनी मनोहर सुगन्धि है इनमें ! मालूम होता है कि राजकुमारी सफीयत-उन-निसा के कमरे में पहुँचकर ये भी राजकुमारी के गुण सीख गए।

सफीयत–यह मेरी प्रेम की माला है। इसे मैंने ही न जाने कितनी रातों के साथ न जाने कितने आँसुओं के साथ गूँथा है। लाइये इसे मैं आपके गले में पहना दूँ।[1]

उपर्युक्त कथोपकथनों में अचेतन मन की सामान्य कार्य विधियाँ आक्रमण परिलक्षित होती हैं। साथ ही दोनों के इड का यथार्थ निरूपण।

इस नाटक की भाषा अत्यंत प्रौढ़ चुस्त सरस, सुबोध भावपूर्ण एवं आकर्षक बन पड़ी है। इस नाटक में यत्र-तत्र काव्यमय साहित्यिक भाषा के कलात्मक चित्र दिखाई देते हैं। उदाहरण तौर पर––

(१) यह सत्य है कि नु मुगल शासकों ने अपनी राजनीति की तेज धार से जैसे राजपूतों की शक्ति के पंख काट दिये हैं और वे अपने अपने राज्यों में निश्चेष्ट पड़े हुए हैं।

(२) आज अशांति के बादल चारों ओर छाए हुए हैं। ज्ञात ही नहीं होता कि किस बादल से बिजली गिरकर क्षण भर में संसार को ध्वस्त कर देगी।

(३) जब तुम और हम मारवाड़ के सिंहासन पर बैठेंगे, तो जैसे बसंत में भ्रमरों के गुन्जार से कलियाँ फूल बन जायेंगी मलयाचल से समीर अपना रास्ता भूलकर मारवाड़ तक चला आयगा।

(४) देखो राजकुमारी ! कितनी सुन्दर चाँदनी है। लूनी नदी की धारा पर यह चाँदनी ऐसी बिखर रही है। जैसे हमारे तुम्हारे जीवन पर प्रेम की ज्योति बरस रही है, और यह नदी संसार की उपेक्षा करती हुई अपने ही रास्ते चली जा रही है।

---

१ जौहर की ज्योति, पृ० ८७ ८८

(५) मानवता में ईर्ष्या द्वेष की जो अग्नि लगी हुई है वह इस भुवन व्यापिनी प्रेम की मन्दाकिनी से शीतल हो जाएगी।[1]

इस नाटयकृति में स्थान-स्थान पर सूक्तियों द्वारा मनोभावों का मनोरम चित्रीकरण हुआ है। यथा—

(१) यह दुर्भाग्य है कि वीरता भी छल और कपट से लांछित होती है।

(२) आशा बुझती नहीं है आँखों में आभूषण हो जाती है। अवसर आने पर फिर आशा का दीप जल सकता है।

(३) इसान धर्म में ऊंचा है।

(४) क्या पवित्र वस्तुएँ जलने के लिए ही होती हैं ?

(५) जलने में ही प्रकाश होता है।

(६) कल्पना के पंखों में जीवन उड़ नहीं सकता।[2]

(७) निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि इस नाटक में प्रेरकीय मनोविज्ञान का यथार्थ आविष्कार हुआ है।

सारंग-स्वर

रानी रूपमती और सुल्तान बाजबहादुर के संगीत प्रेम को लक्ष्य बनाकर डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'सारंग स्वर' की रचना की है। इस नाटक में तेरहवीं सदी के ऐतिहासिक वातावरण का यथार्थ निरूपण हुआ है।

प्रथम अंक

माण्डवगढ़ के किले में जहाज महल के एक कक्ष में रानी रूपमती की सखी रेवा एवं गुरु नाथ उमर के बीच वार्तालाप हो रहा है। इसके संवादों से विदित होता है कि सम्राट अकबर का सिपहसालार सरदार आदम खाँ के द्वारा माण्डवगढ़ के सुलतान बाजबहादुर की पराजय हुई है। बाजबहादुर घायल होकर खानदेश की ओर भाग गया है। तदुपरान्त उसका सारा राजकोष और रनिवास आदम खाँ के अधिकार में आ गया। परन्तु बाजबहादुर के आज्ञानुसार युद्ध में हार होते ही सारे रनिवास को कत्ल कर दिया गया। अपनी रानियों का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए उसने यह घृणित कृत्य करवाया। सभी रानियाँ काट दी गयी परन्तु सौभाग्य से जल्लादों के हल्के वार के कारण रानी रूपमती और तीन रानियाँ बच गयी।

नानकचन्द की दवा से रानी रूपमती के घाव भर जाते हैं। इतने में ही आदम खाँ ने अहमद खाँ के द्वारा रानी रूपमती से मिलने का प्रस्ताव भेज

---

1 जौहर की ज्योति पृ० क्रमशः २ २३ ७१ ८३ ९३

2 वही, पृ० क्रमशः ३३ ४२ ९ ५६ ७७ ८२

दिया। शेख उमर इस प्रस्ताव के प्रति नाराजी प्रकट करता है। उसी अवसर पर आदम खाँ प्रवेश कर शेख उमर से कहता है, होश ? (अट्टहास करता है।) होश ? जनाब ! मुहब्बत म अगर होश रहते मुहब्बत हो तो वो होश कसा ? एँ ? होश कसा ! (हँसता है।) होश और मुहब्बत लाइलाज हैं, उस्ताद ! और मेरे ताहफे की आपने जो इज्जत अफ्जाई की है, वो भी बेमि मोल है और कोई बादशाह होता तो जमुरद के चर हान स पहल वो चूर कराने वाल के सिर को चूर करा देता।"[1] यहा पर आदम खाँ की नस नस म फ्रायड प्रणीत लिबिडो प्रवत्ति दृष्टिगोचर होती है। अपन अहम (इगो) को न सम्भाल न के कारण शेख उमर बेहोश हो जाता है। रूपमती पर अधि कार जमाने के लिये आदम खाँ हर तरह की कोशिश कर रहा है।

द्वितीय अक,

हिंडोला महल के एक कक्ष मे नर्तकियो का नाच चल रहा है। वाह वाह और तालियो की ध्वनि हो रही है। इतने म ही शेख उमर के चल बसने की वार्ता आ जाती है। उसी समय आदम खा वहाँ आ जाता है। उसके सम्भाषण से ज्ञात होता है कि उसन मलिका रूपमता के पास एक पगाम भेजा है। रूपमती के सारग-स्वर सुनन के लिए वह रामच द्र को कद से रिहा कर देता है। थोडी दर म रूपमती की अगरक्षिका श्याम मजरी का आगमन होता है। रानी रूपमती के पास अ य कोई विकल्प न होने से उसने श्याम मजरी के द्वारा भेज हुए पत्र म लिखा है बादशाह अकबर की सना से लाभ उठान वाले सुल्तान आपने माडवगढ म आग लगाकर जसे मेरे शरीर म ही आग लगा दी है। यह तो आपको करना ही था, क्योकि आप खुद वासना की आग म जल रह हैं। उस आग म शेखउमर की जि दगी भी जल गई। हमारे प्रियतम को आपन हमसे दूर कर दिया। अब आप हमारे सगीत को भी दूर करना चाहते हैं। सगीत की रागिनी तो वह दवी शक्ति है कि प्रलय हो जान पर भी वह आकाश म गूँजती रहगी। आप उस क्या समाप्त करेंगे। आप जानते हैं कि मैं रानी हूँ ! बिना शोभा और शृगार क मैं किसी स नहीं मिलती। आपने माडवगढ म आग लगाकर सब शोभा और शृगार की सामग्री नष्ट कर दी। केसर कस्तूरी, सुग ध और रेशमी वस्त्र कहाँ हैं। कल सध्या समय आप मेरे शृगार कक्ष म आएँ तो आप मेरे दर्शन कर सकते है।"[2] यहाँ पर वात्स्यायन प्रणीत दूतिया के पत्रहारी भेद का यथेष्ट प्रभाव

---

१ डॉ० रामकुमार वर्मा सारग-स्वर, पहला सस्करण, पृ० ४४

२ वही, पृ० ७५

परिलक्षित होता है। इधर रूपमती में मिलन की खुशी में आत्मविभोर अपने सेवकों को माण्डव की खुशियाँ मनाने का आदेश देती है। साथ ही रूपमती के महल की तरफ नगर कस्तूरी कपूर इत्र आदि भेंट का आयोजन करता है।

तृतीय अंक

रूपमती अपने रंगमहल की खिड़की से बाहर झाँकते हुए अपने स्वागत-भाषण में कह रही है 'चमन! तुम क्या हो रहे हो। [illegible] जैसे कुछ हुआ ही न हो! तुम्हारे चेहरे की गति हमारे प्रियतम की तलवार में थी लेकिन वह सहसा किसी रागिनी की तरह बीच ही में टूट गयी। प्रियतम कहाँ चले गए! जैसे कोई तारा टूटकर अपना रास्ता भूल जाय। उनके हाथों में गूंजने वाली वह वीणा भी मौन है। वह सारंग स्वर में गूँजती थी। मैं भी तो मैं अपनी वीणा बजाना चाहती थी किन्तु मेरे सब तार टूट गए हैं। इसपर कोई तार नहीं गूंज सकता। प्रियतम तुम कहाँ हो? आओ और इस वीणा को अपने हाथों से जगा दो।'[1] यहाँ रूपमती में तात्कालिक तथा अधिक समय तक अनवरत रहने वाली स्मृति (Immediate and Prolonged Memory) का परिष्कार हुआ है। रूपमती का अचेतन मन आत्मग्लानि से रंगमहल की शोभा बढ़ाने के लिए उद्यत नहीं होता है। उसे अपनी विगत स्मृतियाँ अस्वस्थ कर रही हैं। एक बार वह आत्महत्या पर कटार चलाना चाहती है पर फिर सचेत होकर वह सोचती है प्रियतम ने मुझे युद्ध भूमि में नहीं जाने दिया। अब जब युद्ध समाप्त हो गया है तब उन्हें न पाकर मारना उन दासियों के लिए कलंक की बात होगी। इससे उसकी दया से युक्त न्यायबुद्धि पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु उसके चेतन अचेतन मन का द्वंद्व उसे चुपचाप बैठने नहीं देता वह अपना अवसाद प्रकट करते हुए नानकचन्द से कहती है 'यदि आप जलते हुए माण्डवगढ़ को अपनी औषधि दे सकें तो देने की कृपा करें। माण्डवगढ़ मेरा प्राण है। जब प्राण की रक्षा नहीं तो शरीर की क्या रक्षा होगी?'[2] इससे ज्ञात होता है कि वह धीरे धीरे अपने अहम् (इगो) का शिकार बनती रही है। अपना शृंगार सम्पन्न करने के बाद वह अपनी सखी रेवा से कहती है, 'मेरे प्रियतम की वीणा मेरे हाथों में दे दो। जिन तारों पर वे उँगलियाँ रखते थे मैं उन्हीं पर अपनी उँगलियाँ रखकर देखूँगी कि वीणा के तारों में मेरे प्रियतम का कंठ-स्वर गूँजता

---

१ सारंग-स्वर, पृ० ७९।

२ वही, पृ० ८२।

३ वही, पृ० ८६

है या नहीं।"[1] यहाँ पर रूपमती का स्वाक्रमण प्रेरणावेग एवं तादात्म्यीकरण स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

चतुर्थ अक

भीषण वन प्रान्तर में सुल्तान बाजबहादुर विजयसिंह से कह रहा है 'किस्मत की बात ? अपनी इस किस्मत के पसन्द में पहुँचे ही हमने माडवगढ की किस्मत का फैसला कर लिया। जल्लादो को हुक्म दे दिया था कि अगर हम न लौटें तो हमारे हरम का कत्ल कर दिया जाय हरम को कत्ल कर लिया जाए (गहरी सांस लेकर) रूपमती को भी रूपमती को भी ! जा कपूर केसर और कस्तूरी से स्नान करती था– उसे खून मे नहला दिया हमने ! बदबख्त बाजबहादुर ! किस मुह मे तू अपने को बहादुर कहेगा।"[2] यहाँ पर बाजबहादुर मे प्रक्षेपण (Projection) भाव परिलक्षित होता है। इतने म ही एक सिपाही के द्वारा मांडवगढ का पूरा वृत्तान्त बाजबहादुर के सम्मुख रखा जाता है, जिससे वह मूर्च्छित होकर गिर जाता है। इसमे उसके तीव्र आन्तरिक द्वन्द्व का परिचय मिलता है।

पचम अक

रूपमती के शृंगार कक्ष म श्याम मजरी एव प्रभाती फूलो की माला गूथती हुयी वार्तालाप कर रही हैं। श्याम मजरी प्रभाती से कह रही है, 'सभव है नमदा के प्रवाह म उस माडवगढ के रक्त का प्रवाह दीख पडा हो ! वे अपने शोक म इतनी शिथिल हैं कि वे स्वय नमदा के टूटे हुए किनारे की भाँति रह गयी हैं, किसी भी क्षण उस प्रवाह में बिखर कर उस प्रवाह म गिर सकती हैं।"[3] इससे रूपमती के अन्तद्वन्द्व एव स्वाक्रमण प्रेरणावेग पर प्रकाश पडता है। इतने म ही सौभाग्य वेश में रूपमती का आगमन होता है। रेवा द्वारा जलाये हुए दीपको को देखकर रूपमती दीपको की ओर सकेत करते हुये कहती है मेरी तरह य दीपक भी जल रहे हैं। मैंने अपने सगीत से न जाने कितने दीपक जलाये है मेघा से जल की वृष्टि कराई है सूखी हुयी लता म पुष्प विकसित किए हैं भटके हुए हरिणो को पास बुलाकर बिठलाया है। पर मैं अपने भटके हुए प्रियतम को पास न बुला सकी। यहाँ उसके मन का दमित

१ सारग स्वर, पृ० ९१।
२ वही, पृ० ९४।
३ वही, पृ० १०६।
४ वही, पृ० ११२।

भाव उमड़ पड़ा है। अकबर के सिपहसालार उसकी भेंट के लिए आने की बात समझते ही वह रेवा से कहती है आ गए हैं ? मैं भी प्रस्तुत हूँ। आज मेरी परीक्षा है। मैं अपने अचल में केसर कस्तूरी नहीं प्राण सजाकर लाई हूँ, क्योंकि मेरे सुहाग की रेखा सिन्दूर से नहीं रक्त से भर उठी है। उसी में भारतीय नारी का साहस चमकेगा।[1] यहाँ रूप में वात्स्यायन के द्वारा निर्दिष्ट पत्नी के नायिकत्व की झाँकी परिलक्षित होती है। सती सावित्री का स्मरण दिलाने वाली रूपमती आदमखाँ के महल में जाने के पूर्व ही अपने प्रियतम का बाजबहादुर का स्मरण कर विषपान करती है। उसके धवल चरित्र का यह दीप्यमान रूप भुलाने से भुलाया नहीं जा सकता। आदमखाँ पछताने लगता है।

इस नाटक का केन्द्रबिन्दु है रूपमती। वह संगीत, नृत्य काव्य आदि अनेक कलाओं में पारंगत है। वह कुशल अश्वारोहिणी एवं अचूक लक्ष्यवेधी आखेटक भी है। अपने देश की परम्परा अक्षुण्ण रखने के लिए नारी का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए वह आत्मोत्सर्ग कर बैठती है। बाजबहादुर में आत्म विश्वास का अभाव है। उसकी युद्ध में दो बार हार हो जाती है। वह भयभीत एवं शंकाग्रस्त सुल्तान है। रानियों के कत्ल करा देने के आदेश में उसकी नृशंसता और मनोग्रस्तता परिलक्षित होती है। आदमखाँ स्वार्थी एवं स्त्री लम्पट वृत्ति का परिचायक है। शेख उमर का स्वाभिमान तथा उसकी कर्तव्य निष्ठा उसकी उच्च अभिरुचि दर्शाता है। विजयसिंह निःस्पृह स्वामिभक्त है। पीर मोहम्मदखाँ और अब्दुल्ला खाँ चापलूसी करने में कुशल हैं। रेवा श्याम मजरी और प्रभाती रूपमती की एकनिष्ठ सेविका है।

प्रस्तुत नाटक के कथोपकथन पात्रों के अनुरूप हैं। वे सगठित, संयत एवं प्रभावी हैं। यथा—

रूपमती— प्रियतम ने अपना धनुष बाण माँगा लेकिन मैंने नहीं दिया। मैंने कहा कि मैं स्वयं आखेट करूँगी। मैंने धनुष पर बाण चढ़ाकर ऐसा निशाना लिया कि एक बाण में ही सिंह धरती पर तड़पने लगा।

रेवा— साधु ! महारानी ! आपके लक्ष्य भेद की प्रशंसा तो स्वयं सुलतान किया करते थे।

रूपमती— सोचती हूँ कि ऐसा ही बाण मैं आदमखाँ पर चलाऊँ लेकिन

रेवा— लेकिन क्या महारानी ?

रूपमती— प्रियतम ने मुझे युद्ध भूमि में नहीं जाने दिया। अब जब युद्ध समाप्त

---

१ सारंग स्वर, पृ० ११३।

हो गया है तब छत से बाण मारना एक क्षत्राणी के लिए कलंक की बात होगी ।[1]''

उपर्युक्त कथोपकथनों में रूपमती के व्यक्तित्व का दुहरा रूप दृष्टिगोचर होता है– एक है आखेटक जैसा कठोर और दूसरा है नारी, सुलभ कोमल । यहाँ पर उसके चेतन-अचेतन मन का संघर्ष भी यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है।

इस नाटक की भाषा में भावोचित शब्द निर्माण एवं शब्द चयन होने से पात्रों के सूक्ष्म भाव यथार्थ रूप में आविष्कृत हुए हैं । मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू, फारसी अरबी शब्द का आधिक्य है जिसमें पाठकों एवं प्रेक्षकों को दुरूहता महसूस होती है । परन्तु इसके पीछे नाटककार का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है । आमतौर पर इस नाटक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़, चुस्त, सरस और रोमांचयुक्त है । भाषा की काव्यात्मकता मनोविज्ञान की दृष्टि से दृष्टव्य है । यथा

(१) *कहाँ सुल्तान बाजबहादुर और रानी रूपमती के संगीत की लहर हरी भरी लताओं में नये नये फूल खिलाती थी बाबा ! और आज नये नये फूल सी रानियाँ घावों से तड़प रही हैं।*

(२) मैं आज पतझर के पेड़ों में वसन्त के फल बाँधूंगी । भाग्य के इस परिहास पर शायद विधाता भी मुस्करा उठे ।

(३) जिस तरह चन्द्र की कलाएं घटते घटते अमावस हो जाती है, रेवा ! उसी तरह मैं भी आज अमावस की रात बनकर अकेली रह गयी हूँ ।

(४) सूरज पश्चिम में हमेशा के लिये नहीं छिपता । रात बीतते ही वह फिर अनन्त ज्योति के साथ उदित होता है । इस पराजय के बाद फिर भी *आप विजय पा सकते हैं ।*

(५) मेरा शृंगार ही उसे जला देगा ! तुम सभी ने मेरा बड़ा शृंगार किया है। किन्तु तुम जानती हो कि फूल से सुगन्ध चली गयी है, केवल पखड़ियाँ ही शेष हैं । अपने स्वामी के प्रेम के सागर से ही मैंने अपना जीवन घट भरा था । सागर में बड़वाग्नि होती है, मेरे जीवन घट में कितनी बड़वाग्नि होगी कह नहीं सकती । कौन जानता है, यह जीवन घट अब घट ही न रहे ।[2]

सारंग स्वर' में भावोचित एवं सहज सुंदर अलंकार प्रयुक्त हुए हैं । जैसे–

(१) उसकी हवस के तूफान में रूपमती के दिल का चिराग कितनी देर ठहर

---

१ सारंग स्वर पृ० ८२ ।

२ वही, पृ० क्रमश २६, ८८ ९०, ९६, ११४ ।

सकता है ।

(२) सुनन तो उनका शृगार देना न आयगा रवा ! एसा लगता जस आग म झलसी हुयी लता म फूला क गच्छ बाँध दिय गए हैं ।

(३) जिस तरह नन्दनवन म कभी पतझड नहा होता उसी तरह मेरे सोभाग्य म कभी दुभाग्य नही आ सकता ।

(४) जिस प्रकार एक पतिगा दीप शिखा म जलन क लिए ही उड कर पास आता है, उसी प्रकार यह भी मेरी रूप शिखा म जल जान के लिए उत्सुक है ।[1]

इस नाटक म व्यग्यात्मक सवादा की सफल योजना की गई है । यथा—

(१) य अयान रग लिय है कि हुजूर अपने और उजाड म कोई फर्क नहा समझते और फिर हुजूर न अपनी जि दगी म इतना उजाडा दखा है कि अब उजाड अपने न मुकाबला करने का शौक पैदा हो गया है ।

(२) आओ रायचन्द ! तुम्हारे गाने पर तम्हारे आका आलमगीर ने बहुत बडी जागीर बख्शी होगी । बडी नाची खिदमत अता फरमाई होगी ।

(३) तमने बहुत अच्छा किया, उसमान की बराह का तमने अपने सगीत में डुबोकर मानवगढ की फजा को महफूज रक्खा ।

(४) प० रायचन्द ! तुम बादशाहो के कलाम का अन्दाज नहीं जानते । बाद शाहा की फरमाइशवाई खास मौको पर खास मान रखती है ।[2]

प्रस्तुत नाटक म प्रयुक्त सूक्तियों द्वारा मनोभावो की समय अभिव्यक्ति दिखाई देता है । जस—

(१) मुहब्बत म अगर हान रहे तो वो मुहब्बत कभी ?

(२) महानता सन्व समय क मस्तक पर तिलक बनकर शोभा पाता है ।

(३) धम म बड स बडा कष्ट भी वरदान है ।[3]

(४) सोचन म विपत्ति का आकार और भी बढ जाता है ।

(५) किस्मत की बात कोई नही जानता ।

(६) नारी सकट के समय वात्सल्य की कोली रचना को भी विनाश की रखा बना लती है ।[4]

अत अन्त मे हम कह सकते हैं कि इस नाटक म मन क चेतन एव दमित

---

१ सारग स्वर प० क्रमश २० १०९, १११, ११३ ।

२ वही प० क्रमश ४१ ३९ ४०, ८९ ।

३ वही, प० क्रमश ४४, ८१, ८५ ।

४ वही, प० क्रमश ९३, ९४, ११४ ।

भावा का यथाय निरूपण हुआ है।

निष्कर्ष

डा० रामकुमार वर्मा न नाटको के अनुशीलन स ज्ञात होता है कि उनके ऐतिहासिक नाटका म उदात्त कत-यनिष्ठ एव सजनात्मक व्यक्तित्व स अनुप्रेरित पात्रो की अवतारणा हुयी है। उ होने भूतकालीन घटनाओ क द्वारा अवाचीन जीवन के काय व्यापारा को मनोवज्ञानिक आँख से परखा है। उनक प्रमुख पात्रा का बौद्धिक स्तर ऊचा है। नाटककार के नाट्य चि तन मे अनक स्थलो पर स्वत त्र रुचि का परिचय मिलता है। इनके नाटको के कथोपकथना मे स्वाभाविकता, प्रवाहयुक्तता ममस्पर्शीत्व एव मनोवनानिकता परिलक्षित होती है। का यत्व स ओत प्रोत भाषा सरल, अथवाही और सर्वांग सु दर बन पडी है। सूक्तियो द्वारा मनोभावो का मनोरम चित्रीकरण हुआ है।

९ | अन्य कुछ नाटककारों के स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

सम्राट समुद्रगुप्त

डा० दशरथ ओझा जी का सम्राट समुद्रगुप्त नामक ऐतिहासिक नाटक सम्राट समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व से सम्बन्धित है।

प्रथम अंक

विजयदुर्ग के बाहर नगर और यौधेयों में युद्ध मचा था। यौधेय महासेनापति वीरसिंह युद्ध में हारकर अग्निप्रवेश कर रहे थे। इतने में सम्राट समुद्रगुप्त उन्हें चेतावनी देते हुए कहता है "आप चिन्ता मत कीजिये महाराज वीर पुरुष शत्रु-शोणित-नद में डूबकर प्राणदान देते हैं। अग्निप्रवेश नहीं करते।"[1] इस सम्भाषण से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त टाल्मन प्रणीत वातावरण उद्दीपक (Environmental Stimuli) से परिचालित पात्र है। तदनन्तर वे दोनों नागराज रुद्रसिंह के राजदरबार में संधि विराम करने के हेतु जा पहुंचते हैं। रुद्रसिंह उनके स्वागत समारोह में आसवपान तथा नृत्यों का स्वाद लेते हैं। आसवपान की अधिकता से रुद्रसिंह और उनके साथी मदहोश होने के बाद समुद्रगुप्त तथा महासेनापति द्वारा शस्त्र पर कब्जा कर लिया जाता है और उनको बन्दी बनाया जाता है। इससे नागराज शरणागति को अपनाते हैं। इसी बीच समुद्रगुप्त महाराज महासेनापति से कह उठता है "उसमें प्रथम अन्त कलह का दमन करना है महासेनापति!" "परन्तु आप चिन्ता न करें इसके लिए मैं हूँ। आप अभी महाक्षत्रप को मुक्त न करें जब तक आपकी दिक् रक्षण व्यवस्था भली भांति सुदृढ न हो जाय और संधि की सब शर्तें पूरा न कर दी जायें।"[2] इस उद्धरण से विदित होता है कि समुद्रगुप्त नेता व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का

---

१ डा० दशरथ ओझा सम्राट समुद्रगुप्त १९५२ पृ० ५

२ वही, पृ० १७

प्रतिनिधि (The Leader as Surrogator for Individual Responsibility) के रूप म उपस्थित हो गया है। तत्पश्चात वसुब धु समुद्रगुप्त से कहता है कि पाटलिपुत्र के सन्निकट ब्राह्मणा और श्रत्या म फिर असतोष बढता जा रहा है। तब समुद्रगुप्त कहता है 'यह रुद्रसन की धार्मिक कटटरता का ही फल है। आचाय मैं चाहता हूँ आप वाकाटक राज्य म इस कटटरता के विराध मे सघा द्वारा आन्दोलन खडा करें। मैं चाहता हूँ—आयावत्त म कम और राजनीति म ऐसा सामञ्जस्य स्थापित हो जाय, जिससे राजा प्रजा सब मिलकर एक अखण्ड साम्राज्य का सूत्रपात कर सकें।'[1] यहाँ समुद्रगुप्त म गस्टाल्ट मनोविज्ञान के मनोज्ञ दशन होते हैं। तदुपरान्त समुद्रगुप्त आटविको से लडने के लिए उद्यत हो जाता है। आचाय कुमारामात्य, हरिषेण, आचाय वसुबन्धु ब्रह्मचारी शिवानन्द आदि सभी को समुद्रगुप्त युद्ध की तथा धम के प्रसार की तयारी करने भेजते हैं। इसी बीच समुद्रगुप्त और उनके मित्र हरिषेण एक बगीचे म घूमते वक्त ब दी बनाये जाते है। बगर इजाजत विजय दुग राजोद्यान मे घूमने का आरोप लगाया जाता है। परन्तु राजकुमारी समुद्रगुप्त का दण्ड दने की अपेक्षा अपना दिल दे बठती है। उसकी सखी मधुमती भी हरिषण के प्यार मे डूब जाती है। दूसरी ओर अजुनायन महाराज महासेनापति को छुडा लाने की योजना बनाता है। चरो द्वारा शत्रुओं की पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

द्वितीय अक

पाटलिपुत्र के विशाल राजभवन मे महामात्य भारत के कल्याण की बातें सोच रहा है। उसी तरह अटवी प्रदेश के युद्ध पर भी विचार कर रहा है। दूसरी ओर कौशाम्बी के अचल म वाकाटको के सेना निविर म नागसेन और प्रमुख सना नायको म युद्ध की चचा हो रही है। महाराज चन्द्रगुप्त बन्दी रूप म हैं। इसी समय नागसेन को समुद्रगुप्त के चढ़ाव का समाचार मिलता है। घमासान युद्ध होकर नागो की हार होती है। समुद्रगुप्त अपने पिता चन्द्रगुप्त को मुक्त करता है। इसी समय मगध पर कल्याण वर्मा का आक्रमण होने का समाचार मिलता है। एक अन्य स्थान पर दक्षिणपथ के सभी राजा इकट्ठे होकर समुद्रगुप्त पर हमला करने का निश्चय कर रहे हैं। इनका नेतृत्व रुद्रदेव तथा कुकुरराज कर रहे है। समुद्रगुप्त दूसरी ओर से इन पर हमला करता है। दोनो पक्षो म कई दिनो तक युद्ध होता है। पर निणय नही होता। अन्त म योगिराज आते हैं और समुद्रगुप्त को सन्धि विराम का महत्व बताते हैं।

[1] सम्राट समुद्रगुप्त, पृ० २२

वसुबन्धु तथा दत्तदेवी के समझाने बुझाने पर वह तैयार हो जाती है । इन सभी घटनाओं के उपरान्त साकेत नगरी में अश्वमेध--यज्ञ की पूर्णाहुति की तैयारी की जाती है । उत्तरापथ, दक्षिणपथ, काम्बोज, चम्पा, मलय, यवद्वीप, श्याम आदि भागों से प्रतिनिधि आ जाते हैं । सम्राट समुद्रगुप्त सभी के सम्मुख कह उठता है, 'शस्त्रधारी शत्रुओं से लडने में मेरे सैनिकों और शासक वर्ग ने प्रमुख भाग लिया और नागरिक सहायक बने रहे । इस नवीन युद्ध में जनता को मुख्य कार्य करना है, शासक वर्ग सहायक मात्र रहेगा ।"[1] इस उद्धरण में समुद्रगुप्त के निर्माणकर्ता नेता (Group Builder) गुण पर प्रकाश पड़ता है । तत्पश्चात आचार्य शिवानन्द जी बताते हैं कि जीवन शुद्ध बनाने के लिए भगवान विष्णु की आराधना अनिवार्य है । अन्ततोगत्वा सम्राट कहता है कि हमारा भारतीय आदर्श विश्व कल्याण का है । हमारे लिये समस्त वसुधा कुटुम्ब है ।

इस नाटक का नायक है सम्राट समुद्रगुप्त । वह वीरता, धीरता, दृढ़ता, गम्भीरता, आत्मसम्मान उदारता, सहिष्णु आदि कई गुणों से परिचालित पात्र है । वह असाधारण या अब नॉर्मल कोटि के अन्तर्गत आता है । वसुबन्धु शिवानन्द जैसे आचार्य भारतीय धर्म कल्पना से ओत प्रोत पात्र हैं । मालती, दत्तदेवी, मधुमती आदि नारियाँ भारतीय आदर्शत्व का परिचय करा देती हैं ।

सम्राट समुद्रगुप्त के संवाद पात्रानुकूल, स्वाभाविक और मनोविज्ञान से परिपूर्ण हैं । उदाहरणतया--

मधुमती--कैसा संकल्पबद्ध ?

समुद्रगुप्त-जब तक मैं मातृभूमि का उद्धार न कर लूँ, देश को निरापद न कर लूँ, सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में न बाँध लूँ ? तब तक मैं अन्य किसी बन्धन से मुक्त रहूँगा ।

मधुमती--तो हमारी राजनन्दिनी आपके संकल्प सिद्धि में बाधक न होगी । यौधेय महाराज महासेनापति की इसमें सहमति है महाराज ।

समुद्रगुप्त-मैं महान बन्धन में बँधा हूँ भद्रे ।[2]

उक्त कथोपकथनों में उदात्तीकरण (Sublimation) का परिष्कार हुआ है ।

इस नाटक की भाषा में कहीं भी शिथिलता नजर नहीं आती । उसमें संस्कृत प्रचुरता सुगमता एवं सहजता की प्रवृत्ति लक्षित होती है । मुहावरा

---

1 सम्राट समुद्रगुप्त, पृ० ९७

2 वही, पृ० ३०

कहावता का समयोचित प्रयोग हुआ है । जैसे—न रहे बांस न बजे बांसुरी, उत्सर्ग करना नाव सिकोड लेना, भाव विभोर हो उठना[1] आदि । इस नाटक म प्रयुक्त हुई सूक्तियो स पात्रो के मनोभाव स्पष्ट हो जाते हैं । यथा—

(१) जनता को धार्मिक बनान म भक्ति की सामथ्य बहुत है ।

(२) यह राजनीति का साधारण सिद्धा त है कि जो राज्यलाभ व्यक्ति तभी तक सयुक्त रहते हैं जब तक राज्य प्राप्ति नही हो जाती ।

(३) *व धन किसी को प्रिय नही होता ।*

(४) मित्रता हृदय की होती है ।

(५) नारी पुरुष के बिना पूर्ण हो ही नही सकती ।

(६) आचार का प्रासाद विचार की दृढ भित्ति पर खडा होता है ।

(७) निवृत्ति माग कष्ट साध्य होता है ।[2]

इस नाटयकृति के अनुशीलन स हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि इसमे *भारतीय धम कल्पना प्रवाहमान रही है ।*

कोणाक

जगदीशचन्द्र माथुर न कोणाक म विशु तथा धर्मपद शिल्पियो का जीवन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत किया है ।

प्रथम अक

विशु का कोणाक मन्दिर पूरा करना है परन्तु उसका शिखर बांधने मे उसे सफलता नही मिल रही है । तब वह प्रधान पाषाण कौशिक राजीव से पूछता है कि कब कलश पूरा होगा । राजीव बताता है कि मैंने सब प्रयत्न किए फिर भी कलश ठहर नही पाता है । इतने म ही धर्मपद वहा आ जाता है । सम्भाषण के सिलसिले म वह विशु से कहता है जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढी है—जीवन का पुरुषार्थ । अपराध क्षमा हो *आचार्य, आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई है । जब मैं इन मूर्तियो मे* बधे रसिक जोडो को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने म नहाते हुए किसान की कोसो तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन दिन भर कुल्हारी लेकर खटने वाले लकडहारे की इनके बिना जीवन अधूरा है आचार्य ![3] इस उद्धरण स ज्ञात होता है कि धर्मपद श्रम प्रणीत

---

१ सम्राट समुद्रगुप्त, क्रमश पृ० ४१, ६० ८१, ८९

२ वही, पृ० क्रमश २२, ४९ ५३ ७३, ९०, ९१, १००

३ जगदीशचन्द्र माथुर कोणाक, एकादश सस्करण, स० २०२३, पृ० ३४

अंगीकरण (Assimilation) तथा समाजीकरण (Socialisation) की प्रक्रियों का परिचायक है। तदनन्तर उत्कल नरेश का महामात्य चालुक्य वहाँ आकर विशु से कहता है कि आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ तो तुम लोगो के हाथ काट दिये जायगे। अर्थात उत्कल नरेश नरसिंह देव ने यह आज्ञा की है। शिल्पियों के हाथ काट लिये जाने के भय से विशु चिन्तामग्न हो जाता है। सभी शिल्पकारो की यही अवस्था हो जाती है। उसी वक्त बाहर खडा हुआ धर्मपद अन्दर आ जाता है और विशु से कहता है 'मैं चाहता हूँ यदि शिखर पूरा हो जाय, तो एक दिन के लिए सिर्फ एक दिन के लिए—मन्दिर प्रतिष्ठापन के दिन—आप अपने सब अधिकार मुझे दे दें।'[1] यहाँ धर्मपद में हार्नी के अनुसार तटस्थ (Detached) व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार का व्यक्तित्व वाला व्यक्ति किसी से विशेष सम्बन्ध नही रखता। वह आत्म निर्भर होना चाहता है।[2] तत्पश्चात विशु सब लोगो के सम्मुख कह उठता है 'अगर कोणार्क पूरा हो जाता है तो एक दिन क्या सभी दिनो के लिए वे अधिकार तुम्हारे हो जायेंगे। मैं तुम्हे अपने स्थान पर प्रधान शिल्पी बना दूँगा। राजीव तुम नही जानते। मुझे प्रधान के पद से कोई मोह नही। मोह है तो यही कि कोणार्क पूरा हो जाय।'[3] उक्त उद्धरण से विशु की विधायक इच्छा (Positive Will) पर प्रकाश पडता है।

द्वितीय अंक

महाराज नरसिंह वंगप्रदेश से यवनो को पराजित कर वापस आने के बाद कोणार्क मन्दिर की ओर आ जाता है। मन्दिर को पूरा देखकर वह प्रसन्न हो उठता है। वह मन्दिर के निर्माता और शिल्पियो को पुरस्कार प्रदान करना चाहता है। वह विशु को रत्नमाला देने के लिए बुलाता है लेकिन वह नही लेता। वह धर्मपद को अन्दर बुलाता है और उसी को रत्नमाला दी जाय ऐसा कहता है। महाराज के समझ मे नही आता है कि विशु ऐसा क्यो कर रहा है? तब विशु कहता है कि महाराज आज के दिन प्रधान पद इसी का दिया है क्योकि मैंने वचन दिया है। इसी की वजह आज का यह कोणार्क मन्दिर पूरा हो गया है। यहाँ विशु का नैतिकाहं ध्यान देने लायक है। थोडी देर बाद धर्मपद शिल्पियो की दर्द भरी कहानी प्रस्तुत करते हुए

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर कोणार्क एकादश संस्करण सं० २०२३ पृ० ४२
२ रामपालसिंह मनोविज्ञान के सम्प्रदाय १९६८, पृ० १४८
३ कोणार्क, पृ० ४२

नरसिंह से कहता है ' किन्तु ग्रामों में रहने वाले गवदा हजारों किसान वन और अटोविया के नगर और ये अगणित मजदूर, जिनके बाँध हुए पाषाणों को हम निष्प्राण करते हैं व ये सभी आज त्राहि त्राहि कर रहे हैं। यदि ये बोल पाते तो-- ' धर्म विशु की जीवन शैली (Style of life) लक्षित होती है। कहता है हाथी कि वह मानवतावादी विचारों का परिचायक है। ध्यान में ही एक प्रतिहारी के द्वारा पता लगता है कि महाप्रचण्ड हुआ है और तीन दिन में स्वर्णमंदित मंदिर का पर रहे हैं। अर्थात् यह सब चाल चालक की ही है। तत्पश्चात् धर्मपद व्यक्तित्व में वह उठता है क्या हम लोग भेंट बकरियाँ हैं जो कि जिनके हवाले कर दी जाय ? आज ही तो हमारे भाग्य का निर्णय है। जिस निर्माण को तुम आज ढोंग कर रहे हो वह हमारे ही तो रूपों पर लिखा है। क्या उस पर वह बैठेगा जिसके कारण गवदा पर उजड़ चुके हैं वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य निर्माता शिल्पियों को टोकरों में तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजावत्सल नरेश श्रीनरसिंह देव। इस वक्तव्य से धर्मपद के सर्जनात्मक व्यक्तित्व की जानकारी मिलती है। एस व्यक्तित्व में आत्मा एवं इच्छा का अनुपम समन्वय होता है। धर्मपद के उक्त विचारों से नरसिंह को धीरज आ जाता है। वह उसे सेनापति पद बहाल करता है। सब लोग अपने अपने काम की तैयारी में जुट जाते हैं पर विशु सोचता ही रहता है कि आखिर धर्मपद कौन है ?

तृतीय अंक

रात्रि का समय है युद्ध रुक गया है। जख्मी लोगों पर इलाज हो रहे हैं सौम्य श्रीदत्त धर्मपद के शूरता का वर्णन करता है। हाथी के दाँत के कारण के कारण विशु को विदित होता है कि धर्मपद उसी का बेटा है। सत्रह वर्ष पूर्व विशु अपने नगर में चन्द्रलेखा नामक युवती से प्यार करता था लेकिन वह माँ बनने वाली है ऐसा समझने के बाद वह उससे पृथक हो जाता है। अब इतने बरसों के उपरान्त पिता पुत्र की भेंट हो जाती है। विशु अपने पुत्र को देखकर पागल सा हो जाता है। वह उसमें अपना व्यक्तित्व देखकर कह उठता है तुम शिल्पी विशु के पुत्र हो धर्मा ! कोणार्क और किसी के स्पर्श से कैसे जग सकता था ? जैसे मरुस्थल में कहीं निर्झरिणी सहसा गायब हो जाने पर भी अन्यत्र वह निकलती है वैसे ही मेरी भटकी हुई प्रतिभा

१ कोणार्क पृ० ५३

२ वही पृ० ५७

तुम्हार मन मे विकस उठी धर्मा ! सकडो हजारो वरसो तक कोणाक क उन्नत शिखर को देखकर लोग कहेंगे कि यह शिशु और उसके बेटे की कला की सर्वोत्कृष्ट कृति है।'[1] विशु क इस सम्भाषण से ज्ञात होता है कि उसम फ्रायड के अनुसार जविक सिद्धान्त (Biogentic Principle) का परिष्कार हुआ है। 'दूसरी ओर कोलाहल सुनाई देता है। धमपद संग्राम म कूद पडा है। विशु कुदाली को हाथ में ले गभगह में प्रवेश कर कपाट को अ दर स ब द कर लेता है। थोडी देर बाद कुछ सनिको के साथ राज राज चालुक्य, शवालिक और अ य सनिक प्रवेश करते है। इसी बीच विशु मंदिर का चुम्बक तोड देता है। इतने म अ दर मूर्ति गिर जाती है। गभगह क बीच से विशु आत वाणी म कह उठता है 'प्रतिशोध मेरे देवता ! मेर दिवाकर, शिल्पी का प्रतिशोध !'[3] विशु के इन उद्गारो म आत्मसम्मान उमड पडा है जिसे कभी भी विस्मत नही किया जायगा।

'कोणाक के केन्द्रबिन्दु हैं--विशु और धमपद। डा० गणेशदत्त गौड के शब्दो म कहा जा सकता है कि एक ही व्यक्तित्व के दो रूप विशु और धमपद म आकर घुलमिल गये हैं। पिता विशु का उदात्तीकरण पुत्र धमपद म तादात्म्य स्थापित करके पूणतया सफल ऊध्वगमन कर बठा है।[2] नरसिंह देव गुणग्राही एव कत्त यतत्पर नरेश ह।

माथुर के सवादो मे भाषा का कलात्मक सौ दय है उनके संवाद स्वाभाविक प्रवाहमय एव ममस्पर्शी बन पडे हैं। उदाहरण के तौर पर--

विशु-यदि अवसर दिया जाय तो तुम क्या करना चाहोगे ?

धमपद आचार्य, मुझ लगता है कि कोणाक के कमल की पखुडियाँ उल्टी हैं। उन्हे उलट देन पर कलश शायद ठहर सकेगा।

सौम्य०-कोणाक का कमल ?

राजीव-तुम्हारा मतलब छत्र के ऊपर कमलाकार अम्ल स है ?

धमपद-जी ! यदि इसके हरेक पटल को फिर से इस तरह रखा जाय कि जो बाहरी हिस्सा है वह अन्दर के द्र पर हो और जो नुकीला भाग है वह बाहर निकले तो उसकी आकृति खिले कमल की सी हो जायगी, कली की सी नही। लेकिन कलश स्थिर रहेगा।'

---

१ कोणाक, पृ० ७८

२ डा० गणेश दत्त गौड आधुनिक हिन्दी नाटको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० ३५३

३ कोणाक, पृ० ४१

उक्त सवादो म मक्डूगल के सवग सम्बोध सिद्धा त की यथाथ अवतारणा हुई है।

इस नाटक की भाषा अत्य त प्रौढ़ प्रभावोत्पादक और बोधगम्य है। उसम प्रसाद गुण का आधिक्य है। उसम का यात्मकता भी है। यथा—

(१) पत्थर का यह म िर आज कल्पना के स्पश स हवा की तरह गतिमान किरण की तरह स्पशहीन, सुग ध की तरह सव यापी हो रहा है।

(२) कसी विडम्बना है कि की तुम्हारी टूटी हुई रागिनी का विषाद ही तुम्हारी चमत्कारपूण कला का वभव बना[1]

(३) कोणाक का सम्मोहन याध की वशी था और हम थ विवश मग।

(४) और कोणाक—आपका सुनहरा सपना जिस घोसल म आपके अरमानो का पछी बसेरा ले जा रहा था। वही कोणाक, एक पामर पापी अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जायगा।[1]

कोणाक म प्रयुक्त सूक्तियो द्वारा मनोभावो की मनोरजक सष्टि हो गई है। जस—

(१) कला की पूर्ति चयन म है—छाँटन म।

(२) कलाकार की रागिनी ममन के कणपुटो को ही खोजती है।

(३) राज्यसत्ता की भित्ति विश्वास नहा बल है।

(४) रात्रि का विश्राम ही सजीवनी बूटी है।

अ ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि इस नाटक पर फ्रायड के जविक सिद्धा त का अत्यधिक प्रभाव है।

शारदीया

जगदीशच द्र माथुर न 'शारदीया' म खदा युद्ध के परिपा व म बायजाबाई तथा नरसिंहराव के प्रेम की अनूठी कहानी प्रस्तुत की है।

प्रथम अक

सन १७९४ की शरद पूर्णिमा के दिन सर्जेराव घाटगे की लडकी बायजाबाइ अपन पूना के घर म अकेली बठी है। इतन म नरसिंहराव वहाँ आ जाता है जो बायजाबाई पर जी जान स प्रम करता है। वह बायजा की

१ कोणाक, पृ० क्रमश २६ ३२, ४७, ७६

२ वही, पृ० क्रमश ३४, ४७, ५६, ७०

शारदीया नाम से सम्बोधित करता है। वार्तालाप के सिलसिले में वह बायजा से कहता है 'लेकिन चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूँ, चाहे तुमसे दूर, शरद की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छायी रहती हो। निर्मल, शीतल मन के कोने कोने को भासमान करती रहती हो (मर्मस्पर्शी स्वर) गहरे अंधकार में मैंने मुस्काती चाँदनी का अनुभव किया है। बायजाबाई, तुम्हीं तो मेरी चाँदनी हो, मेरी शारदीया।'[1] इस सम्भाषण में सुख का सिद्धान्त परिष्कृत हुआ है। फ्रायड ने मानवीय अभिप्रेरणा के सिद्धान्त में सुख के नियम को एक आधारभूत अभिधारणा माना है। इस नियम के अनुसार समय बीतने के साथ हमारा शरीर क्रियात्मक प्रेरणाओं (इगो) पर स्व (इगो) का नियन्त्रण हो जाता है।[2] तदुपरान्त बायजा अपनी उँगली में कटार से घाव कर अपने रक्त का टीका नरसिंह के भाल पर लगाती है। नरसिंह युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। तदनन्तर बायजाबाई अपनी परिचारिका सरनाबाई से बातचीत कर अपना मनोगत प्रकट करती है। इतने में शर्जेराव वहाँ आ जाता है। उसे नरसिंह से घृणा है, पर बायजा नरसिंह को अपना सारा सर्वस्व मानती है। वह आत्मीयता के साथ शर्जेराव से कहती है कि मुझे मरण का आदेश दो, बाबा, लेकिन नरसिंह का शर्जेराव कह उठता है चुप हो। आज से नरसिंह तेरा कोई नहीं है। कहाँ गया है वह।'[3] यहाँ शर्जेराव में तीव्र अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण परिस्थिति लक्षित होती है, जो कुण्ठा प्रेरित प्रतिक्रिया के रूप में उमड़ पड़ी है। एक अन्य दृश्य में खर्दा के निकट के शिविर में परशुराम भाऊ बाबा फड़के, दौलतराव सिंधिया, जिवबादादा आदि में युद्ध को लेकर वार्तालाप चल रहा है। दूसरी ओर शर्जेराव नरसिंह को विश्वासघातकी का इल्जाम लगाता है, पर वस्तुस्थिति ऐसी है कि नरसिंह एक नेक मराठा भेदिया है। थोड़ी देर बाद शर्जेराव अनुचर के वेश में आकर नरसिंह को गिरफ्तार करता है।

द्वितीय अंक

खर्दा युद्ध में मराठा की विजय हो चुकी है। बायजा को संगीत पढ़ाने और मन बहलाने के लिए रहीमन की नियुक्ति हो जाती है। बायजा और सरना में आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप चल रहा है। सरना बायजा से कहती है 'मैंने बहुत दिन निबाहा। जब तक जीवित रहूँगी अपनी बाईसाहब की स्मृति

१ जगदीशचन्द्र माथुर : शारदीया, दूसरी बार, पृ० २७

२ नामन एल० मन : मनोविज्ञान, १९७२, पृ० २४१

३ शारदीया, पृ० ३४

का सबल धारे रहूंगी, पर इस घर की दीवारें मानो मुझ पर मदह की दृष्टि डाल रही हैं। फटकार और मारपीट सह लूँ, पर यह सह्य यह शर ! मेरा मन थक गया है बाईसाहब। ' इस सम्भाषण स सरना क भय एव चिता की जानकारी मिलती है। तत्पश्चात बायजा अपन एक स्वगत भाषण म कह उठती है 'निष्कण्टक ही होगा माग। कितनी जल्दी स सब बात बनती जा रही है निसि दिन बरसत--उह। यह नहा-- अरी माहि भवन भयानक लाग माई, श्याम विना। उह यह भा नहा। 'माई मेरे ननन जान परी री। कसी बात है यह। मिलन पर बताऊगी तुम्ह नरसिहराव बडी दग लगा दी सरनाबाई न। या मरा ही मन तजा स चल रहा है। [1] यहाँ बायजा म इच्छाशक्ति को लकर तीव्र अन्तद्वन्द्व दृष्टिगोचर होना है। इतने म ही सर्जेराव वहा आ जाता है और बायजा स बता देता है कि नरसिह सर्गी युद्ध म मारा गया। बायजा तत्काल बहाश हो जाती है। मनोविज्ञान की दृष्टि स यह क्षतिपूरक प्रतिक्रिया स्पष्ट्य है। सचाई यह है कि नरसिंह को ग्वालियर न किले म कद कर रखा गया है। वहाँ उसे अपनी लाडली बायजा-शारदीया की याद बार-बार सताती है जिसम उच्च कुण्ठा सहनशीलना के दशन होते है।

तृतीय अक

खर्दा विजय के बाद बाजीराव द्वितीय पेशवा है। सर्जेराव अपनी बटी शारदीया का ब्याह सिंधिया मे कराना चाहता है। इसी बीच जिसी बात नरसिंह की विमुक्ति की विनती करता है। तदुपरान्त सर्जेराव सिंधिया आदि सब शराब म बहोश हो जाते हैं। एक अन्य दश्य म नरसिह ग्वालियर कारागार म गडपति म बातचीत कर रहा है। शारदीया की शादी हो चुकी है। नरसिंह स्वय बुनी हुई पाँच ताले की साडी गडपति को दिखाता है। शरद पूर्णिमा के दिन वह बायजा की याद कर अपने स्वगत भाषण म कह उठता है शरद पूर्णिमा ! और आज आज जब मैं इसे पूरा कर रहा हू। लेकिन इसम आश्चय की क्या बात है तुम्हारे ही रूप का ताना बाना तो मरी उगलिया का गति द रहा था। और आज चाँदनी आई है तो तुम्ह भी आना है। तम न जान कहाँ हो ? शायद पूना म। शायद कागल म कागज ! यम का सन्देश बादल ल जा सकता। लेकिन चाँदनी चलती ही नहीं। [2] यहाँ

---

1 शारदीया, पृ० ७०
2 वही पृ० ७५
3 वही, पृ० १०४

नरसिंह में सर्जनात्मक चिंतन एवं अंतःप्रेरणा कार्यान्वित हो गई है। उसी दिन महारानी बायजा बन्दीगृह में आ जाती है। वह नरसिंह से कहती है कि यह सब बाबा के हठ से हुआ है। वह नरसिंह को मुक्त करना चाहती है, पर नरसिंह वहाँ रहना ही पसन्द करता है। वह स्वयं न बुनी शानदार साड़ी महारानी बायजा को उपहार के तौर पर बहाल कर देता है। बायजा रोती रोती वापस चलने लगती है। नरसिंह कह उठता है, 'तुम जाओ, महारानी। तुम जाओ बायजाबाई आंसुओं में नहीं, मुस्कान में भीगती हुई। तुम मेरी शारदीया! मेरी शारदीया तुम जो मेरी हो, हमेशा थी हमेशा रहोगी।'[1] यहाँ नरसिंह में औचित्य स्थापन लक्षित होता है। मनोविकार की दृष्टि से वह यदि ऐसे विचार प्रदर्शित न करता तो शायद पागल हो जाने की सम्भावना थी।

इस नाटक का प्रमुख पात्र है शारदीया। वह भावुक श्रेणी की स्त्री है। कथासूत्र उसी के चारों ओर चक्कर काटता रहता है। वह आचार विचार एवं चिंतन में नरसिंह को ही देखती है। नरसिंह कर्त्तव्यतत्पर एवं अन्तर्मुखी पात्र है। उसका इड शारदीया के इर्दगिर्द चक्कर काटने लगता है पर उसका नतिकाह उतना ही प्रबल है। सर्जेराव घाटगे परम्परा से चिपके रहने वाला बहिर्मुखी भावुक पात्र है।

इस नाटक के संवाद संक्षिप्त, स्वाभाविक, प्रभावशाली और ओजमय हैं। यथा —

बायजा०—तुम नहीं जानते नरसिंह कि मेरे ऊपर क्या बीती है! किन आकांक्षाओं के यज्ञ में आहुति बनाई गई हूँ।

नरसिंह—लेकिन सिर्फ क्या महाराज ने तुम्हारे ही लिए क्या हठ किया ?

बायजा०—रूपासक्ति जिसे वह प्रेम कहते हैं।[2]

उपर्युक्त संवादों में अन्यान्यश्रिया विश्लेषण पद्धति परिलक्षित होती है।

माथुर जी की भाषा सरल और पात्रों के अनुकूल है। उनके शब्द सरल हैं। इस नाटक में भावात्मक शैली का यथार्थ निरूपण हुआ है। मुहावरों कहावतों का प्रयोग इसमें बड़ी सुन्दरता से हुआ है। जैसे—दामन छुड़ाना, पीठ दिखाकर भागना, चटनी बनाना, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, कानों पर जूँ रेंगना, अपमान का घूँट पीकर रह जाना, शादी समाप्त करना, पौ फटना, भाग्य खुल जाना[3] इत्यादि। इसमें नाटकत्व और

---

१ शारदीया, पृ० ११४

२ वही, पृ० ११०

३ वही, पृ० क्रमशः २८, ३७, ३८, ३९, ३९, ५१, ७२, १०७

रविन्द्र का सुन्दर समन्वय हुआ है । उदाहरण के तौर पर—

(१) शरद पूर्णिमा की विरह वियोग के लम्बे पथ पर चाँदनी बिखेर देती है ।

(२) मनस्विया के भविष्य का निमन्त्रण रखने के पत्रों में लिखा होता है।

(३) मैं उन्हें देख रहा हूँ अपने हरेक बन्धन को तोड़ते हुए उन्हीं जग रात की नलन्दी में लता का फूल खिलता है । उनकी नर्मीली गुण व इस तहखाने के पत्थरों में बस गई है ।[1]

अतः उक्त नाटक पर दृष्टिपात करने के पश्चात स्पष्ट होता है कि इसमें गजात्मक चिन्तन एवं अन्तःप्रेरणा का यथोचित परिष्कार हुआ है ।

आषाढ का एक दिन

मोहन राकेश ने आषाढ़ का एक दिन नाटक में महाकवि कालिदास के का य प्रेरणा स्रोतों पर गहरा प्रकाश डाला है ।

प्रथम अंक

मल्लिका की माँ अम्बिका कालिदास से घृणा कर रही है । वह अपनी बेटी मल्लिका का ब्याह किसी अन्य युवक से करना चाहती है । पर मल्लिका को कवि कालिदास के सिवा अन्य कोई व्यक्ति नहीं भाता । वह अपने प्रियतम् कवि कालिदास के प्रति अपनत्व प्रदर्शित करते हुए अपनी माँ से कहती है मैं जानती हूँ माँ कि अपवाद होता है । तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता । मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है । मेरे लिए वह सम्बन्ध और सम्बन्धों से बड़ा है । मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है कोमल है अनश्वर है ।[2] यहाँ मल्लिका की आत्मचेतना स्पष्ट रूप से उमड़ पड़ी है । इतने में ही हरिणशावक लेकर कालिदास मल्लिका के घर आ जाता है। उसके पीछे से आखेटक दन्तुल भी आता है । दन्तुल हरिणशावक वापस माँगता है, पर कालिदास उसे नहीं देता । थोड़े ही समय में दन्तुल को ज्ञात होता है कि हरिणशावक को अपनाने वाला कवि कालिदास है। वह मल्लिका से बता देता है कि आज उज्जयिनी का राज्य ऋतु संहार के लेखक का सम्मान करना और उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है । कहना न होगा कि दन्तुल आखेटक न होकर राजपुरुष है। तत्पश्चात् मल्लिका अपनी माँ से

---

१ नारदीया, पृ० क्रमशः २७, ५७ १०१

२ मोहन राकेश आषाढ़ का एक दिन, प्रथम संस्करण, पृ० १३

तृतीय अंक

अम्बिका चल बसी है। मातुल कवि कालिदास को लेकर मल्लिका के घर आ जाता है। अब मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है। वह मातुल से कहता है [illegible] यह मेरे अभाव की सन्तान है। जानते हो मैंने अपना नाम [illegible] एक विक्रय [illegible] किया है और अब मैं नाम नहीं पदवी [illegible] हूँ ? मैंने अपने भाव के कोष को रिक्त नहीं होने दिया। पर तुम्हारे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हो ? [1] आज आषाढ़ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गरज रहे हैं। वर्षा ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। परन्तु फिर भी [1] इसमें नाटक होता है कि मैं नहीं जानता कि इस क्रम में परिवर्तित हुआ है जो कालिदास प्रणीत त्रिविध वृत्ति में मिलता जुलता है। इतने में ही कालिदास वहीं आ जाता है। मल्लिका अन्दर में चली जाती है। कालिदास उससे कहता है कि मैं कहता हूँ कि तुम भी वह नहीं हो। सब कुछ परिवर्तित हो गया है। आज भी विगत स्मृतियाँ को लगातार चल कर उठता है मैं यहाँ से क्या नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं कैसे भार का शासन सम्भालने जा रहा हूँ ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परन्तु मुझे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। सम्भवतः उसमें कहीं उन सब से प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी मेरा उपहास उड़ाया था। अधिकार मिला सम्मान बहुत मिला जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश भर में पहुँच गयीं पर तु मैं सुखी नहीं हुआ। मैं अपने को सहारा देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और प्रेरित होता रहा। मैं तब तुम से मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था कि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी।[2] उक्त सम्भाषण में कुण्ठा के प्रति यथायथानुकूल प्रतिक्रिया प्रकट हुई है। वह फिर कहता है 'जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। कुमार सम्भव की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दित यक्षिणी तुम हो।

---

१ अषाढ का प्रथम दिन, पृ० १००-१०२

२ वही पृ० १०७-१०८-१०९

अभिज्ञान शाकुन्तल मे शकुन्तला के रूप मे तुम्ही मेरे सामने थी। [1] उक्त सम्भाषण से मालूम होता है कि कालिदास की प्रतिभा का मूल प्रेरणास्रोत है मल्लिका। प्रेरकीय मनोविज्ञान का यह अनूठा उदाहरण है। तत्पश्चात अपनी बच्ची को लेने के लिए मल्लिका अन्दर जाती है। इतने मे कालिदास बाहर निकल जाता है। मल्लिका उसे पुकारती है। उसके पैर बाहर की ओर बढने लगते हैं परन्तु बच्ची को देखकर जैसे जकड जाती है। अन्त मे बिजली बार बार चमकती रहती है और मेघ गर्जन सुनायी देता रहता है।

इस नाटक का नायक है कालिदास। वह सजनशक्ति प्रतिभा का श्रेष्ठ कवि है। मल्लिका आदर्श प्रेमी एव स्त्री-सुलभ भावना से ओत प्रोत पात्र है। अम्बिका व्यवहार कुशल नारी है। विलोम वासना परिचालित पात्र है।

'अषाढ का एक दिन' के सवादो म पात्रों के मनोवेगो का उतार चढाव यथार्थ रूप म चित्रित हुआ है। ये छोटे छोटे, चुस्त और गठीले हैं। उदाहरणतया–

मल्लिका–माँ!

अम्बिका–इसके मन मे यह कल्पना नही है क्योकि यह भावना के स्तर पर जाती है। इसके लिए जीवन मे

मल्लिका–तुम उठ क्यो आयी माँ? तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नही है। चलो चल कर लेट जाओ।[2]

उक्त सवादो मे सवेगात्मक विकास का परिचालन हुआ है।

मोहन राकेश की भाषा प्रवाहपूर्ण, प्रसगानुकूल सरस और कलात्मक है। उनके वाक्य छोटे और भाव व्यजक हैं। उनकी भाषा काव्यात्मकता से ओत प्रोत है। जसे–

(१) वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ बहुत अदभुत नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय!

(२) मैं जीवन म पहली बार समझ पायी कि क्यो कोई पर्वत शिखरो को सहलाती हुई मेघ मालाओ म खो जाता है क्या किसी को अपने तन मन की अपेक्षा आकाश म बनते मिटते चित्रो का इतना मोह हो रहता है।[3]

(३) तुम ने लिखा था कि एक दोष गुणो के समूह में उसी प्रकार छिप

---

१ अषाढ़ का एक दिन, प० ११०

२ वही, प० ७९

३ वही, पृ० क्रमश ७, ८

जाता है जसे दृत की किरणा म वलक पर तु ारिद्रय नही छिपाता ।[1]

इस नाटक म प्रयुक्त सूक्तिया द्वारा लेखक का चिंतन दृष्टिगोचर होता है । यथा–

(१) जीवन की स्थूल आवश्यकताए ही ता सब कुछ नही है ।

(२) माँ का जीवन भावना नहीं कम है ।

(३) सम्मान प्राप्त हान पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्व को बढ़ा देती है ।

(४) योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निमाण करती है । शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा हाती है ।

(५) अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता ।

(६) कोई व्यक्ति उन्नति करता है तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद अनायास जुड़ने लगते हैं ।

(७) जीवन एक भावना है । कोमल भावना । बहुत बहुत कोमल भावना ।

(८) प्रभुता म बहुत सामर्थ्य होता है ।[2]

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुचत हैं कि इस नाटक पर सौ दयात्मक कल्पना तथा फ्रॉयडीय मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव है ।

लहरो के राजहस

नाटककार मोहन राकेश ने लहरो के राजहस नाटक के द्वारा नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी के मन का अन्तर्द्वन्द्व यथार्थ रूप म चित्रित किया है ।

प्रथम अक

नन्द की पत्नी सुन्दरी कामोत्सव के आयोजन म व्यस्त है । इस उत्सव के लिए बहुत बड़े अतिथियो को आमंत्रित किया गया है । वार्तालाप के सिलसिले म सुन्दरी अलका से कहती है क्या ! यह सच नहीं ? राजकुमार सिद्धार्थ क्यो चुपचाप एक रात घर मे निकल पड़े थ ? बात बहुत साधारण सी है अलका ! नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है ।[3] सुन्दरी के इस चिंतन म तर्कना प्रक्रिया लक्षित होती है । इतने म कोई तालाब म जल क्रीडा करने वाले हसो पर पत्थर फेंकता है । इससे सुन्दरी क्रोधायमान हो उठती है । हसी मजाक उडाने के

---

१ अषाढ का एक दिन, पृ० १०१

२ वही पृ० क्रमश १३ १४ २४ ३१ ३४ ५५ ७९ ११७

३ मोहन राकेश लहरो के राजहस १९६३ पृ० २९

उद्दश्य से श्यामांग ने यह कृत्य किया है। सु दरी श्यामांग को अन्धकूप मे छोड देने की सजा फमाती है। श्यामांग अल्का का प्रेमी है। इसी कारण वह सुन्दरी से कह उठती है 'कई दिन से देख रही हूँ कि वह कि वह अपने मे ही कही खोया जा रहा है मन मे कुछ ग्रथियाँ उलझ गइ हैं और वह उसे सहानुभूति और उपचार की आवश्यकता है, देवि ! म कितना चाहती थी कि म उसे कि उसके लिए कुछ किया जा सके ।"[1] इस वक्तव्य से श्यामांग के स्नायु-रोग पर प्रकाश पडता है। फ्रायड के अनुसार स्नायु-रोगियो के साधारण रूपा म यौन जीवन का कारणात्मक महत्व इतना साफ दिखाई देता है कि उसी ओर ध्यान खिच जाता है।[2] यही अवस्था श्यामाग म दष्टिगोचर होती है। काफी समय के बाद न द बाहर से घर आ जाता है। इसी कारण वह उससे बातचीत तक नही करना चाहती। उसे मालूम होता है कि बाहर से बहुत कम लोग आने वाले हैं। इससे उसका गुस्सा बढ़ जाता है।

द्वितीय अक

सुन्दरी कल की भूल के लिए अपने पति न द स क्षमा माँगती है। इस अवसर पर नन्द उससे कहता है, 'तुम व्यथ हा मन म खेद ला रही हो। तुम उस समय विक्षुब्ध थी। मैं तुम्हारी मन स्थिति म होता, तो शायद मैं भी ऐसे ही करता।'[3] यहाँ न द की स्थनिक सवदनशीलता का परिचय मिलता है। तदुपरा त दपण के सम्मुख सुन्दरी और नन्द के बीच वार्तालाप चलता है। सुन्दरी को अपने रूप का गव है। थोडा देर म भिक्षुओ और भिक्षुणियो का स्वर सुनाइ देता है। इसी बीच दपण टूट जाता है। सुन्दरी के मन मे नन्द के बारे म शक जाता है। इस समय का एक वार्तालाप दृष्टव्य है।

सुन्दरी–आप उस समय यह नही सोच रहे थे कि भिक्षुओ की मण्डली मे शायद व भी होगी शायद आपस भिक्षा लेने के लिए ही व इस द्वार पर रुकी होगी ?

नन्द–मैं तो नही, पर लगता है तुम यह बात सोच रहा थी। इसीलिए तुम्हे लगा कि शायद म भी "

उपयुक्त सवाद म फ्रायड प्रणीत स्थानान्तरण की अभिव्यक्ति हुई है।

---

१ मोहन राकेश लहरा के राजहस प० ४०

२ फ्रायड फ्रायड मनोविश्लेषण, पाँचवा सस्करण, प० २५३

३ लहरा के राजहस, पृ० ७२

४ वहा पृ० ९०

स्पष्टीकरण के इस द्वंद्व को लेकर फ्रायड ने कहा है कि रागात्मक इच्छाओं और यौन दमन में, भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियों में जबर्दस्त द्वन्द्व चल रहा है। दोनों पक्षों में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वन्द्व दूर नहीं होता। इन दोनों में से किसी भी उपाय से भीतरी द्वन्द्व का अन्त करने में सफलता नहीं मिलेगी। दोनों अवस्थाओं में एक पक्ष असन्तुष्ट रहेगा।[1] यह सुन्दरी और नन्द में इस द्वंद्व की अवतारणा हुई है। अन्त में नन्द अचानक उठकर बाहर चला जाता है। स्पष्ट ही है कि यह द्वंद्व की ही परिणति है।

तृतीय अंक

सुन्दरी अपने पति की बार बार राह देख रही है पर उसके न आने से वह विकल हो उठती है। उसके दिल को मानो ठेस पहुँची है। वह अलका से कहती है 'सूचना न देने से वे लौट तो न जाते। परन्तु अलका मैं अब भी नहीं सोच पा रही कि यह हुआ कैसे राजहंस स्वयं उड़कर चले गए इसमें भी विश्वास नहीं होता और यह भी मन नहीं मानता कि किसी ने उन्हें।'[2] यहाँ सुन्दरी में आरम्भिक परिकल्पना का उद्भव हुआ है। अब नन्द का जीवनमार्ग ही अलग हो गया है। इसी कारण वह सुन्दरी से नहीं मिल पाता। पर वह स्वप्न में सुन्दरी से जरूर मिलता है। जागने के बाद सुन्दरी अलका से कहती है देखा कि मैं भूल में पड़ी हूँ सहसा एक ठण्डे स्पर्श से आँख खुल जाती है। आँख खुलते ही (सिहरकर) देखती हूँ कि एक रुण्ड मुण्ड आकृति मेरे ऊपर झुकी हुई है, उसका हाथ मेरे माथे पर है तभी मेरे मुँह से चीख निकल जाती है और मैं मैं सचमुच जाग जाती हूँ। प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि यह फ्रायड प्रणीत मृत्यु स्वप्न है। अन्त में सुन्दरी का अभिमान गल जाता है। वह कहती है कि मुझे एकान्त चाहिए बिल्कुल एकान्त।

इस नाटक के प्रधान पात्र हैं नन्द और सुन्दरी। इन दोनों का आन्तरिक द्वन्द्व दृष्टव्य है। नन्द अन्तर्मुखी भावुक की श्रेणी में आता है। सुन्दरी इड और इगो से परिचालित नारी है।

लहरों के राजहंस के संवाद संयत गतिशील, सरल, मार्मिक और प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर—

सुन्दरी—और आपने इसकी चर्चा तक मुझसे करना आवश्यक नहीं समझा?

---

१ फ्रायड मनोविश्लेषण पृ० ३९५–३९६

२ लहरों के राजहंस, पृ० १०२

नन्द–मैं तुम्हारे उत्साह में बाधा डालना नहीं चाहता था। सोचा था कि इसमें से अधिकांश लोग एक बार जाकर कहने से

सुन्दरी–कितना मान होता मेरा कि जाकर कहने से जो लोग आते, उनका मुझे इस घर में स्वागत करना पड़ता! आपने यह नहीं सोचा कि मैं कि मैं ।[1]

मुक्त संवादों से ज्ञात होता है कि विषम परिस्थिति के कारण सुन्दरी का आत्मसम्मान जाग उठा है। अर्थात् यहाँ उसके मानस में अहम् और नैतिकाहम में द्वन्द्व चल रहा है।

उनकी भाषा में सजीवता, सरलता, भावात्मकता एवं प्रवाहपूर्णता है। इस नाटक के भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली। इसमें प्रयुक्त सूक्तियाँ गम्भीर विचारों से भरी हुई हैं। जैसे–

(१) बात मन में आने से ही पूरी हो जाती है।

(२) कहने का अधिकार न हो, पर सोचने का अधिकार तो किसी को भी रहता ही है।

(३) व्याकुलता ही वास्तविक आरम्भ है।[2]

इस नाटक का सम्यक विवेचन करने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि इस पर फ्रायड के मनोविश्लेषण का अत्यधिक प्रभाव है।

निष्कर्ष

डा० दशरथ ओझा, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश के स्वच्छन्दतावादी नाटकों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उनके नाटकों पर वात्स्यायन, फ्रायड, मनु आदि के विचारों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। उनके नाटकों के पुरुष पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व दृष्टव्य है। उनकी नारियाँ भावुक हैं। कथोपकथन संक्षिप्त एवं कलापूर्ण बन पड़े हैं। भाषा में काव्यत्व है। सूक्तियों में नाटककार के सूक्ष्म चिंतन चित्रित हुए हैं।

---

१ लहरों के राजहंस, ५८

२ वही, पृ० क्रमशः २३, ७१, १२१

स्थानान्तरण के इस द्वंद्व को एक्र फ्रायड ने कहा है कि रागात्मक इच्छाओं और यौन दमन में, भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियों में जबदस्त द्वंद्व चल रहा है। दोनों पक्षों में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वंद्व दूर नहीं होता। इन दोनों में से किसी भी उपाय से भीतरी द्वंद्व का अन्त करने में सफलता नहीं मिलेगी। दोनों अवस्थाओं में एक पक्ष असंतुष्ट रहेगा।[1] यह सुन्दरी और नन्द में इस द्वंद्व की अवतारणा हुई है। अन्त में नन्द अचानक उठकर बाहर चला जाता है। स्पष्ट ही है कि यह द्वंद्व की ही परिणति है।

तृतीय अंक

सुन्दरी अपने पति की बार बार राह देख रही है पर उसके न आने से वह विकल हो उठती है। उसके दिल को मानो ठेस पहुँची है। वह अलका से कहती है 'सूचना न देने से वे लौट तो न जाते। परन्तु अलके मैं अब भी नहीं सोच पा रही कि यह हुआ कैसे राजहंस स्वयं उठकर चले गए इसमें भी विश्वास नहीं होता और यह भी मन नहीं मानता कि किसी ने उन्हें ।'[2] यहाँ सुन्दरी में आरम्भिक परिकल्पना का उद्भव हुआ है। अब नन्द का जीवनमार्ग ही अलग हो गया है। इसी कारण वह सुन्दरी से नहीं मिल पाता। पर वह स्वप्न में सुन्दरी से जरूर मिलता है। जागने के बाद सुन्दरी अलका से कहती है देखा कि मैं झूले में पड़ी हूँ सहसा एक ठण्डे स्पर्श से आँख खुल जाती है। आँख खुलते ही (सिहरकर) देखती हूँ कि एक रुण्ड मुण्ड आकृति मेरे ऊपर झुकी हुई है, उसका हाथ मेरे माथे पर है तभी मेरे मुँह से चीख निकल जाती है और मैं मैं सचमुच जाग जाती हूँ।' प्रस्तुत उद्धरण से ज्ञात होता है कि यह फ्रायड प्रणीत मृत्यु स्वप्न है। अन्त में सुन्दरी का अभिमान गल जाता है। वह कहती है कि मुझे एकान्त चाहिए बिल्कुल एकान्त ।

इस नाटक के प्रधान पात्र हैं नन्द और सुन्दरी। इन दोनों का आन्तरिक द्वंद्व दृष्टव्य है। नन्द अन्तर्मुखी भावुक की श्रेणी में आता है। सुन्दरी इड और इगो से परिचालित नारी है।

लहरों के राजहंस में संवाद संयत गतिशील, सरल, मार्मिक और प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर—

सुन्दरी—और आपने इसकी चर्चा तक मुझसे करना आवश्यक नहीं समझा ?

---

१ फ्रायड मनोविश्लेषण पृ० ३९५-३९६

२ लहरों के राजहंस, पृ० १०२

नन्द-मैं तुम्हारे उत्साह म बाधा डालना नहीं चाहता था । सोचा था कि इनमे से अधिकांश लोग एक बार जाकर कहने स

सुदरी-कितना मान होता मेरा कि जाकर कहने से जो लोग आते, उनका मुझे इस घर म स्वागत करना पडता ! आपने यह नहीं सोचा कि मैं कि मैं ।[1]

मुक्त सवादो स ज्ञात होता है कि विषम परिस्थिति के कारण सु दरी का आत्मसम्मान जाग उठा है । अर्थात् यहाँ उसके मानस में अहम् और नतिकाह म द्वन्द्व चल रहा है ।

उनकी भाषा म सजीवता, सरलता, भावात्मकता एव प्रवाहपूर्णता है । इस नाटक के भाषा की सबस बडी विशेषता है । मनाविश्लेषणात्मक शली । इसम प्रयुक्त सूक्तियाँ गम्भीर विचारा से भरी हुई हैं । जसे–

(१) बात मन मे आन से ही पूरी हो जाती है ।

(२) कहने का अधिकार न हो, पर सोचने का अधिकार तो किसी को भी रहता ही है ।

(३) व्याकुलता ही वास्तविक आरम्भ है ।[2]

इस नाटक का सम्यक विवेचन करने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि इस पर फायड के मनोविश्लेषण का अत्यधिक प्रभाव है ।

निष्कर्ष

डा० दशरथ ओझा, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश के स्वच्छन्दतावादी नाटका के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उनके नाटको पर वात्स्यायन, फायड, मनु आदि के विचारो का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है । उनके नाटकों के पुरुष पात्रो का अन्तर्द्वन्द्व दृष्टव्य है । उनकी नारियाँ भावुक हैं । कथापकथन सक्षिप्त एव कलापूर्ण बन पडे हैं । भाषा मे माधुर्य है । सूक्तियों म नाटककार के सूक्ष्म चिंतन चित्रित हुए हैं ।

---

१ लहरो के राजहस, ५८

२ वही, पृ ८ क्रमश २३ ७१ १२१

उपसंहार

इतने विस्तृत अध्ययन विश्लेषण के अनन्तर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि स्वच्छन्दतावादी नाटकों में मनोविज्ञान का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण रहा है। इस मानव का आन्तरिक मनोजीवन अगम्य है। उसके व्यवहारों की क्रिया प्रतिक्रियाएँ भी जटिल हैं। आखिर वह मनुष्य का जीवन है। अर्थात् उस जीवन की झाँकी नाटकों में परिलक्षित होना अवश्यम्भावी है। प्रस्तुत प्रबन्ध में पात्रों के मन की अतल गहराइयों में जाकर मनोविज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से छानबीन की है जिससे उनके अनेक रूपों पर प्रकाश पड़ता है

स्वच्छन्दतावादी पूर्व युग की नाट्यकला बाल्यावस्था में होते हुए भी उसमें मनोविज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। अधिकांश रचनाओं में मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन रचनाओं में तत्कालीन समाज का चित्र तो अंकित हुआ है साथ ही साथ बुराइयों एवं कुरीतियों के प्रति विद्रोह भी उमड़ पड़ा है।

प्रसाद के नाटकों पर तत्कालीन युग का अमिट प्रभाव है। एक ओर उनके नाटकों के पात्रों में उदात्त व्यवहार है तो दूसरी ओर प्रेमासक्ति भी। प्रसाद राष्ट्रीय जीवन से जितने प्रभावित हैं। उतने ही प्रणय मनोविज्ञान से परिचित। उनके नाटकों में प्रेम मनोविज्ञान के कई मनोज्ञ चित्र अंकित हुए हैं। इसी कारण उनके नाटकों में हम फ्रायड एवं वात्स्यायन की मनोविज्ञान सम्बन्धी अनेक धारणाओं तथा सिद्धान्तों का चमत्कार पाते हैं। उनके कुछ पात्र आत्महत्या की ओर आकृष्ट होते हैं जिनमें नाटककार का अचेतन मन दृष्टिगत होता है क्योंकि प्रसाद ने अपने जीवन में पाँच मृत्यु के आघात सहे हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त महात्मा गाँधी जी के विचारों से विशेष प्रभावित हैं। इसी कारण उनके नाटकों में देशनिष्ठा जीवन निष्ठा तथा सवकप सेवाभाव का मनोज्ञ चित्रण हुआ है। पन्तजी हृदय से सच्चे कलाकार हैं। वे संगीत प्रेमी हैं और चित्रकला के शौकीन भी। इन गुणों के कारण नाटकों के कथानकों में रंग भरने में उनको अधिक सफलता मिली है। उनके पात्रों के अचेतन मन

के द्वंद्व एवं उन्नतीकरण के भाव दृष्टव्य हैं। उनकी सभी नाट्यकृतियों में मनोविज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

भट्ट जी नाटक को साहित्य का सबसे सबल अंग मानते हैं। वे असहयोग आन्दोलन में भूमिगत हो चुके थे, जिसकी जीती जागती अनुभूति 'क्रांतिकारी' में प्रस्फुटित हुई है। उनके नाटकों पर उनके सम्पन्न एवं प्रभावमय व्यक्तित्व की गहरी छाप है। वे अपने नाटकों के पात्रों के साथ तल्लीन हो जाते हैं। फिर भी वे अपना मत कभी उन पर नहीं थोपते। उनके पात्र मनोविज्ञान के अनुकूल ही बर्ताव करते हैं। इसकी यथार्थता क्रांतिकारी की रेणु तथा नया समाज की कामना में लक्षित होती है। क्योंकि उनमें मनोविज्ञान सम्मत मेस्मरिज्म का आविष्कार हुआ है। अतः हम कह सकते हैं कि उदयशंकर भट्ट गहरी जीवनानुभूति एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान का ज्ञान उनके नाटकों में प्रतिबिम्बित हुआ है।

प्रेमी जी के नाटकों से प्रेमी की भारतीय संस्कृति के प्रति होने वाली आस्था प्रकट होती है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में हिन्दू मुस्लिम एकता के बीज बोये हुए दृष्टिगोचर होते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने जीवन में कई कठोर आघात सहे हैं। वे सन् १९३० ई० और सन् १९४२ ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल हो आये हैं। अतः इन सभी अनुभूतियों की उनकी नाट्य रचनाओं में उद्भावना हुई है। उन्होंने भूतकाल में वर्तमान योजन का सदैव प्रयत्न किया है। उनके नाटकों में बाल मनोविज्ञान, नारी मनोविज्ञान एवं नेता मनोविज्ञान के अप्रतिम चित्र साकार हुए हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा की मनोविज्ञान में विशेष रुचि परिलक्षित होती है। वकालत के पेशे के कारण उन्होंने कतिपय पात्रों के मनोभावों की परख की है। और उचित अवसर पाकर उनको नाटकों में अक्षर बद्ध भी कर दिया है। एक ओर उनके एतिहासिक नाटकों में प्रेरणावादी मनोविज्ञान के सबल चित्र अंकित हुए हैं तो दूसरी ओर उनके सामाजिक नाटकों में सेक्स समस्या का यथार्थ आविष्कार। साथ ही साथ मनोविकृति से ग्रस्त पात्रों के मनोभावों का चित्रण करने में भी उनको यथेष्ट सफलता मिली है।

डा० रामकुमार वर्मा ने नाटकों में मनोविज्ञान के कतिपय सिद्धांतों की यथार्थ अवतारणा हुई है। डा० वर्मा की साहित्यिक अभिरुचि उच्च कोटि की है। वे कला के समर्थक एवं संगीतज्ञ हैं। उनके नाटकों में फ्रायड की धर्म कल्पना एवं भारतीय आचार्यों की धर्म कल्पना का सुंदर समन्वय स्थापित हुआ है। उनकी नाट्यकृतियों पर फ्रायड प्रणीत मनोविश्लेषण का जितना प्रभाव है उतना ही वाटसन प्रणीत व्यवहारवाद का। उनके नाटक प्रतीय

राजस्थान केसरी अथवा महाराणा प्रतापसिंह नवां संस्करण सं० १९९६ नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

जयशंकर प्रसाद

राज्यश्री आठवां संस्करण सं० २०१३, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद

विशाख सप्तम संस्करण सं० २०१३ भारती भण्डार लीडर प्रेस इलाहाबाद

अजातशत्रु चौबीसवां संस्करण सन १९७०, भारती भण्डार लीडर प्रेस इलाहाबाद।

कामना अष्टम आवृत्ति सं० २०२५ भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद।

जनमेजय का नागयज्ञ अष्टम संस्करण भारती भण्डार लीडर प्रेस प्रयाग।

स्कन्द गुप्त चौदहवां संस्करण सं० २०१८, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद।

चन्द्रगुप्त सोलहवीं आवृत्ति सं० २०२८, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद।

ध्रुवस्वामिनी द्वादश आवृत्ति, २०२१ भारती-भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

गोविन्दवल्लभ पन्त

वरमाला नवमावृत्ति सं० २०१४ गंगा ग्रंथागार लखनऊ।

राजमुकुट षष्ठमावृत्ति १९५१ गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ।

अंगूर की बेटी द्वितीयावृत्ति सं० २००६ गंगा-ग्रंथागार लखनऊ।

अंतःपुर का छिद्र द्वितीयावृत्ति सं० २०११ गंगा ग्रंथागार लखनऊ।

ययाति द्वितीय संस्करण १९६५ साहित्य सदन देहरादून।

सुजाता तीसरा संस्करण १९६१ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली ६।

अंगूरी मूर्ति प्रथम संस्करण १९६८ राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० दिल्ली ६

उदयशंकर भट्ट

विक्रमादित्य पांचवां संस्करण १९५७ हिन्दी भवन इलाहाबाद।

दाहर अथवा सिन्ध-पतन दूसरा संस्करण १९६२ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली ६

विद्रोहिणी अम्बा द्वितीय संस्करण १९६४ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली ६

सगर विजय पांचवां संस्करण १९५६ मसिजीवी प्रकाशन नई दिल्ली।

मुक्तिदूत १९५० आत्माराम एण्ड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

क्रांतिकारी तृतीय संस्करण १९६९ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६

नया समाज मसिजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली।

हरिकृष्ण प्रेमी

रक्षा-बन्धन २१वाँ संस्करण, हिन्दी भवन, ३१२ रानी मण्डी, इलाहाबाद।

शिवा-साधना चौथा संस्करण, १९५२ हिन्दी-भवन, इलाहाबाद ३।

प्रतिशोध तीसरा संस्करण १९५६, हिन्दी-भवन, इलाहाबाद।

आहुति तेईसवाँ संस्करण, १९७०, हिन्दी-भवन, इलाहाबाद।

स्वप्न-भंग प्रथम संस्करण १९४०, वाणी-मन्दिर अस्पताल रोड लाहौर।

छाया तीसरा संस्करण, १९५२, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली।

बन्धन तृतीय संस्करण, १९४५, १० अस्पताल रोड लाहौर।

विषपान पंचम संस्करण, १९५८, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली ६

उद्धार चतुर्थ संस्करण, १९५६, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६

वृन्दावनलाल वर्मा

राखी की लाज दसवाँ संस्करण, मयूर प्रकाशन, झाँसी।

फूलों की बोली तृतीय संस्करण १९१६ मयूर प्रकाशन, झाँसी।

बाँस की फाँस द्वितीय संस्करण १९५३, ,, , ,

झाँसी की रानी छठवाँ संस्करण १९५२, ,, ,,

मंगल-सूत्र द्वितीय संस्करण १९५३ ,, , ,,

खिलौने की खोज तृतीय वृत्ति, १९५६, मयूर प्रकाशन झाँसी।

केवट दूसरा संस्करण, १९५४, , ,

बीरबल चतुर्थ वृत्ति १९५७, मयूर प्रकाशन, झाँसी।

डा० रामकुमार वर्मा

विजय-पर्व अष्टम सं०, १९६५, रामनारायणलाल, इलाहाबाद।

कला और कृपाण तृतीय सं०, १९६२ , ,

नाना फडनवीस १९६७ रामनारायणलाल बेनी प्रसाद इलाहाबाद।

जौहर की ज्योति प्रथम संस्करण १९६७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६

महाराणा प्रताप प्रथम संस्करण, १९६७, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद-२

सारंग-स्वर प्रथम संस्करण, १९७०, राजपाल एण्ड संस कश्मीरी गेट दिल्ली।

डॉ० दशरथ ओझा

सम्राट समुद्रगुप्त प्रथम संस्करण, १९५२ राजपाल, एण्ड संस, दिल्ली-६

जगदीशचन्द्र माथुर

कोणार्क एकादश संस्करण, सं० २०२३, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

पारदीया दूसरी बार १९७५ सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली
मोहन राकेश
आषाढ़ का एक दिन प्रथम संस्करण १९५८ राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली–६
लहरों के राजहंस १९६३ राजकमल प्रकाशन दिल्ली–६

आलोचनात्मक एवं अन्य सहायक ग्रन्थ

डा० इन्दुप्रभा पाराशर प्रसाद–साहित्य में मनोभावों के स्वरूप १९७० ज्ञान प्रकाशन लखनऊ–३
डा० उर्वशी जे० सूरती आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान १९६६ अनुसंधान प्रकाशन कानपुर–३
डा० कमलकुमारी जौहरी हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी उपन्यास १९६५ प्रथम रामबाग कानपुर
डा० गणेशदत्त गौड़ आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन १९६५ सरस्वती पुस्तक सदन मोतीकटरा आगरा
डा० गिरीश रस्तोगी हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन १९६७ प्रथम कानपुर–१२
डा गोपीनाथ तिवारी भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य १९५९ हिन्दी–भवन इलाहाबाद
डा० गंगाचरण त्रिपाठी काव्यतत्व १९५७ रवि प्रकाशन रायपुर (म० प्र०)
डा० चन्दूलाल दुबे हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तु विकास प्रथम संस्करण, १९७० दिल्ली पुस्तक सदन दिल्ली–७
पं जगदीशनारायण दीक्षित प्रसाद के नाटकीय पात्र सं० २००८ साहित्य निकेतन कानपुर
जगदीशचन्द्र जोशी प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक प्रथम संस्करण सं० २०१६ सरस्वती पुस्तक सदन आगरा
डा० जगन्नाथ शर्मा प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन षष्ठावृत्ति सं० २०२० सरस्वती मन्दिर वाराणसी
जयदेव तनेजा समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि शाकुन्तल प्रकाशन १९७१ दरियागंज दिल्ली ६
जयनाथ 'नलिन' हिन्दी नाटककार द्वितीय संस्करण १९६१ आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
डा० दशरथ सिंह हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, प्रथम संस्करण, १९६२,

विद्या-मन्दिर, वाराणसी
डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास प्रथम संस्करण १९७० राजपाल एण्ड संस दिल्ली
प्रो० दशरथ झा, प्रो० गुरुप्रसाद कपूर हिन्दी नाटक की रूपरेखा हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली-६
डा० देवराज उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान द्वितीय संस्करण, १९६३ साहित्य भवन (प्रा०लि०) इलाहाबाद
देवराज उपाध्याय साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रथम संस्करण, १९६४ एस० चन्द एण्ड कम्पनी नई दिल्ली
देवदत्त शास्त्री तथा अन्य आदि सम्पादित पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्रन्थ १९६३, किशोर मंच इलाहाबाद ३
डॉ० देवर्षि सनाढ्य शास्त्री संस्करण प्रथम सं० २०१७ चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
डा० धनराज मानधाने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास प्रथम संस्करण, १९७१ ग्रन्थम कानपुर-१२
डा० धनञ्जय प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक संस्करण प्रथम, १९७० स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद
डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक, नवीन संस्करण १९७०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
डा० नगेन्द्र तथा अन्य आदि सम्पादित सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ भारतीय नाट्य साहित्य सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समारोह समिति नई दिल्ली
डा० नरेन्द्र वर्मा हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का पुनर्मूल्यांकन १९६८, साथी प्रकाशन सागर
डा० निर्मल हेमन्त आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाट्य सिद्धान्त प्रथम संस्करण १९७३, अक्षर प्रकाशन दिल्ली-६
डा० निरुपमा पोद्दार प्रसाद के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रथम संस्करण १९७४, अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-३
डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व,

डा० पी० आदेश्वरराव स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (हिन्दी और तलुगु) प्रथम सस्करण १९७२ प्रगति प्रकाशन आगरा–३
प्रेमनारायण शुक्ल हिन्दी साहित्य म विविधवाद स० २ १९७० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रेमनारायण शुक्ल भारतेन्दु की नाट्य कला द्वितीय सस्करण १९५२ ग्रथम कानपुर–१२
बनवारीलाल हाण्डा प्रसाद का नाटय शिल्प प्रथम सस्करण, हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली–६
बाँके बिहारी भटनागर सम्पादित उदयशकर भट्ट व्यक्ति और साहित्यकार प्रथम सस्करण १९६५, आत्माराम एण्ड स स
ब्रजरत्नदास हिन्दी नाटय साहित्य पचम सस्करण स० २०१७ हिन्दी साहित्य कुटीर वाराणसी
डा० भानुदेव शुक्ल भारतेन्दु युगीन नाटय साहित्य प्रथम सस्करण १९६२, नन्दकिशोर एण्ड स स वाराणसी
मनोरमा शर्मा नाटककार उदयशकर भट्ट प्रथम सस्करण, १९६३, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली–६
रमेशकुमार वर्मा रामकुमार वर्मा की नाटयकला प्रथम आवृत्ति १९६३, लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर
राजेन्द्रसिंह गौड हमारे नाटककार प्रथम सस्करण स० २०१० श्रीराम मेहरा एण्ड को०, आगरा
राम अवध द्विवेदी हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा, द्वितीय सस्करण स० २०२१ भारती भण्डार इलाहाबाद
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास सत्रहवाँ पुनर्मुद्रण, स० २०२९ नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
रामचन्द्र मिश्र भारतेन्दु साहित्य १९७० विश्व भारती प्रकाशन नागपुर
रामसेवक पाण्डेय प्रसाद की नाटयकला १९६५, अनुसधान प्रकाशन, कानपुर
डा० रु० गो० चौधरी कामसूत्र और फ्रायड के सन्दर्भ म हिन्दी काव्य का अनुशीलन प्रथम सस्करण, १९७३, रचना प्रकाशन इलाहाबाद–१

डा० विमल सहस्त्रबुद्धे हि दी उप यासा म नारी का मनोवज्ञानिक विश्लेषण, पुस्तक मस्थान, कानपुर–१२

विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व, प्रथम सस्करण, १९६० बसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली।

शशिशेखर नथानी जयशकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटका का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सस्करण १९६९, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–१

डा० शाति मलिक हिन्दी नाटको की शिल्पविधि का विकास, प्रथम मस्करण १९७१ नशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

डा० शातिगोपाल पुरोहित हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन प्रथम सस्करण १९६४, साहित्य सदन देहरादून

शीला सक्सना डा० रामकुमार वमा के ऐतिहासिक नाटको का आलोच नात्मक अध्ययन १९७२ गगा पुस्तकमाला लखनऊ।

कुमारी सरला जौहरी हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक १९५६ लखनऊ, विश्वविद्यालय

डा० सावित्री स्वरूप न य हि दी नाटक १९६८, प्र थम कानपुर

सुभाष बाला महन जायसी के पद्मावत का मनोवज्ञानिक अध्ययन, प्रथम सस्करण १९६९, भारतेन्दु–भवन, शिमला–१

डा० सोमनाथ गप्त हि दी नाटक साहित्य का इतिहास चौथा सस्करण, १९'८ हिन्दी भवन, इलाहाबाद

मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ

नारमन एल० मन (रूपान्तरकार सतीशचन्द्र शमा) मनोविज्ञान मानवी समायोजन क मूल सिद्धा त, द्वितीय सशोधित परिवर्द्धित हिन्दी सस्करण १९७२, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० दिल्ली–६

डा० एस० एस० माथुर सामान्य मनोविज्ञान षष्ठ सस्करण १९७१, विनोद पुस्तक म दिर आगरा–२

डा० एस० एस० माथुर समाज मनोविज्ञान ततीय सस्करण १०६९ विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–२

भाई योगेन्द्रजीत बाल मनोविज्ञान, पचम सस्करण १९७३, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

अँग्रेजी सदर्भ ग्रन्थ

Chris Argyris Personality and Organization, Harper and Row, New York and John Weatherhill, Inc, Tokyo

Arthur Compton-Rickett A History of English Literature 1946 Thomas M, London

Suresh Chandra Dutt Psychology, Doaba House Delhi

James C Coleman Abnormal Psychology and Modern Life Third Edition D B Taraporevala Sons and Co Bombay-1

Richard Dewey W J Humber An Introduction to Social Psychology 1966 The Macmillan Company New York

C E Green Lucid Dreams, 1968 Hamish Hamilton London

J P Guilford General Psychology Second Edition Affiliated East West press Pvt Ltd New Delhi

J P Guilford Fields of Psychology Third Edition Affiliated East West Press Pvt Ldt New Delhi

F L Lucas Literature and Psychology Second Printing 1962 The University of Michigan Press (U S A)

W Macdugall Outlines of Abnormal Psychology Methuen and Co Ltd, London E c 4

Gardner Murphy An Introduction to Psychology, Indian Edition 1964, Oxford Book Company Calcutta

George G Thompson Child Psychology, Second Edition, The Times of India Press, Bombay

Robert S Woodworth and Donald G Marquis Psychology, Methuen and Co Ltd London, Reprinted. 1952

अँग्रेजी सदर्भ ग्रन्थ

Chris Argyri Personality and Organization, Harper and Row, New York and John Weatherhill, Inc, Tokyo

Arthur Compton-Rickett A History of English Literature 1946, Thomas M, London

Suresh Chandra Dutt Psychology Doaba House Delhi

James C Coleman Abnormal Psychology and Modern Life, Third Edition D B Taraporevala Sons and Co Bombay-1

Richard Dewey, W J Humber An Introduction to Social Psychology 1966, The Macmillan Company New York

C E Green Lucid Dreams, 1968, Hamish Hamilton London

J P Guilford General Psychology Second Edition Affiliated East West press Pvt Ltd New Delhi

J P Guilford Fields of Psychology Third Edition Affiliated East West Press Pvt Ldt New Delhi

F L Lucas Literature and Psychology Second Printing 1962, The University of Michigan Press (U S A)

W Macdugall Outlines of Abnormal Psychology Methuen and Co Ltd, London E c 4

Gardner Murphy An Introduction to Psychology Indian Edition 1964 Oxford Book Company Calcutta

George G Thompson Child Psychology, Second Edition, The Times of India Press Bombay

Robert S Woodworth and Donald G Marquis Psychology, Methuen and Co Ltd London, Reprinted, 1952